राष्ट्र धर्म
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
हिमालय-तिब्बत विशेषाङ्क
राष्ट्रधर्म
₹ ४०/-
कार्तिक-२०६९
नवम्बर-२०१२

अनुसूचित जाति के विरुद्ध घट रहे हैं अपराध

तब और अब

अनुसूचित जाति के खिलाफ देश में हुए अपराधों में मध्यप्रदेश का प्रतिशत

वर्ष	कुल अपराध
1994	11%
2002	21.50%
2011	9.60%
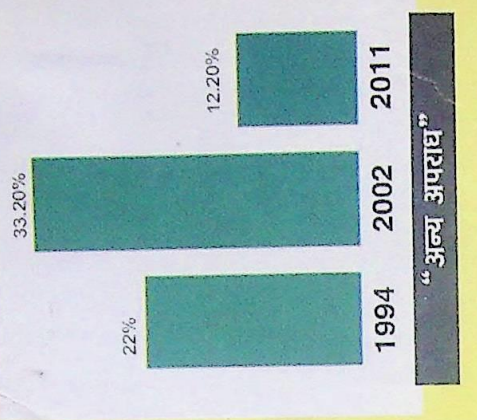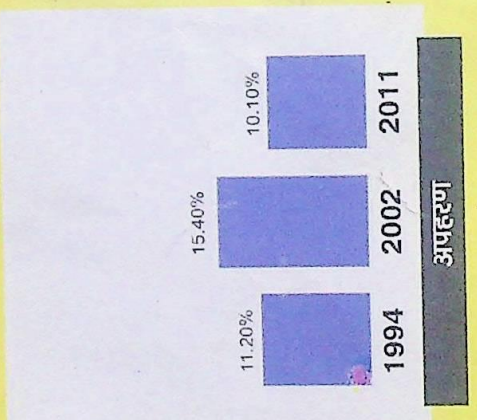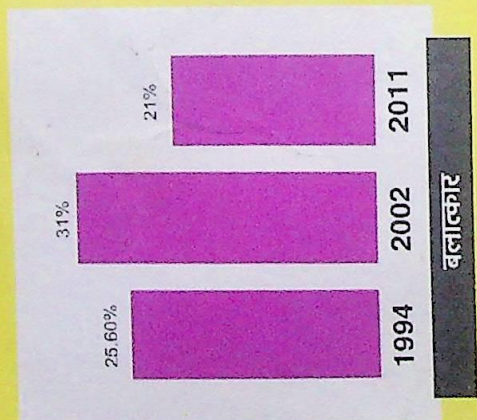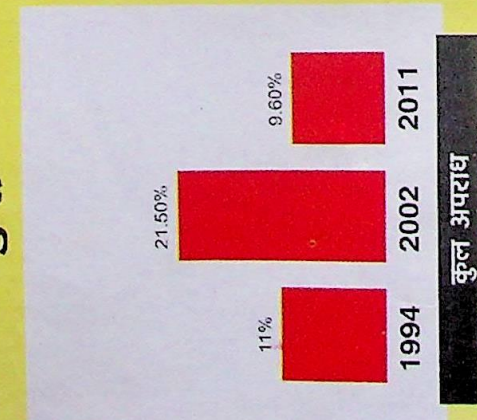
सन्दर्भ- राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो

क्योंकि सांच को आंच नहीं आने देंगे

फर्क है

D 72646

Phone : (044) 27222115
Fax : (044) 27224305, 37290060

Email : skmkanci@md3.vsnl.net.in

Sri Chandramouleeswaraya Namaha :

Sri Sankara Bhaghavadpadacharya Paramparagatha Moolamnaya Sarvagnapeeta

His Holiness Sri Kanchi Kamakoti Peetadhipathi

JAGADGURU SRI SANKARACHARYA SWAMIGAL

Srimatam Samsthanam

No. 1, Salai Street, Kanchipuram - 631 502
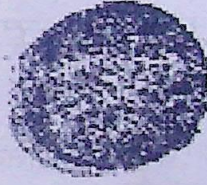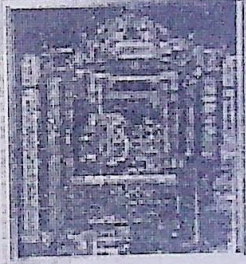
हिमालयविशेषाङ्कं तन्वाना पत्रिका शुभा।
चन्द्रमौलिकृपादृष्ट्या वर्धतामभिवर्धताम्।।

हिमालयो नाम नगाधिराजः इति कालिदासवागमृतकणैः सर्वदेवात्मनः हिमालयस्य महिमाऽवगम्यते। भारतदेशस्यैव कशेरुवत्स्थितस्स पर्वतराजः न केवलं देशरक्षणे, अपि च विविधखनिजप्रदानेन समभिवृद्धावपि अतुलं स्थानं वहतीति नास्त्यत्युक्तिः। तस्य च त्रिविष्टपमिति ख्यातस्य तिब्बद्राज्यस्य च महिमानमनुवर्णयितुं राष्ट्रधर्माख्या मासिकी पत्रिका विशेषाङ्कं समातनोतीति ज्ञात्वा नितरां मोदामहे। सोऽयं यत्नः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यम्बासमेत श्रीचन्द्रमौलीश्वर–कृपाकटाक्षात् सफलो भूयादिति तन्निर्वाहकाश्च ऐहिकामुष्मिकश्रेयोविलासैः समेधन्तामिति चाशास्महे।

नारायणस्मृतिः।

श्रीनन्दन–सिंह–कृष्णैकादशी
काञ्चीपुरम्

चन्द्रमौलि भगवान् शिव की कृपादृष्टि से हिमालय विशेषाङ्क को प्रकाशित करनेवाली शुभ पत्रिका निरन्तर आगे बढ़ती रहे।

'हिमालय नगाधिराज है'– महाकवि कालिदास के इन अमृतवचनों से सर्वदेवस्वरूप हिमालय की महिमा भलीभाँति स्पष्ट है। भारतदेश के मेरुदण्ड के सदृश स्थित यह पर्वतराज न केवल देश की सुरक्षा की दृष्टि से; अपितु विविध खनिजों को प्रदान करने के कारण राष्ट्रीय समृद्धि के सन्दर्भ में भी अतुलनीय स्थान का आस्पद है। उसके त्रिविष्टप (तिब्बत) के रूप में विख्यात राज्य की महिमा का निरूपण करने के लिए 'राष्ट्रधर्म'– नाम्नी मासिक [illegible] अपना विशेषाङ्क प्रकाशित कर रही है, यह जानकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। यह प्रयत्न पराम्बा श्री महात्रिपुरसुन्दरीसहित श्रीचन्द्रमौलीश्वर भगवान् शिव के कृपा–कटाक्ष से सफल हो और इस कार्य में संलग्न सभी लोगों की लौकिक और पारमार्थिक कल्याणराशि से समुन्नति हो, यह हमारी शुभाशा है।

– नारायणस्मृति।

।।ओऽम् नमो भगवते गोरक्षनाथाय।। फोन : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४
फैक्स : (०५५१) २२५५४५५

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर–२७३०१५

गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त अवेद्यनाथ
पूर्व संसद सदस्य (लोक सभा)

पत्रांक......................... दिनांक : १५.०८.२०१२

शुभकामना–सन्देश

प्रिय आनन्द मिश्र 'अभय' जी,

यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि **'राष्ट्रधर्म'** मासिक पत्रिका का आगामी अंक **'हिमालय–तिब्बत विशेषांक'** के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। पर्वतराज हिमालय की उत्तुंग शिलायें जहाँ हमारी उत्तरी, पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं की मूक प्रहरी रही हैं, वहीं तिब्बत से हमारा आध्यात्मिक एवं धार्मिक जुड़ाव प्राचीनकाल से रहा है। भारतीय शासकों की ऐतिहासिक भूलों से आज हिमालय एवं तिब्बत दोनों के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग गया है। पं. जवाहरलाल नेहरू की अतिशय उदारता वस्तुतः कायरता बन गयी। तिब्बत एवं कश्मीर का वर्त्तमान संकट उसी की देन है।
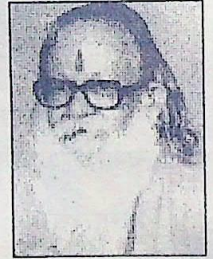
हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि **'राष्ट्रधर्म'** मासिक पत्रिका का आगामी **'हिमालय–तिब्बत विशेषांक'** इस समस्या पर यथेष्ट प्रकाश डालने वाला रुचिकर, पठनीय एवं संग्रहणीय होगा। **'हिमालय–तिब्बत विशेषांक'** प्रकाशन हेतु आप सहित **राष्ट्रधर्म** से सम्बद्ध सभी लोगों को साधुवाद एवं आशीर्वाद।

शुभेच्छु

(महन्त अवेद्यनाथ)
गोरक्षपीठाधीश्वर

श्री आनन्द मिश्र 'अभय'
सम्पादक, 'राष्ट्रधर्म;
'संस्कृति भवन', राजेन्द्रनगर,
लखनऊ– २२६००४

विश्व हिन्दू परिषद VISHVA HINDU PARISHAD

Registered under Societies Act 1860 No. S 3106 of 1966-67 with Registrar of Societies, Delhi
संकटमोचन आश्रम, (हनुमान मन्दिर), सेक्टर– ६, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली– ११० ०२२ (भारत)
SANKAT MOCHAN ASHRAM, RAMAKRISHNA PURAM-VI, NEW DELHI - 110 022 (BHARAT)

दूरभाष : ६१–११–२६१०३४६५, २६१७८६६२
फैक्स : ६१–११–२६१६५५२७
तार : हिन्दूधर्म
Gram : 'HINDUDHARMA'
Phones : 91-11-26103495,
26178992
Fax : 91-11-26195527

वि०हि०प० / १६बी / १२

भाद्रपद कृ. चतुर्थी वि.सं. २०६६
०४ सितम्बर, २०१२

राष्ट्रधर्म के हिमालय–तिब्बत विशेषांक हेतु शुभकामना

हिमालय भारत की आत्मा है। बिना इसके भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। महाकवि कालिदास ने तो 'नगाधिराज' और 'पृथ्वी का मेरुदण्ड' कहकर इसकी अभ्यर्थना की है।

भारत का शायद ही कोई कवि या लेखक हो, जिसने हिमालय की कीर्त्तिगाथा को शब्दों में पिरोकर अपनी वाणी और लेखनी को धन्य न किया हो। इसकी हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं से निकलने वाली सदानीरा नदियों का जल पीकर ही हम जीवित हैं। यह युग–युग से भारतमाता की रक्षा का दायित्व निभा रहा है। भारत की सन्तान होने के नाते हिमालय की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

हिमालय की रक्षा में ही भारत की सुरक्षा निहित है, यह बात हर भारतवासी तो जानता है; पर दुर्भाग्यवश देश के शासक इसे भूल गये हैं। इसलिए हिमालय पर विदेशी और विधर्मियों के आक्रमण लगातार बढ़ रहे हैं।

१६४७, १६६२, १६६५, १६७१ हो या १६६६ का करगिल युद्ध, सबका केन्द्र हिमालय ही रहा है। इसके बाद भी शासक वर्ग की आँखें नहीं खुली हैं। ऐसे में देश के निद्रामग्न शासकों; केवल रोटी, कपड़ा और मकान को ही जीवन का लक्ष्य माननेवाले तथाकथित बुद्धिवादियों तथा जनता को जगाने का दायित्व उन देशभक्तों का है, जो भारत को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि, धर्मभूमि, कर्मभूमि और मोक्षभूमि मानते हैं।

हिमालय की ही तरह तिब्बत की स्वाधीनता और सार्वभौमिकता के महत्त्व को भी नहीं नकारा जा सकता। परम पूज्य श्री गुरुजी ने 'तिब्बत रहेगा, तो भारत सुरक्षित रहेगा' कहकर देश को सावधान किया था। यदि तत्कालीन सत्ताधीशों ने उस चेतावनी पर ध्यान देकर चीन के विस्तारवादी इरादों का विरोध किया होता, तो तिब्बत स्वाधीन रहता और चीन को भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता। चीन के उस आक्रमण को ५० वर्ष पूरे हो रहे हैं। दुर्भाग्यवश आज भी शासन उसी तरह नींद में है, जैसे १६६२ में थे।

'राष्ट्रधर्म' पत्रिका के माध्यम से राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित सामयिक एवं ज्वलन्त विषयों को उठाकर समाज को जागरूक करने का जो प्रयास हो रहा है, वह प्रशंसनीय है। **'हिमालय–तिब्बत विशेषांक'** इस दृष्टि से सफल हो, यह मेरी हार्दिक शुभकामना है। पत्रिका के सम्पादन एवं व्यवस्था में लगे सभी कार्यकर्त्ताओं को मेरा अभिवादन।

आपका

अशोक सिंहल
(अशोक सिंहल)
अन्तरराष्ट्रीय अध्यक्ष

श्री आनन्द मिश्र 'अभय'
सम्पादक 'राष्ट्रधर्म'
संस्कृति भवन, राजेन्द्रनगर
लखनऊ– २२६००४ (उ०प्र०)

Website : www.vhp.org, E-mail : jaishriram@vsnl.in

लालकृष्ण आडवाणी
अध्यक्ष
भाजपा संसदीय दल

दिनांक : २३ सितम्बर, २०१२

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि 'राष्ट्रधर्म' का आगामी (नवम्बर, २०१२) अंक **'हिमालय–तिब्बत विशेषांक'** के रूप में प्रकाशित हो रहा है, जिसका लोकार्पण २८ अक्तूबर, २०१२ को माधव सभागार, निरालानगर, लखनऊ में सम्पन्न होगा।

विशेषांक के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

लाल आडवाणी

(लालकृष्ण आडवाणी)

निवास : ३०, पृथ्वीराज रोड, नयी दिल्ली– ११००११, दूरभाषा : २३७९४१२४, २३७९४१२५; फैक्स : २३०१३१४२

संस्थापक :

• पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ-शक्ति ध्रुवतारा है।
बने जगद्गुरु भारत फिर से, यह सङ्कल्प हमारा है।।

हिमालय-तिब्बत विशेषाङ्क

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर
लखनऊ—२२६००४
दूरभाष : (०५२२) ४०४१४६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष : (०५२२) २६६१३८४ (व्यवस्था)
फैक्स : (०५२२) २६६०१०५

editor_rdm_1947@rediffmail.com
mgr.rdm.1947@gmail.com

❖

वर्ष - ६६, अङ्क - ४
कार्तिक— २०६६
(युगाब्द—५११४)
नवम्बर — २०१२

❖

मूल्य : ₹ ४०.००
वार्षिक : ₹ १६०.००
आजीवन (२० वर्ष) : ₹ २०००.००
विशेष आजीवन (२० वर्ष) : ₹ २५००.००
विदेश के लिए वार्षिक: ४० डॉलर

❖

सम्पादक :
• आनन्द मिश्र 'अभय'

❖

प्रभारी निदेशक :
• आनन्दमोहन चौधरी

प्रबन्धक :
• पवनपुत्र बादल

प्रस्तुति

लेख

कविता

सम्पादक की कलम से

हिमालय क्या मात्र एक पर्वत है, विशालकाय पर्वत; उच्चतम शिखरों वाला पर्वत; विश्व का सबसे महान्, सबसे विस्तृत, सबसे पृथक्, सबसे अधिक प्रसिद्ध ! इसे पर्वतराज, गिरिराज, विराट् शैलराट् जैसे विशेषण क्यों दिये गये हैं ? कविकुलगुरु महाकवि कालिदास ने इसे 'पृथ्वी का मानदण्ड' और 'देवतात्मा' क्यों कहा है ? वेदों से लेकर आज तक अनेकानेक ऋषियों, मुनियों, कवियों, महाकवियों, मनीषियों, महामनीषियों द्वारा प्रत्येक भाषा में इसका गुणगान कर इसे महिमामण्डित क्यों किया गया है ? आखिर कोई तो बात होगी, जो विश्व के एण्डीज, पेरेनीज, आल्प्स, यूराल, एटलस आदि किसी भी पर्वत या पर्वतमाला का यशोगान कहीं नहीं मिलता। वास्तव में बात है और बहुत बड़ी है, इसका अनन्त विस्तार-लम्बाई में, चौड़ाई में, ऊँचाई में; इसके विस्तार की दिशा पश्चिम से पूर्व हजारों योजन है। ईरान की पूर्वी सीमा से किरथर, सुलेमान, हिन्दुकुश से कराकोरम, कञ्चनजंघा, नन्दा देवी, धवलगिरि, कैलास, गौरीशंकर, एवरेस्ट होते हुए थाई देश की पश्चिमी सीमा तक। इसकी मकरान श्रेणी, हिंगलाज देवी से लेकर क्षीर भवानी, वैष्णो देवी, नन्दा देवी, कामाख्या आदि तक देवी पीठों की शृंखला है, शंकर-पार्वती तो स्वयं कैलास पर विराजते हैं। उत्तर में अल्टाई से लेकर दक्षिण में शिवालिक (शिव की जटायें) पर्वत श्रेणियों तक फैलाव है। इसकी स्थिति भौगोलिक ही नहीं, प्राकृतिक दृष्टि से भी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उत्तर से घोर शीतल ध्रुवीय हवायें इसे पार कर पाने में असमर्थ रहने से पूरा भारतवर्ष महादेश उस भयंकर शीत से सुरक्षित रहता है, जिसके कारण उत्तरी अमेरिका और योरुप जैसे महाद्वीप जाड़ों भर बर्फीले तूफानों तथा शीत लहरियों से काँपते रहते हैं। बंगाल की खाड़ी (महोदधि) से उठनेवाली ऋतुवाही हवायें भी इसी से टकराकर पूर्व में चेरापूँजी से लेकर पश्चिम में जम्मू-कश्मीर तक चलती और टकराती हुई पूरे उत्तरी भारत को वर्षा से सिञ्चित करती चली जाती हैं। अरब सागर (रत्नाकर) से चलता मानसून भी इसे पार करने का साहस करने से पहले क्षीण हो जाता है। वर्तमान सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह हिमालय पर्वत भारतवर्ष की प्रकृति, ऋतु, धर्म, संस्कृति, सभ्यता सभी का मूल स्रोत रहा है।

यह तुङ्ग हिमालय किसका है

पूरा विश्व जिन मनु को मानता है, जिनके नाम पर ही उनकी सन्तान 'मानव' कहलाती है और जिन्हें 'मानव धर्मशास्त्र' जैसी आदि जीवन-संहिता (मनु स्मृति) का रचयिता मान 'फर्स्ट लॉ-गिवर ऑफ दि वर्ल्ड' की उपाधि प्रदान कर विश्व अपने को गौरवान्वित समझता है, उनकी नौका सर्वप्रथम हिमालय के सर्वोच्च शिखर से ही बाँधी गयी थी और प्रलय का जल घटने पर प्रथमतः मानव ही नहीं, सभी जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों का जन्म भी इसी पर्वत पर होने के कारण यह सर्वपूज्य है। दुर्लभ जीवों और अमूल्य दुर्लभ जड़ी-बूटियों की प्राप्ति हिमालय के अतिरिक्त किस पर्वत पर होती है ! इसीलिए हिमवान् को आद्यशक्ति पार्वती जी का पिता माना गया है और उनकी पत्नी का नाम भी देखें– मैना। हिमालयी चिड़िया, जो अति सुन्दर और मनुष्य की बोली बोलने की सामर्थ्य रखनेवाली है, उसका नामाभिधान भी 'मैना' ही है। क्या यह नाम मात्र संयोग है ! हिमालय और उससे उद्भूत नदियों, सिन्धु, वितस्ता, चन्द्रभागा, व्यास, शुतुद्रि, यमुना, गंगा, सरयू, कौशिकी, गण्डकी, ब्रह्मपुत्र आदि से निर्मित सैन्धव, पञ्चनद और गांगेय क्षेत्र विश्व की सर्वतोभावेन उर्वरा भूमि का क्षेत्र यों ही नहीं माना जाता है। यह हिमालय की ही देन है कि विश्व भर में पायी जानेवाली सभी प्रकार की जलवायु विषुवतीय से लेकर भू-मध्य सागर व टुण्ड्रा, टैगा तक की भारत में श्रीलंका से लेकर इस पर्वतराज के हिमाच्छादित शिखरों तक सहज प्राप्य है। ऐसा बहुआयामीय जीवनानन्द अन्यत्र कहाँ ? योरुप के आल्प्स की प्रशंसा इस पर्वत के पैर का धोवन भी नहीं होगी।

हिमालय का कोई भी पर्वत-शिखर, घाटी, पठार, नदी-तट या संगम ऐसा नहीं मिलेगा, जिस पर किसी देवी-देवता का वास न हो; किसी ऋषि-मुनि ने तपस्या न की हो; किसी योगी, साधु-सन्त या महापुरुष की योग-साधना सिद्ध न हुई हो; किसी तीर्थ-यात्री की मनोकामना पूरी न हुई हो अथवा वहाँ के नदी, सरोवर, कुण्ड में स्नानोपरान्त देव-दर्शन कर धन्यता और जीवन की सार्थकता की गहन अनुभूति न की हो। आज भी हिमालय की गुफाओं में ऐसे साधु-सन्त तपोरत मिलते हैं। तिब्बत के एक 'मानव-दृष्टि से बाह्य क्षेत्र' ज्ञान-गञ्ज में दस-दस हजार वर्ष की अवस्था वाले सिद्ध योगियों का आवास है। महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज के गुरु परमहंस विशुद्धानन्द ने उस स्थान के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया था और एक काँच के माध्यम से विलुप्त सूर्य-विज्ञान की विलक्षण शक्ति के दर्शन व प्रयोग अपने शिष्यों, काशी के प्रबुद्ध जनों को दिखलाये थे। पॉल ब्रण्टन नामक एक योरुपीय योगी के आत्मानुभाव उनकी पुस्तक 'एक योगी की आत्मकथा' में पढ़े जा सकते हैं, जो एक समय 'बेस्ट सेलर' मानी जाती थी। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय हिमालय की महिमा-गरिमा से परिप्लुत होकर भी अपने को पूर्ण मानने को तैयार नहीं है– 'नेति' 'नेति'– इसकी इति नहीं, यही उससे ध्वनित होता रहता है। नेति-नेति तो है ही, 'अथ' का भी अता-पता पा सकना असम्भवप्राय है।

तो ऐसे 'न अथ', 'न इति' वाले इस पर्वतराज का वर्णन कर पाना कदापि सम्भव नहीं है और इसी नगाधिराज के मध्य बसा है एक अनादि देश– तिब्बत। पुराणों में इसे 'त्रिविष्टप' कहा गया है, जिसका अर्थ है 'स्वर्ग'। त्रिविष्टप का ही अपभ्रंश

है तिब्बत। तो इसी त्रिविष्टप (तिब्बत) स्वर्ग में देवी-देवताओं का वास था, जिसके राजा थे इन्द्र। देवराज इन्द्र के इस स्वर्ग पर जब-जब दैत्य, दानव, असुर आधिपत्य जमा लेते हैं, तो उसे स्वतन्त्र कराने का दायित्व भारत का कोई धर्मात्मा परमवीर सम्राट् ही निबाहता मिलता है, चाहे वह राम का पूर्वज कोई ककुत्स्थ हो या फिर स्वयम् उनके पिता महाराज दशरथ। नहुष की कथा भी यही बतलाती है। भगवान् कृष्ण इन्द्रलोक से ही पारिजात-वृक्ष धरती पर लाते हैं। महाभारत-युद्ध के बाद हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित् को सौंपकर पाण्डव 'स्वर्गारोहण' इसी हिमालय से होकर करते हैं। स्वर्गारोहण-मार्ग आज भी गढ़वाल से होकर तिब्बत की ओर जाता है। अमरावती, नन्दनवन, अलकापुरी ये सब तिब्बत में ही थे।

आज धरती का यह स्वर्ग पुनः दैत्यों से आक्रान्त, पददलित होकर 'त्राहि माम्' 'त्राहिमाम्' पुकार रहा है। शिव-पार्वती का निवास कैलास और देवताओं का मानसरोवर, ब्रह्मा जी के कमण्डलु से निःसृत गंगा और ब्रह्माजी का ही पुत्र ब्रह्मपुत्र नद आज अपने अस्तित्व के लिए भारत, एकमात्र भारत की ओर ही कातर-दृष्टि से देख रहे हैं। ये आधुनिक दैत्य हैं चीनी, मार्क्स की विध्वंसक विचारधारा के वाहक हान जाति के चीनी, जिनके सर्वभक्षी होने के बारे में कहा जाता है कि चौपायों में 'चारपाई' और नभचरों में 'पतंग' को छोड़कर सब कुछ इनके लिए भक्ष्य है। चीन किसी का एहसान 'उधार' नहीं रखता। 'चक्रवृद्धि ब्याज' सहित चुकता करने की उसकी पुरानी आदत है। कुओमिताङ् दल के सत्ताधारी जनरलिस्मो च्याङ् काई शेक को पराजित कर माओ त्से तुङ् जब चीन का अधिनायक बना, तो उसने पहले मंगोलिया को दबोचना चाहा। फलतः मंगोलिया ने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित करने का मोह त्यागकर तुरन्त सोवियत रूस के साथ सन्धि कर अपने को कम्यूनिस्ट घोषित कर जान बचायी। फिर भी तब तक उसका दक्षिणी भाग 'इनर मंगोलिया' के नाम से चीन ने हड़प लिया था। जोजेफ स्टालिन ने मंगोलिया को अविलम्ब संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिलवाकर अपनी छत्रच्छाया में ले लिया।

परन्तु जिस भारत की पुलिस चौकियाँ, डाक-तार व्यवस्था आदि तमाम बातें तिब्बत में थीं, उसे संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनवाकर सुरक्षा-कवच देने का दायित्व जिस भारत पर था, उसके प्रधानमन्त्री पर हवामहल बनाने का ऐसा भूत सवार था कि उसने तिब्बत को तश्तरी में रखकर उस चीन को अर्पित कर दिया, जो सदा ही विस्तारवादी छली-कपटी-प्रपञ्ची रहा था। तिब्बत जैसा चिर स्वतन्त्र देश मानो जवाहरलाल की बपौती था, जो उन्होंने कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर उसका अस्तित्व ही मिटा देने की भूमिका लिख डाली और जो अमरीका भारत को सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य (निषेधाधिकार सम्पन्न) बनाने का बार-बार आग्रह कर रहा था, उसे ठुकराकर निरन्तर चीन की पैरवी करते रहे। २० अक्तूबर, १९६२ को खुले चीनी आक्रमण और उसके हाथों, युद्ध साधनों से विपन्न रखी गयी, भारत की अजेय सेना के माथे पर सदा के लिए 'पराजय' का कलंक लगा दिया। नेहरू भूल गये कि चीन कभी किसी का सगा नहीं रहा। मौका पाते ही अपने पंख फैलाने के आदी इस दुष्ट राष्ट्र का इतिहास धोखे का ही रहा है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान के आत्म-समर्पण करते ही रूस ने मञ्चूरिया पर कब्जा कर लिया था। चीन में रूसी सहायता से सत्ता में आये माओ को स्टालिन ने मञ्चूरिया दे दिया था। उसका एहसान चीन ने रूस की आमूर नदी के मध्य बने दो द्वीपों बोल्शोई यूसिरिस्की व ताराबरोव पर कब्जा करने का असफल प्रयत्न करके चुकाया। आमूर नदी की अपनी ओर की हिमाच्छादित धारा को बालू और शिलाओं से लाद दिया कि वसन्त आते ही धारा पिघलने पर वह उथली होकर चीन की भूमि से जुड़ जायेगी; परन्तु रूस भारत की तरह 'मूर्ख' न था। उसने दोनों द्वीपों पर सेना शिबिर स्थापित करने के साथ ही आर्थोडाक्स चर्च बनवाकर चीन की चाल व्यर्थ कर दी। इसी प्रकार वियतनाम को जब हो ची मिन्ह ने एक कर लिया, तो चीन ने अपने इस कम्यूनिस्ट साथी देश की उत्तरी सीमा पर अतिक्रमण करने का सैनिक-प्रयत्न किया; पर फ्रान्स और अमेरिका को धूल चटानेवाले वियतनामियों ने चीन को मुँहतोड़ जबाब दिया। फिर भी चीन ने उसके स्टैनली द्वीप पर नौसेना के बल पर कब्जा कर लिया और अब वियतनाम की समुद्री-सीमा के अन्दर भारत के ओ.एन.जी.सी. को तेलशोध पर आँखें दिखा रहा है। जनता सरकार में विदेश मन्त्री अटल जी चीन की इसी गुण्डई के विरोध में अपनी चीन-यात्रा अधूरी छोड़कर चले आये थे। अब चीन, जापान के ओकीनावा द्वीपसमूह के दक्षिणी-पश्चिमी कुछ द्वीपों पर आँख गड़ाये है। चीन ने अपने पड़ोसी शायद ही किसी देश को छोड़ा हो, जिसकी भूमि कब्जाने का प्रयत्न न किया हो। किर्गीजस्तान, ताजिकिस्तान, कजाकिस्तान, बर्मा, लाओस सभी से कुछ न कुछ सीमा-विवाद खड़ा कर भूमि हड़पने का प्रयत्न किया; पर जिस मञ्चूरिया का कभी चीन पर शासन (मञ्चू वंश) रहा, उसे 'चीनी' बना लिया, जिस मंगोलिया के कभी चीन अधीन रहा, उसका दक्षिणी भाग हड़प लिया; जिस तिब्बत का चीन पर जब-तब शासन रहा, उसके अस्तित्व को ही हजम कर जाने पर उतारू है।

उपर्युक्त का सार-संक्षेप यह कि १९६२ में चीनी आक्रमण के बाद जिस राष्ट्रीय कवि ने यह प्रश्न बहुत सोच-समझकर उठाया था कि **'यह तुङ्ग हिमालय किसका है ?'** उसी ने उसी भावभूमि पर इसका श्रेष्ठ और एकमात्र उत्तर भी दिया था, **'जिसमें बल है यह उसका है।'** हिमालय की मुक्ति में तिब्बत की मुक्ति और भारत की सुरक्षा निहित है। इस देश के नेता और राष्ट्र चेतना के वाहकों को 'बलमुपास्य' का मन्त्रदाता यह कवि था पं. श्याम नारायण पाण्डेय, 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' जैसे काव्यों का रचयिता। बलवान् भारत को तब विश्व की कोई शक्ति आँखें नहीं दिखा सकेगी, यह ध्रुव सत्य है। □

— आनन्द मिश्र 'अभय'

E-mail : editor_rdm_1947@rediffmail.com

हिमालय-तिब्बत विशेषांक
राष्ट्रधर्म

चीनी आक्रमण के ५० वर्ष

जब घायल हुआ हिमालय

– अजय मित्तल

२० अक्टूबर, १९६२ को चीन ने उत्तर-पूर्व में नेफा (वर्त्तमान अरुणाचल प्रदेश) तथा लद्दाख (जम्मू-कश्मीर) पर पूरी तैयारी व योजना के साथ भारी हमला किया था। भारत की सेना को अपेक्षित तैयारी और आवश्यक उपकरणों के विना ही देश की रक्षा करनी पड़ी। एक महीने के युद्ध में चीन ने एकतरफा जीत हासिल कर दिखायी। हिमालय घायल हुआ और साथ ही घायल हुआ भारत का गौरव। भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने इसे चीन द्वारा किया गया विश्वासघात बताया। हकीकत यह है कि यह खुद नेहरू और उनकी सरकार द्वारा इस देश के साथ लम्बे समय तक किया गया विश्वासघात था। इससे पहले वे तिब्बत से विश्वासघात कर चुके थे।

१९५० में चीन ने तिब्बत पर कब्जा किया। नेहरू सरकार खामोशी से देखती रही। यह नेहरू का तिब्बत से किया गया विश्वासघात था। हमारे आराध्य-स्थल कैलास-मानसरोवर शत्रु के हाथ में चले गये। चीन ने १९५१–५२ से ही तिब्बत से लगी भारतीय सीमा को कुतरना शुरू किया। अक्साइ चिन (प्राचीन नाम अक्षय चिह, लद्दाख का भाग) में उसने भारतीय भूमि पर निर्माण कार्य शुरू किया। गारटोक (कैलास के पूर्व में स्थित) भारतीय ट्रेड एजेण्ट लक्ष्मण सिंह जंगपांगी ने तुरन्त इसकी सूचना नेहरू को भेजी, पर नेहरू चुप रहे। यदि उसी समय भारत ने प्रतिरोध कर चीन को रोक दिया होता, तो वह आगे के दुःसाहसों की कोशिश न करता। चीन ने तिब्बत को सिङ्क्याङ् से जोड़नेवाला अपना राष्ट्रीय राजमार्ग सं. २१९ लद्दाख के इलाके से होकर बनाया। भारतीय भूमि में ४०० किलोमीटर लम्बी सड़क उसने ६ साल में तैयार कर ली और नेहरू सरकार अन्धी-बहरी बनी रही। उसने चीन को रोकना तो दूर, भारतीयों को भी अन्धेरे में रखा यह कहकर कि चीन ने कहीं अतिक्रमण नहीं किया है। चीन का दुःसाहस बढ़ता गया। उसने बाराहोती (गढ़वाल), शिपकी ला (हिमाचल प्रदेश), लद्दाख के अन्य हिस्सों और नेफा में घुसपैठ की। सितम्बर १९५६ में शिपकी ला में चीन की सेना बड़ी संख्या में घुस आयी थी, उसका भारतीय फौज से सामना हुआ, पर नेहरू ने इसे भी संसद् तथा देश से छिपाया। विदेश सचिव के माध्यम से केवल एक औपचारिक विरोध चीन को भिजवा दिया।

नेहरू की चीन-परस्ती

यह जानना उपयुक्त होगा कि जब चीन भारतीय भूमि धीरे-धीरे कब्जाता जा रहा था, नेहरू सरकार क्या कर रही थी ? नेहरू उस समय चीन को अपना निकट मित्र मानकर दुनिया में उसकी पैरवी करते-फिरते थे। १९५५ में अमेरिका भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनाना चाहता था। आज भारत यह हैसियत पाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहा है; पर जब वह अनयास ही यू.एस.ए. द्वारा हमें दी जा रही थी, चीनी मोह में अन्धे हमारे प्रथम प्रधानमन्त्री ने स्थायी सदस्यता का दर्जा भारत की जगह चीन को देने की माँग की, जबकि उन दिनों चीन यू.एन.ओ. का साधारण सदस्य भी नहीं था। इसके पहले १९५४ में नेहरू ने चीन के साथ कथित पञ्चशील समझौता कर तिब्बत पर उसके अवैध कब्जे को मान्यता दे दी। इस समझौते में एक-दूसरे के निजी मामलों में हस्तक्षेप न करने और भौगोलिक अखण्डता का सम्मान करने की बात थी। याद रहे, यह समझौता करने से पूर्व और इसके बाद भी चीन भारत की भौगोलिक अखण्डता पर लगातार चोट पहुँचाता रहा था और भारतीय प्रधानमन्त्री की निजी जानकारी में ये बातें थीं; पर उन्होंने चीनी अतिक्रमण का प्रतिकार करना तो दूर, देश को उनकी जानकारी तक न दी। वे 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारे में उलझे रहे। तिब्बत पर चीनी कब्जे को मान्यता देते समय उनहें चीन द्वारा मैकमोहन रेखा (भारत-तिब्बत सीमा) को मान्यता दिलाना भी याद न रहा।

वी.के. कृष्ण मेनन जवाहरलाल नेहरू ले.जन. बी.एम. कौल
(चीन से १९६२ युद्ध में पराजय के अपराधी)

१९६२ के युद्ध से पूर्व भारतीय सेना सरकार से लगातार अपनी अभावग्रस्तता का रोना रोती थी, पर नेहरू ने सुरक्षा के लिए जरूरी साजोसामान, हथियार आदि, यहाँ तक कि हिमालय के ठण्डे इलाकों में पहनने योग्य वस्त्रों और जूतों तक से सेना को वञ्चित रखा। नेहरू ने अपने रिश्तेदार लेफ्टिनेण्ट जनरल बी.एम. कौल को कोर कमाण्डर बनाकर

(शेष पृष्ठ ११८ पर)

देवतात्मा है हिमालय

– माधव गोविन्द वैद्य

हिमालय देवतात्मा है। कविकुलगुरु कालिदास ने अपने 'कुमारसम्भव' नामक महाकाव्य का प्रारम्भ ही 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः' यानी उत्तर दिशा में हिमालय नाम का देवतास्वरूप पर्वतों का अधिराजा स्थित है– इस पंक्ति से किया है। आधुनिक विज्ञानवादियों के मन में प्रश्न उठ सकते हैं कि क्या पर्वत कभी देवतास्वरूप हो सकता है ? अरे ! पर्वत होता ही क्या है ? चट्टानों का ढेर, पाषाणों का समूह, एक ऊबड़-खाबड़ निसर्गनिर्मित वस्तु ही न ? किन्तु हम हिन्दुओं की दृष्टि भिन्न है। हम निसर्ग को अपना मित्र मानते हैं, शत्रु नहीं। अतः 'निसर्ग पर विजय' (conquest of Nature) या निसर्ग का शोषण (exploitation of Nature) ये अवधारणाएँ हमें मूलतः अमान्य हैं। हम सृष्टिपूजक हैं। हमारी 'धर्म' की जो व्यापक अवधारणा है, वह हम को निसर्ग से जोड़ती है। जिस 'धृ' धातु से 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, उस धातु का अर्थ ही जोड़ना, बाँध के रखना, धारणा करना, ऐसा है। 'धर्म' जोड़ कर रखता है, धारण करता है। किसको जोड़ कर रखता है ? व्यक्ति को समष्टि से, मानवसमष्टि को सृष्टि से और तीनों को परमेष्ठी से। व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्ठी को जो जोड़कर रखता है, वह 'धर्म' है, यह हमारी मौलिक मान्यता है।

कालिदास

बंकिमचन्द्र चटर्जी

निसर्ग जीवमान

इन सबको जोड़ कर कैसे रखें। हमारा एक खास तरीका है। उस वस्तु को हम पूज्यभाव से महिमान्वित करते हैं। जमीन क्या होती है ? केवल कंकड़, पत्थर ही न ? किन्तु हम जब मातृरूप में उसे देखते हैं, तो हमारा सारा भावविश्व बदल जाता है। फिर वह जमीन निर्जीव नहीं रहती, जीवमान होती है, मातृभूमि बनती है, चेतना से युक्त हो जाती है। फिर बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे उत्कट भावकवि के लिए वह 'दशप्रहरणधारिणी दुर्गा' बनती है; 'कमलदलविहारिणी' लक्ष्मी बनती है, 'विद्यादायिनी' सरस्वती बनती है। जैसी भूमि, वैसी ही नदियाँ। हमने उनको 'लोकमाता' कहकर पूज्यभाव से गौरवान्वित किया है। आखिर नदी क्या होती है, पानी का प्रवाह ही न ! और पानी क्या होता है क२ज (H_2O); किन्तु हम हिन्दुओं के लिए गंगा केवल पानी का ढेर नहीं है। वह गंगामैया है। बस 'मैया' बनते ही उसके हमारे रिश्ते ही बदल जाते हैं। इसी भूमिका से हमने अनेक प्राणियों को किसी न किसी देवता-स्वरूप के साथ जोड़ दिया है। बैल को शिवजी के साथ, गो को श्रीकृष्ण के साथ, सिंह को दुर्गा के साथ, हंस और मयूर को सरस्वती के साथ, साँप को शिवजी के साथ और छोटे से चूहे को भी श्रीगणेश जी के साथ। प्राणी कम से कम सचेतन तो भी होते हैं; किन्तु जिन पेड़ों, पुष्पों को हम अज्ञान से कहिये, भ्रम से कहिये, अचेतन मानते हैं, उनको भी किसी न किसी देवता-स्वरूप से जोड़ दिया है। तुलसी को विष्णु भगवान् के साथ, बिल्व को शिवजी के साथ, वट को सावित्री के साथ, उदुम्बर को भगवान् दत्तात्रेय के साथ। इस प्रकार पवित्रता का भाव मन में धारण कर निसर्ग की ओर– आज की भाषा का प्रयोग करना हो, तो पर्यावरण की ओर– देखना हमारे लिए धर्म है। फिर पर्वत कैसे बचेंगे ! हर प्रदेश में जहाँ कहीं पहाड़ी होगी, वहाँ भगवान् का मन्दिर मिलेगा। उस मन्दिर के साथ वह पहाड़ी भी पवित्र बन जाती है।

पवित्र हिमालय

अतः हिमालय देवतात्मा बना, तो इसमें क्या आश्चर्य ! किन्तु यह मत समझो कि हिमालय की महिमा कवि कालिदास ने ही पहले वर्णित की है। कालिदास, केवल पूर्वऋषियों के ही भाव का अपने अजरामर काव्य में अनुवाद कर रहे हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में हिमालय का उल्लेख है। वहाँ उसको हिमवान् कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में उसे 'हिमवत्' कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता के १०वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभूतियों का वर्णन करते समय बताते हैं 'स्थावराणां हिमालयः'– 'स्थावर' शब्द का अर्थ, आद्य शंकराचार्य बताते हैं– 'स्थितिमान' यानी अचल।

हिमालय पवित्र है, अतः उसके अन्दर के अनेक स्थान

भी पवित्र हैं। कैलास हिमालय का अंग है। मानसरोवर वहीं है। अमरनाथ भी वहीं है। यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बदरीनाथ ये चारों पवित्र धाम हिमालय की गोद में बसे हैं। पशुपतिनाथ भी इसी में हैं। कितने नाम गिनायें ? हिमालय का कण-कण पवित्र है। इसीलिए तो सारे बड़े महान् तपस्वी यहाँ आकर तप करते थे और अपने आश्रमों की भी स्थापना उसी के परिसर में करते थे। वाल्मीकि का आश्रम तमसा के किनारे पर यानी हिमालय में ही था। वैसे ही वसिष्ठ का भी आश्रम हिमालय के निचले हिस्से में था। कण्व ऋषि का मालिनी के तीर पर। व्यास मुनि तो बदरीनाथ में ही रहते थे। आधुनिक समय में स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द ने हिमालय के आँचल में ही तप किया था।

गंगोत्री

बुद्धिमानी का निकष

यह हुई हिमालय की भावमयी गरिमा; परन्तु भावों की उड़ानों में भौतिक हकीकत को भूल जाना बुद्धिमानी नहीं है। अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ ने अपनी एक कविता में स्काईलार्क पक्षी को बुद्धिमानों का नमूना बताया है। कारण, वह पक्षी आकाश में ऊँची उड़ानें तो भरता है; किन्तु कभी भटकता नहीं। स्वर्ग और धरा पर उसकी समान निगाह रहती है। वर्ड्सवर्थ के शब्द हैं–

Type of the wise who soar but never roam
True to the kindred points of heaven and home

हमें भी भावनाओं के बहाव में बह नहीं जाना चाहिए। कालिदास हिमालय का पूर्व-पश्चिम विस्तार बताते हैं। 'पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।' ये कालिदास के शब्द हैं। पूर्व और पश्चिम के समुद्रों को यानी पूर्व में पैसिफिक महासागर को और पश्चिम में भूमध्य सागर को स्पर्श करता हुआ, हिमालय मानो पृथ्वी को नापनेवाला मानदण्ड बना है। हमें आज हिमालय छोटा लगता है; किन्तु वैसा छोटा वह नहीं था। हमने अपनी दुर्भाग्यपूर्ण कृतियों से उसे छोटा किया है। उत्तर की उपत्यकाओं को हमने अपने से दूर किया है। अपनी मूर्खता से अपने राजनीतिक शत्रु के हवाले कर दिया है। त्रिविष्टप यानी तिब्बत हमारा था। हमने उसे परायों का बनाया। जहाँ भगवान् शिवजी का निवासस्थान है, वह कैलास विदेशी कैसे हो सकता है ? गंगा स्वर्ग से यानी त्रिविष्टप से बहती थी।
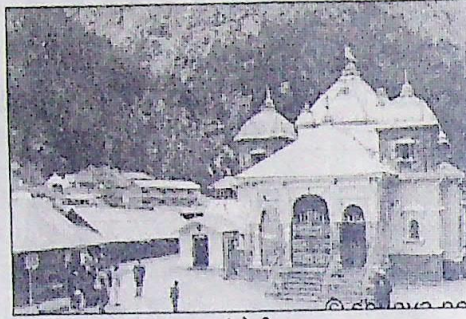
भगीरथ अभूतपूर्व बहादुरी से उसे भरतभूमि पर लाये। राजा भगीरथ के पूर्वज महाराज सगर के समय उनकी साठ हजार प्रजा अकाल के कारण कालकवलित हो गयी थी। पुराण बतलायेंगे कि महाराज सगर के साठ हजार पुत्र थे, वे मर गये। अरे ! ध्यान दें कि 'प्रजा' के संस्कृत भाषा में दो अर्थ होते हैं। (१) जन और (२) सन्तति। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' यह परिभाषा है। भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर यानी भारत की भूमि पर लाये और तब से जहाँ से गंगा बहती है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष नहीं आया।
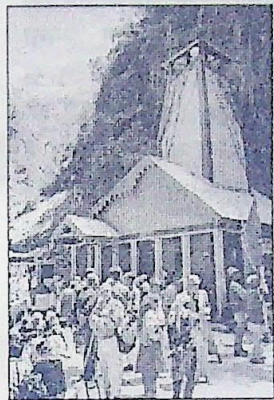
यमुनोत्री

पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य

तो हम बात कर रहे थे हिमालय के विस्तार की। ईरान से प्रशान्त महासागर तक उसके विस्तार के प्रमाण आज भी विद्यमान हैं। 'ईरान' यह आर्यन् है। अफगानिस्थान, उपगणस्थान है। दशरथ महाराजा की पत्नी कैकेयी और धृतराष्ट्र की गान्धारी जहाँ की निवासिनी थीं, वहाँ से लेकर ब्रह्मदेश की उत्तर सीमा पार कर प्रशान्त महासागर तक हिमालय की श्रेणियाँ हैं। 'पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य' इसे केवल कवि की कल्पना मात्र मानने का कोई कारण नहीं है। हिन्दुकुश हिमालय पर्वतमाला का ही हिस्सा है और ब्रह्मदेश (आज का म्यांमार) पार करती हुई जो माला है, जिसे 'पटकोई श्रेणी' इस नाम से जाना जाता है, वह हिमालय का ही अंग है।

हिमालय के विभाग

आज जो हमारे भारत से सटा हिमालय है, उसके भी अनेक विभाग हैं। वे इस प्रकार–

केदारनाथ

(१) कश्मीर हिमालय– इस क्षेत्र में जम्मू और पुंछ की पहाड़ी तथा काराकोरम पर्वत आता है। प्राचीन वाङ्मय में काराकोरम का नाम 'कृष्णगिरि' ऐसा आता है। काराकोरम पर्वत–श्रेणी, कश्मीर और चीन के सिंकियांग प्रान्त के बीचोबीच है। लद्दाख और पीरपंजाल भी इसी भाग में हैं। इसी प्रदेश में नंगाशिखर है, जिसकी ऊँचाई २६,६२० फीट है। हिमालय के इसी हिस्से में 'के–२' यानी 'गॉडविन आस्टिन' यह भी शिखर है, जिसकी ऊँचाई २८,२५० फीट है।

(२) पंजाब हिमालय– इसका स्थान पंजाब और हिमाचल प्रदेश में है। पंजाब को जलार्द्र करनेवाली सारी नदियाँ इसी पर्वत श्रेणी से निकलती हैं। कुलू (हिमाचल प्रदेश) की पहाड़ियों में देओ तिब्बा और इन्द्रासन नाम के दो शिखर हैं, जिनकी ऊँचाई १८००० फीट है।
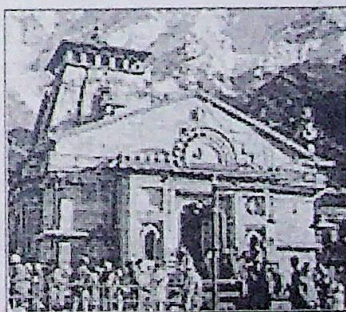
(३) कुमाऊँ हिमालय– यह उत्तराखण्ड में है। इस पर्वतश्रृंखला से गंगा और यमुना के प्रवाह नीचे आते हैं। इस भाग में सर्वोच्च शिखर नन्दादेवी है, जिसकी ऊँचाई २६,६६५ फीट है। १८ से २४ हजार फीट ऊँचाईवाले अनेक शिखर इस पर्वत-राजि में हैं।

(४) नेपाल हिमालय– सुप्रसिद्ध गौरीशंकर (सागरमाथा) या माउण्ट एवरेस्ट इसी हिस्से में है। ऊँचाई २६,००२ फीट। अन्य शिखरों में धौलागिरि (२६,७६५ फीट), अन्नपूर्णा (२६,४६० फीट), मनासल (२६,६०० फीट), गोसाईंनाथ (२६,२६१ फीट), चो ओयु (२६,५६० फीट), मकालू (२७,६५० फीट), कांचनजंगा (२८,१४६ फीट) प्रमुख हैं। यह भाग हिमनदों से भी भरपूर है।

बदरीनाथ

(५) पूर्व हिमालय– इस विभाग की ऊँचाई तुलनात्मक दृष्टि से कम है। सबसे ऊँचा शिखर नामचा बरवा (२५,४४१ फीट) असम में है। ब्रह्मपुत्र नदी इसी क्षेत्र से बहती है और गहन अरण्यों से यह विभूषित है। (सन्दर्भ– भारतीय संस्कृति कोश, खण्ड १०)

अब प्रहरी नहीं

एक समय था कि जब हिमालय को भारत की उत्तर दिशा का प्रहरी माना जाता था। कभी लगता ही नहीं था कि उसे पार कर कोई भारत पर आक्रमण करेगा; किन्तु अब वह स्थिति नहीं रही है। हमने अपनी अविचारित राजनीति से (उसे दुर्नीति ही कहना उचित) तिब्बत का समर्पण कर दिया है और एक विस्तारवादी शत्रु को पास में आने की व्यवस्था बना ली। तिब्बत एक मध्यवर्त्ती राज्य (बफर स्टेट) था। अंग्रेजों का जब अपने देश पर शासन था, तब इस 'बफर स्टेट' को बाकायदा बनाये रखने की उचित राजनीति का उन्होंने अवलम्ब किया था। २०वीं सदी के प्रारम्भ में, तिब्बत के एक मुख्य प्रशासक एवं धार्मिक नेता दलाई लामा ने रूस के साथ नजदीकी बनाने की चाल चली थी, तो

अंग्रेजों ने अपनी सेना भेजकर उसको ठिकाने लगाया और बाद में एक सन्धिपत्र के जरिए, अंग्रेज सेना की एक टुकड़ी तिब्बत की राजधानी ल्हासा में रहने लगी। तिब्बत की टेलीग्राफ की सारी व्यवस्था अंग्रेजों के कब्जे में थी। अंग्रेज नागरिकों को कुछ खास अधिकार भी थे। अंग्रेजी शासन के उत्तराधिकार के रूप में हमें यह सब प्राप्त था; किन्तु हमने 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के भूलभुलैये में फँसकर वह सारा खो दिया। आर्य चाणक्य की परिभाषा में जो चीन हमारा 'सहज मित्र' था, वह 'सहज शत्रु' बना और १९६२ में उसने अपनी

शत्रुता का पूरा परिचय हम लोगों को करा दिया। आज भी हमारी ही मातृभूमि का एक हिस्सा चीन के कब्जे में है। अरुणाचल सदियों से भारत का अंग है। चीन यह भी बात मानता नहीं। हिमालय, अब शत्रु आक्रमण की दृष्टि से हमारा स्वाभाविक प्रहरी नहीं रहा। वह अब अभेद्य दीवार के रूप में हमारा रक्षणकर्त्ता नहीं बचा।

निसर्गरूप संरक्षण

किन्तु हमें उत्तर दिशा की अत्यन्त कठोर शीतलहरों से बचाने का अपना कार्य हिमालय अभी भी कर रहा है और निरन्तर यह कार्य वह करता रहेगा। हिमालय इस सुरक्षा-व्यवस्था का नैसर्गिक प्रबन्ध नहीं करता, तो पूरा भारत शीतवायु के झकोरों से सदा त्रस्त रहता और एक शैत्ययुक्त रेगिस्तान बन जाता। और एक दृष्टि से वह हमारा उपकारकर्त्ता है। हिन्द महासागर से नैर्ऋत्य और आग्नेय दिशा से आनेवाले पर्जन्यदायी मेघों को हिमालय रोकता है और पर्याप्त वृष्टि से सारे प्रदेश को ओत-प्रोत कर देता है। इसी कारण उत्तर भारत की भूमि सुजला, सुफला और उर्वरा बनी हुई है। हिमालय के इस उपकार को हमें कभी भूलना नहीं चाहिए।
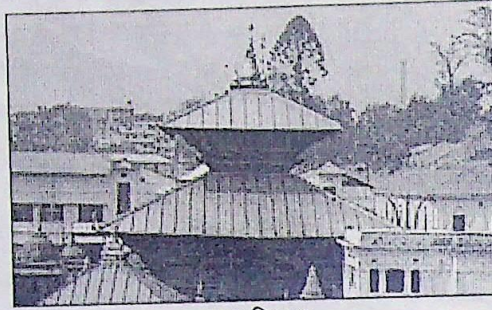
पशुपतिनाथ

चुनौती स्वीकार करें

हिमालय जहाँ है, वहाँ ही रहेगा, जैसा है, वैसा ही रहेगा। आधुनिक विज्ञान का विकास मानवों को हवाई उड़ानों द्वारा हिमालय को आसानी से लाँघने के उपकरण भी प्रस्तुत करेगा। फिर भी हिमालय हमारा बना रहना चाहिए। नयी पीढ़ी को यह चुनौती स्वीकार करना चाहिए कि हम समूचे हिमालय को अपना करके रखेंगे। किसी भी पर्वत से उसकी उपत्यकाएँ अलग नहीं की जा सकतीं, जैसे मनुष्य से उसकी छाया अलग नहीं की जा सकती। नयी पीढ़ियों को यह आह्वान है

कि वे पूर्व-पश्चिम सागर को छूनेवाला, अपने ऋषि-मुनियों की तपःस्थली, हमारी लोकमाताओं का जन्मदाता, हमारे पवित्र तीर्थों से विभूषित और आसेतु सब भारतवासियों की देवभूमि इस हिमालय को फिर से देवात्मत्व प्राप्त करा दें। दानवों के प्रभाव से उसे मुक्त कर दें।

□

– ३०१, तारा विलास अपार्टमेण्ट, डॉ. मुञ्जे मार्ग, धन्तोली, नागपुर– ४४००१२

देवतात्मा हिमालय और भारत के साधु-सन्त

– डॉ. भवानीलाल भारतीय

महाकवि कालिदास ने हिमालय को देवतात्मा कहा तथा उसे समस्त भूमण्डल का मानदण्ड बताया। संसार के सर्वाधिक प्राचीन धर्मग्रन्थ वेदों में परमात्मा का कीर्तिगान करते हुए तथा उस ईश्वर के रचना चातुर्य का बखान करते हुए कहा गया है–

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

– यजु. २५/१२

उस सर्वशक्तिमान् की महिमा का गान करते हुए हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियाँ दुग्धधवल ज्योति कणों को विकीर्ण कर रही हैं। वेद का ही कथन है कि भगवद्भक्त उपासक को परमात्मा की उपासना प्रकृति के रम्य स्थलों में करनी चाहिए–

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्
धिया विप्रोऽजायत।। यजुर्वेद– २६/१६५

पर्वतों की उपत्यकाओं तथा कलकलनादिनी नदियों के तटों पर बैठकर की गयी उपासना उपासक की बुद्धि को परम सत्ता की ओर प्रेरित करती है।

भारत को ही यह सौभाग्य मिला है कि उसके उत्तर में नगाधिराज हिमालय अपनी विशाल भुजाओं को फैलाकर इस राष्ट्र की रक्षा करता है। महाकवि 'दिनकर' ने पर्वतराज हिमालय की वन्दना करते हुए उसे भारत-जननी का हिमकिरीट बताया, तो साथ ही उसे भारतमाता का दिव्य भाल कहा–

मेरी जननी के हिमकिरीट, मेरे भारत के दिव्य भाल।

अनादि काल से हिमालय के गौरव का बखान शतशः ग्रन्थों में हुआ है। महाभारत के युग में जायें, तो पता चलता है कि इसी पर्वतमाला में नर तथा नारायण ऋषियों ने तपस्या की थी तथा यहाँ रहकर उन्होंने अपनी अध्यात्म-शक्ति को बढ़ाया था। महाभारत के युद्ध की समाप्ति तथा हस्तिनापुर के सिंहासन पर महाराज परीक्षित् को स्थापित कर पाँचो पाण्डव तथा राजमहिषी द्रौपदी ने इसी पर्वत पर जाने का मन बनाया। महाभारत का महाप्रस्थानिक पर्व हिमालय पर पाण्डवों के आगमन तथा देह-विसर्जन की गाथा का गान करता है।

स्वामी रामतीर्थ

आज से बाइस सौ वर्ष पूर्व जब अद्वैत वेदान्त के पुरस्कर्त्ता भगवान् आद्य शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक मत का प्रतिपादन कर भारत के चारो कोनों में चार मठ बनाये, तो उत्तर दिशा में उत्तरकाशी के निकट जोशी मठ की स्थापना कर इस पार्वत्य प्रदेश को गौरव प्रदान किया था।

महाकवि कालिदास तो हिमालय की महिमा से इतना अभिभूत थे कि उन्होंने अपने अमर काव्य 'कुमारसम्भवम्' का आरम्भ ही हिमालय की महिमा का बखान कर किया। हिमालय की गोद में जनमी, पली, बढ़ी पार्वती ने जब पति रूप में शंकर को प्राप्त करने के लिए तपस्या की, तो उन्होंने इसी रम्य-स्थान को अपनी तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान पाया। अपने पावन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने निराहार रहकर उग्र तप किया, तो आशुतोष भगवान् शंकर ने उन्हें देहदण्ड को न त्यागने तथा शरीर रक्षा को धर्म-साधन का प्रमुख कारण बताया–

त्रियुगीनारायण मन्दिर

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्। कहना नहीं होगा कि मेघदूत का वियोगी यक्ष भी हिमालय के क्रोड में बसी अलका नगरी जाने के लिए मेघ से प्रार्थना करता है। वियोगिनी यक्ष-पत्नी इसी अलका नगरी में अपना निवास बनाये हुए है और वहाँ आकर मेघ को शापग्रस्त यक्ष का प्रणय सन्देश उसे देना है। हिमालय की महिमा का गायन जहाँ विभिन्न शास्त्रों में हुआ है, वहाँ काव्यों, नाटकों आदि वाङ्मय की विविध विधाओं में हिमालय के सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भौतिक महत्त्व का गायन किया गया है। सिख पन्थ का प्रमुख धर्म-स्थान हेमकुण्ड भी हिमालय के इसी रम्य परिवेश में स्थित है।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब भारत में नवजागरण तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की पदचाप सुनायी पड़ी, तो इस पुनर्जागरण के ध्वजवाहक महापुरुषों ने भी हिमालय प्रदेश की यात्राएँ कर यहाँ से मानसिक सम्बल

प्राप्त किया। ब्रह्म समाज के संस्थापक तथा आधुनिक भारत के द्रष्टा राजा राममोहन राय अपने प्रारम्भिक प्रवास कार्यक्रम में तिब्बत तक पहुँचे तथा वहाँ की बौद्ध बालाओं का आतिथ्य ग्रहण किया था। कालान्तर में जब आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर उत्तराखण्ड में पाँव प्यादे घूमते हुए योग-सिद्धि-सम्पन्न तपस्वियों का सत्संग लाभ लेने के लिए विस्तृत भ्रमण किया था, इस पार्वत्य प्रदेश में वे कहाँ-कहाँ गये, इसका विवरण उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में दिया है। दयानन्द की यह यात्रा निम्न स्थानों एवं धर्मस्थलों में हुई थी– हरिद्वार के निकट का चण्डी पर्वत, ऋषिकेश, टिहरी, श्रीनगर, केदारघाट, रुद्रप्रयाग, अगस्त्याश्रम, शिवपुरी (पर्वत-शृंग), गुप्तकाशी, गौरी कुण्ड, भीमगुफा, त्रियुगीनारायण, तुंगनाथ, ऊखीमठ, जोशीमठ, बदरीनाथ तथा रामपुर। १८७५ की अपनी पुणे यात्रा में जब स्वजीवन वृत्तान्त सुनाने के लिए भक्तजनों ने उनसे आग्रह किया, तो अपने हिमालय-प्रवास के बारे में उन्होंने कहा– "जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी, उस पर भी मैं गया था।" अपनी इस रोचक तथा रोमाञ्चक पार्वत्य-यात्रा का यथातथ्य वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया। नंगे पाँव इस दुर्गम पर्वत-स्थली पर अनवरत भ्रमण करते हुए उनके पाँव भयंकर शीत के कारण जड़ हो गये। रात्रि-विश्राम के लिए वे किस प्रकार बदरीनाथ मन्दिर पहुँचे और वहाँ के प्रधान पुजारी रावल जी का आतिथ्य प्राप्त किया, यह उनके आत्मकथन में विस्तार से वर्णित है। इतिहास विषयक अपने दशम व्याख्यान में उन्होंने कहा– "विष्णु वैकुण्ठ के रहनेवाले थे और वही नगर उनकी राजधानी थी। महादेव कैलास के निवासी थे। कुबेर अलकापुरी के निवासी थे। यह सब इतिहास केदार-खण्ड में वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इस प्रदेश में सब ओर घूमे हुए हैं।" इस प्रदेश के बारे में उन्होंने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया– "कश्मीर से लेकर नेपाल तक हिमालय की जो ऊँची चोटियाँ हैं, वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष रहते थे। इस देवलोक (आज भी हिमाचल प्रदेश को देवभूमि कहा जाता है) में भद्र पुरुष प्रत्येक स्थान पर राज्य करते थे।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती
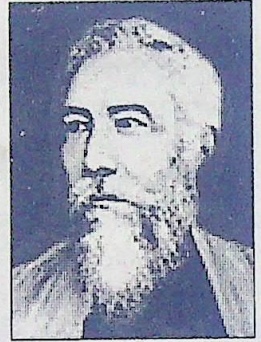
राजा राममोहन राय

देवेन्द्रनाथ ठाकुर

राजा राममोहन राय के पश्चात् महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर को ब्रह्म समाज का नेतृत्व प्राप्त हुआ। ठाकुर महाशय गृहस्थ में रहते हुए भी तपस्वी का-सा जीवन व्यतीत करते थे। उनकी आध्यात्मिक साधना का स्थान शिमला तथा निकटवर्ती पार्वत्य-प्रदेश था। अपने लौकिक इति-कर्त्तव्यों से जब भी उन्हें अवकाश मिलता, वे हिमालय के इन उत्तुंग शिखरों की यात्रा में निकल पड़ते। देश में ही नहीं, विदेशों में भी हिन्दू धर्म तथा आर्य-संस्कृति की गौरवगाथा सुनाने वाले स्वामी विवेकानन्द के लिए हिमालय-यात्रा सदा प्रेरणादायी रही। यही कारण है कि अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) में रामकृष्ण मठ तथा वेदान्त आश्रम आज भी कार्यरत हैं। वेदान्त के प्रचारक स्वामी रामतीर्थ तो दीपावली के दिन हिमालय में बहनेवाली देवनदी गंगा के पावन क्रोड में समा गये थे। आर्य संन्यासियों में महात्मा आनन्द स्वामी का नाम जाना माना है। कई बार हिमाचल प्रदेश की यात्राएँ कर उन्होंने अपनी अध्यात्म-साधना को परिपक्व किया था। महात्मा नारायण स्वामी ने नैनीताल जिले के रामगढ़ में नारायण-आश्रम की स्थापना कर योग साधकों को योग-साधन में प्रवृत्त किया। स्वामी ब्रह्ममुनि के अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थ मसूरी की सुरम्य स्थली में लिखे गये। निश्चय ही हिमालय की इस पावन क्रोड में बैठकर आध्यात्मिक भावना का विकास होता है।

□

– ३/५, शंकर कॉलोनी, श्रीगंगानगर– ३३५००१ (राज.)

तिब्बती सरकार के मन्त्रिमण्डल

प्रथम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

जुरखाङ् वाङ्चेन गेलेक

- जुरखाङ् वाङ्चेन गेलेक (प्रधान मन्त्री)
- नेशार थूपतेन थारपा (विदेश मन्त्री)
- शेंखा गुरमे तोपग्याल (धर्म मन्त्री)
- गादराङ् लोबसाङ् रिगजिन (वित्त मन्त्री)

द्वितीय मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

शेंखा गुरमे तोपग्याल

- शेंखा गुरमे तोपग्याल (प्रधान मन्त्री)
- नेशार थूपतेन थारपा (विदेश मन्त्री)
- फाला थूपतेन योनतेन (गृह मन्त्री)
- थूपतेन नोरसाङ् (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री)
- गारङ् लोबसाङ् रिगजिन (वित्त मन्त्री)
- कुनलिङ् वोसेर ग्याल्त्सेन (शिक्षामन्त्री)

तृतीय मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

गारङ् लोबसाङ् रिगजिन

- गारङ् लोबसाङ् रिगजिन (प्रधान मन्त्री)
- कुनलिङ् वोसेर ग्यिाल्त्सेन (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री)
- वाङ्डू दोरजी (गृह मन्त्री)
- जाङ्चो त्सेरिंग गोम्पो (शिक्षा मन्त्री)

चतुर्थ मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

कुनलिङ् वोसेर ग्याल्त्सेन

- कुनलिङ् वोसेर ग्याल्त्सेन (प्रधान मन्त्री)
- वाङ्डू दोरजी (गृह मन्त्री)
- तारिङ् जिग्मे सैम्प्टेन वांगपो (शिक्षा मन्त्री)
- झेशोङ् त्सेवाङ् तामदिन (रक्षा मन्त्री)

पञ्चम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

वाङ्डू दोरजी

- वाङ्डू दोरजी (प्रधान मन्त्री)
- झेशोङ् त्सेवाङ् टामदिन (वित्त मन्त्री)
- फेचो थूपतेन न्यीनचेन (शिक्षा मन्त्री)
- तकला फुन्त्सोक ताशी (रक्षा मन्त्री)
- जुचेन थूपतेन नामग्याल (सूचना मन्त्री)
- सादू रिन्चेन धोन्दुप (दिल्ली ब्यूरो मन्त्री)

षष्ठ मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

जुचेन थूपचेन नामग्याल

- जुचेन थूपतेन नामग्याल (प्रधान मन्त्री)
- तेनजिन ग्येचे तेथाङ् (शिक्षा मन्त्री)
- लोबसाङ् धारग्याल (वित्त मन्त्री)
- ताशी वाङ्दी (रक्षा एवं सूचना मन्त्री)

सप्तम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

जुचेन थूपचेन नामग्याल

- जुचेन थूपतेन नामग्याल (प्रधान मन्त्री)
- तेनजिन ग्येचे
- लोबसाङ् धारग्याल (वित्तमन्त्री)
- ताशी वाङ्दी (रक्षा एवं सूचना मन्त्री)
- शावो लोबसाङ् धारग्याल (मन्त्री)
- अलक जिग्मे लुन्दुप (रक्षा मन्त्री)
- ग्यारी लोदी ग्याल्त्सेन (धर्म एवं स्वास्थ्य मन्त्री)

अष्टम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

केलसाङ् येशी

- केलसाङ् येशी (प्रधान मन्त्री)
- जेतसुन पेमा (स्वास्थ्य एवं शिक्षा मन्त्री)
- तेनजिन नामग्याल तेथाङ् (रक्षा एवं सूचना मन्त्री)

नवम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

ग्यालो थोण्डुप

- ग्यालो थोण्डुप (प्रधान मन्त्री)
- केलसाङ् येशी (धर्म एवं स्वास्थ्य मन्त्री)
- तेनजिन नामग्याल तेथाङ् (गृह एव वित्त मन्त्री)
- जेतसुन पेमा (शिक्षा मन्त्री)
- ताशी वाङ्दी (सूचना एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध मन्त्री)

दशम मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

तेनजिन नामग्याल तेथाङ्

- तेनजिन नामग्याल तेथाङ्, प्रधान मन्त्री (वित्त, सूचना एवं विदेश मन्त्रालय) (१९९३–९५)

- केलसाङ् येशी (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री) (१९९३–९६)
- रिनचेन खानदो चोग्याल (गृह, स्वास्थ्य एवं शिक्षा मन्त्री) (१९९३–९६)
- जेतसुन पेमा (शिक्षा मन्त्री) (फरवरी–जुलाई–१९९३)
- ग्यालो थोण्डुप (रक्षा मन्त्री) (१९९३)
- ताशी वाङ्दी (सूचना, स्वास्थ्य एवं विदेश मन्त्री) (१९९३–९६)
- सोनम तोपग्याल (गृह, स्वास्थ्य एवं प्रधान मन्त्री) (१९९५–९६)
- ल्हामो त्सेरिंग (रक्षा मन्त्री) (१९९३–अगस्त ९६)
- दावा त्सेरिंग (वित्त मन्त्री) (१९९४–९६)

एकादश मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

सोनम तोपग्याल

- सोनम तोपग्याल (प्रधान मन्त्री) (अप्रैल १९९७–२००१)
- ताशी वाङ्दी (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री– १९९६–२००१)
- तेम्पा त्सेरिंग (गृह मन्त्री) (सित. १९९६–२००१)
- सोपा ग्यात्सो (वित्त मन्त्री) (१९९६–२००१)
- रिन्चेन खाङ् दो चोग्याल (शिक्षा मन्त्री) (१९९६–२००१)
- पेमा चिन्जोर (रक्षा मन्त्री) (सित. १९९८–२००१)
- त्सेवांग चोग्याल तेथाङ् (सूचना एवं विदेश मन्त्री) (अप्रैल १९९७–२००१)
- सम्खर याङ्की धाशी (स्वास्थ्य मन्त्री) (१९९६–२००१)
- कल्साङ् येशी (प्रधान मन्त्री) (१९९६–मार्च ९७)
- डोनगक तेनजिन (रक्षा मन्त्री) (१९९६–फर. ९७)
- अलक तेनजिन पेल्बर (धर्म, संस्कृति एवं सुरक्षा मन्त्री) (१९९६–मई १९९८)
- कीर्त्ति रिन्पोचे लोबसाङ् तेनजिन (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री) (अप्रैल १९९७–मार्च ९९)

द्वादश मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

प्रो. समधोङ् रिनपोचे

- प्रो. समधोङ् रिनपोचे (प्रधान मन्त्री) रक्षा मन्त्री– सितम्बर २००१–अगस्त २००६; सूचना एवं विदेशी मन्त्री– २००१–मार्च ०५; गृह मन्त्री मार्च २००५–अगस्त– २००६)
- लोबसाङ् नीमा (गृह मन्त्री– सितम्बर २००१–मार्च '०५; धर्म एवं संस्कृति मन्त्री– मार्च २००५–अगस्त २००६)
- थूपटेन लुनग्रिग (शिक्षा मन्त्री– सितम्बर २००१–अगस्त २००६; धर्म एवं संस्कृति मन्त्री– सितम्बर २००१–मार्च २००५; स्वास्थ्य मन्त्री– मार्च २००५–अगस्त २००६)
- लोबसाङ् न्यानडाक जयुल (वित्त मन्त्री– सितम्बर २००१–अगस्त २००६; स्वास्थ्य मन्त्री– सितम्बर २००१–मार्च २००५; सूचना एवं विदेश मन्त्री– मार्च २००५–अगस्त २००६)

त्रयोदश मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

प्रो. समधोङ् रिनपोचे

- प्रो. समधोंग रिनपोचे (प्रधान मन्त्री) (सित. २००१–अगस्त २०११; गृह मन्त्री– अगस्त १५, २००६– अगस्त ७, २०११)
- वेन, त्सेरिंग फुन्त्सोक (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री) (अक्टूबर ५, २००६–अगस्त ८, २०११)
- त्सेरिंग धोन्डुप (वित्त मन्त्री) (अक्टूबर ५, २००६–अगस्त ८, २०११)
- थुपटेन लुनग्रिग (शिक्षा मन्त्री) (अक्टूबर ५, २००६–मई २६, २०११)
- डोंगचुंग न्गोडुप (रक्षा मन्त्री) (अक्टूबर ५, २००६–अगस्त ८, २०११)
- केसांग वाई टकला (स्वास्थ्य मन्त्री बाद में विदेश मन्त्री) (मई २५, २००७–नव. २७, २००७; विदेशी मन्त्री, नव. २८, २००७–अगस्त ८, २०११)
- चोप पालजोर त्सेरिंग (स्वास्थ्य मन्त्री) (नवम्बर २६, २००७–अगस्त ८, २०११)
- टेम्पा त्सेरिंग (सूचना एवं विदेशी मन्त्री बाद में विना विभाग मन्त्री) (अक्टूबर ५, २००६–नवम्बर २७, २००७; दलाई लामा के प्रतिनिधि, नव. २८, २००७–अगस्त ८, २०११)

चतुर्दश मन्त्रिमण्डल (कशाग) के सदस्य मन्त्रिगण

डॉ. लोबसाङ् सांगे

- त्रिपा डॉ. लोबसाङ् सांगे (प्रधान मन्त्री)
- पेमा चिन्नजोर (धर्म एवं संस्कृति मन्त्री)
- डोल्मा ग्यारी (गृह मन्त्री)
- त्सेरिंग धोन्डुप (वित्त मन्त्री)
- डोंगचुङ् न्गोडुप (रक्षा मन्त्री)
- त्सेरिंग वाङ्चुक (स्वास्थ्य मन्त्री)

□

तिब्बत की स्वतन्त्रता कैसे छिनी

– रमेश पतंगे

'तिब्बत में सात साल' यह हेन्‌रिच हॅरर (Heinrich Harrer) की बहुचर्चित किताब है। इसी नाम से अंग्रेजी में एक चलचित्र भी बनाया गया था। हेन्‌रिच हॅरर जन्म से जर्मन थे। वे जानेमाने पर्वतारोही थे। हिमालय के नंगा पर्वत चढ़ने के लिए चार जनों की एक टोली १६३६ में भारत में आयी थी। इस टोली के प्रमुख थे, पीटर ऑफ्सचन्येटर (Peter Aufschnaiter) सितम्बर १६३६ में द्वितीय महायुद्ध की शुरुआत हुई। जर्मन राष्ट्र अंग्रेजों का शत्रु राष्ट्र बन गया। भारत में सभी जर्मनों को अंग्रेज सरकार ने कैद किया और उनको कारागृह में भेज दिया। ऐसे कैदियों के लिए 'प्रिजनर्स ऑफ वॉर' (युद्धबन्दी) ऐसी संज्ञा दी जाती है। उनको कारागृह याने एक ही जगह उन्हें बन्दी रखा जाता है। उन पर कोई जुल्म जबरदस्ती नहीं होती। हेन्‌रिच हॅरर, पिटर ऑफ्सचन्येटर एक ही साथ बन्दी बनाये गये थे। पहले उन्हें अहमदनगर, बाद में मुम्बई और अन्त में देहरादून रखा गया। वहाँ से भागने की उन्होंने तीन बार कोशिश की; लेकिन वे नाकाम रहे। अन्त में देहरादून से भागने में वे सफल हो गये और हजारों किलोमीटर की पैदल यात्रा करते हुए वे ल्हासा पहुँचे।

हेनरिच हेरर — १३वें दलाई लामा

कठिन सफर

देहरादून से ल्हासा सफर का वर्णन आधी किताब में है। उसे पढ़ते वक्त शरीर पर रोंगटे खड़े होते हैं। यह बहुत साहसपूर्ण सफर है। किसी जमाने में हमारे पूर्वजों ने भी उसी प्रकार यात्रा की है; लेकिन उन्होंने सफरनामा लिखा नहीं, इसलिए इस दुर्गम प्रवास को समझने के लिए हमको विदेशियों का ही साहित्य पढ़ना पड़ता है। जगह-जगह पर उन्हें तिब्बती लोग रोकते थे। अपनी भूमि पर विदेशी को वे अनुमति नहीं देते थे। उनको वापस जाने के लिए कहते थे। आज अपने देश में बांग्लादेशी घुसपैठी, पाकिस्तानी घुसपैठी आते रहते हैं। उन्हें न पुलिस रोकती है, न जनता। तिब्बत की जनता का यह परिचय हमें बहुत कुछ सिखाता है। हेन्‌रिच हॅरर पीटर ऑफ्सचन्येटर ने लोगों को घूस देने का भी प्रयास किया; लेकिन उसमें वे असफल रहे। अन्त में उन्हें तिब्बत जाने की सरकारी अनुमति मिलती है और वे तिब्बत जाते हैं। उनका अन्तिम पड़ाव तिब्बत की राजधानी ल्हासा में रहा।

ल्हासा में उनका निवास १६४४ से लेकर १६५० तक रहा। १६४४ में तिब्बत का लोकजीवन, राजनैतिक जीवन, धार्मिक जीवन कैसा था ? इसको बहुत बारीकी से हेन्‌रिच हॅरर ने लिखा है। १६४४ में तिब्बत का जनजीवन अत्यन्त सादा था। पाश्चात्य जगत् की वैज्ञानिक प्रगति से तिब्बत लगभग अनभिज्ञ था। पूरा तिब्बत बौद्धधर्मीय है; लेकिन तिब्बत के बौद्ध धर्म की अपनी एक अलग पहचान है। दलाई लामा को बुद्ध का अवतार माना जाता है। १३वें दलाई लामा की मृत्यु हो चुकी थी और १४वें दलाईलामा की खोज हो चुकी थी। आज के दलाई लामा १४वें दलाई लामा हैं। दो-तीन साल की अवस्था में ही उनको दलाई लामा करके घोषित किया गया। आनेवाला प्रत्येक दलाई लामा मृत दलाई लामा का पुनर्जन्म माना जाता है। यह पद आनुवंशिक नहीं है, इसलिए कि दलाई लामा अविवाहित होते हैं। उनके देहपतन के पश्चात् उन्होंने नया देह कहाँ धारण किया है, उसकी खोज की जाती है। विद्यमान दलाई लामा की खोज किस प्रकार की गयी, इसका बहुत सुन्दर वर्णन हेन्‌रिच हॅरर की पुस्तक में पढ़ने को मिलता है।

दलाई लामा

दलाई लामा तिब्बत का धर्म प्रमुख भी होता है और राजप्रमुख भी होता है। धर्मसत्ता, राजसत्ता एक साथ चलती है। अभी तक जितने दलाई लामा हो गये, उनमें से एक भी दलाई लामा यूरोप के राजा जैसे अनियन्त्रित दुराचारी, प्रजा को कष्ट देनेवाले नहीं हुए। इसका कारण यह है कि हरएक दलाई लामा को बौद्ध धर्म की शिक्षा बाल्यकाल से ही लेनी पड़ती है और भगवान् गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को जीवन में उतारना पड़ता है। इसी कारण दलाई लामा

यानी अच्छेपन का दूसरा रूप ऐसा तिब्बत की जनता मानती है और जनता की दलाई लामा पर एकान्तिक श्रद्धा रहती है।

हेनरिच हॅरर का सम्बन्ध दलाई लामा से जब वे दस-ग्यारह साल के थे, तब से आया। वे उनके खासे मित्र बने और उन्हें पढ़ाने का काम भी उन्होंने किया। हॅरर की पुस्तक के अन्तिम प्रकरण में दलाई लामा और हॅरर के सम्बन्धों की काफी चर्चा की गयी है। दलाई लामा का निवास पोटाला पैलेस में रहा करता था। जब तक वे राजपद ग्रहण नहीं करते, तब तक उनकी पढ़ाई चलती रहती थी और वहाँ के रीतिरिवाजों के अनुसार उन्हें आम जनता से मिलने की इजाजत नहीं थी। **१९५० से ही तिब्बत पर चीन का संकट गहराता चला गया और तिब्बत की जनता को चीन से डर लगने लगा। इसके पहले १९१० में चीनी सेना ने तिब्बत पर हमला किया था और तिब्बत की जनता पर अमानुषिक-अत्याचार किये थे। लोगों को इसका डर था। १३वें दलाई लामा की मृत्यु के बाद दो साल नये दलाई लामा को खोजने के लिए लगे। अब वे १५ बरस के हो चुके थे। उनको राजगद्दी पर बिठाना आवश्यक बन गया।** उनके नाम से राजतन्त्र मन्त्रीगण चलाते थे। सत्ता हाथ में आने के कारण जैसा हर जगह होता है, वैसे वहाँ पर भी हो रहा था। सत्ता का दुरुपयोग और भ्रष्टाचार का लालच सबको लगा था, इसलिए ल्हासा की जनता का एक हिस्सा यह चाहता था कि शीघ्रताशीघ्र दलाई लामा का राज्यरोहण होना चाहिए। इस प्रकार के पोस्टर भी लोगों ने लगाये थे।

चीनी आक्रमण

चीन ने १९५० में अपनी सेना तिब्बत की सीमा के पास इकट्ठा करना प्रारम्भ किया और ७ अक्तूबर, १९५० को तिब्बत पर धावा बोल दिया। चीन की सेना की तुलना में तिब्बत की सेना दुर्बल थी। उनका संख्याबल कम था; शस्त्रबल कम था। इस विषम लड़ाई में तिब्बत की सेना का जगह-जगह सफाया होता गया। इसकी खबरें भी बहुत देरी से ल्हासा तक पहुँचती थीं। इसका मतलब 'लाइन ऑफ कम्युनिकेशन' भी काफी कमजोर थी।

चीन के आक्रमण के बाद तिब्बती सरकार ने दुनिया से मदद माँगी। संयुक्त राष्ट्र संघ को भी हस्तक्षेप करने के लिए कहा गया। भारत तो तिब्बत का एकदम पास का पड़ोसी था; लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी ने तिब्बत का भाग्य चीन के हाथ में छोड़ दिया था। तिब्बत को वे चीन का ही हिस्सा मानते थे। अंग्रेज सरकार तो परायी सरकार थी, फिर भी उनको भारत के रक्षण की चिन्ता रहती थी। अंग्रेज सरकार ने कभी तिब्बत को चीन का अंग नहीं माना। चीन और भारत के बीच एक स्वतन्त्र और सार्वभौम देश होना चाहिए। चीन विस्तारवादी देश है, वह भारत पर हमला कर सकता है, इससे बचने के लिए भारत और चीन के लिए एक सार्वभौम देश की जरूरत है। अंग्रेज विदेशनीति का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग था। पण्डित नेहरू जी ने देश के सुरक्षा के साथ खिलवाड़ किया। इसीलिए १९५० के तिब्बत पर आक्रमण के समय भारत की भूमिका कुछ नहीं थी। हॅरर के पुस्तक में भी उसका कोई उल्लेख नहीं है।
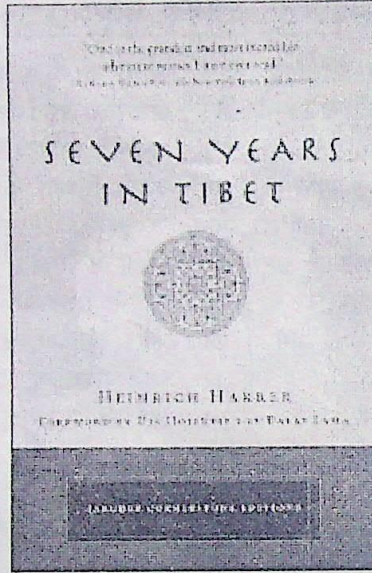
तिब्बत पर कब्जा

चीनी आक्रमण के पश्चात् एक के बाद एक तिब्बती बचाव दल भागते गये। चीनी सेना के साथ वे लड़ नहीं सकते थे। इसका मतलब वे डरपोक थे, देश के बारे में उन्हें कोई प्रेम नहीं था, ऐसा नहीं। जब यह ध्यान में आता था कि हम तो केवल दस हैं और आक्रमण करनेवाले चीनी सौ हैं, तब मुकाबला नहीं हो सकता। धीरे-धीरे यह खबरें राजधानी ल्हासा में आती रहीं। दलाई लामा का राज्यारोहण किया गया। हॅरर लिखते हैं कि उमर में कम होते हुए और राजनीति का अनुभव भी बहुत कम होने के बावजूद दलाई लामा के निर्णय योग्य रहा करते थे।

दलाई लामा को ल्हासा को छोड़ना चाहिए, यह विषय चर्चा पर आया। निर्णय एक धार्मिक विधि करके लिया गया, जिसमें अज्ञात शक्ति को आह्वान कर दलाई लामा ने ल्हासा छोड़ना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए कहा गया। इस विधि का वर्णन हॅरर ने अपनी किताब में किया है। निर्णय यह आया कि दलाई लामा को ल्हासा को छोड़ना चाहिए। उनके ल्हासा छोड़ने की तैयारी गुप्त रूप से होती रही। आम जनता को अगर इसका पता चलता, तो हड़कम्प मच जाता। चूँकि दलाई लामा धर्मप्रमुख भी हैं और राष्ट्रप्रमुख भी हैं, इस कारण उनके निर्गमन की योजना अत्यन्त बारीकी से बनायी गयी। ल्हासा से दक्षिण में जाने का निर्णय हो गया। दलाई लामा के प्रतिस्पर्द्धी के रूप में चीन ने बरसों से पञ्चेन लामा का पद निर्माण कर उसे भी बुद्ध का अवतार घोषित किया था। इस पञ्चेन लामा को लेकर साम्यवादी चीन तिब्बत पर कब्जा करना चाहता था। चीन में ही एक तिब्बत के बालक को चीन में पञ्चेन लामा घोषित कर दिया और उसकी शिक्षा भी उन्होंने वहीं की। तिब्बत में ल्हासा के बाद दूसरा बड़ा शहर आता है, शिगास्ते। वहाँ पर दूसरा सबसे बड़ा बौद्ध धर्मपीठ है। इस धर्मपीठ के धम्म को 'पञ्चेन लामा' यह उपाधि दी जाती है।

जनता प्रेम

तिब्बत की जनता राष्ट्रभक्त है और दलाई लामा-भक्त है। चीन के लाखों प्रयास के बावजूद भी तिब्बती जनता ने पञ्चेन लामा को स्वीकृति नहीं दी। चीन का पञ्चेन लामा बाद में फेल हो गया, यह इतिहास है। दलाई लामा के प्रवास का हृदयस्पर्शी वर्णन इसमें है। दलाई लामा को ल्हासा नहीं छोड़ना चाहिए। असंख्य बौद्ध भिक्षु और जनता रास्ते पर आकर बैठती थी और उनका रोना शुरू होता था। वे कहते थे कि चीन के हाथों हमें मत छोड़िये, आप यहाँ रहिए। वास्तव में इस समय दलाई लामा देश-पलायन नहीं कर रहे, वे केवल स्थानान्तर कर रहे थे। फिर भी लोग नहीं चाहते थे कि स्थानान्तर करें।

बात में १९५० में ऐसी स्थिति बनी कि चीन की सभी शर्तें दलाई लामा को मान्य करनी पड़ीं और वे वापस ल्हासा चले गये। पेकिंग (बीजिंग) में एक करार हो गया। इस करार के अनुसार राजकार्यभार दलाई लामा देखेंगे। सबको धर्म स्वातन्त्र्य रहेगा। तिब्बत की विदेशनीति और तिब्बत की संरक्षण-व्यवस्था चीन देखेगा। तिब्बत में चीन चाहे जितनी सेना भेज सकता है। १९५१ तक पूरे तिब्बत पर चीन ने अपना कब्जा जमा लिया। तिब्बत की खबरें बाहर जाना बन्द हो गयीं। शान्ति से जीवन बितानेवाला तिब्बत; अपने बौद्ध धर्म मार्ग पर चलनेवाला तिब्बत, दुनिया से बिलकुल अलग रहनेवाला तिब्बत यह चीन का शिकार बन गया। दुनिया देखती रह गयी, किसी ने कुछ नहीं किया। यहाँ तक कि तिब्बत की, स्वतन्त्रता छिन जाने और उसको गुलाम बना लिये जाने पर भी दुनिया की आँख से आँसू की एक बूँद भी नहीं टपकी। □

— लोकरचना, सी–१/००२, अमरनगर, मुलुण्ड (पश्चिम)

दो कविताएँ

— सुशान्त सुप्रिय

तिब्बत : एक

तिब्बत की बात करना
'राजनीतिक भूल' है

तिब्बत के बौद्ध लामा
रो रहे हैं

उनके रुदन में छिपा है
दशकों के दमन का दर्द

उनके दर्द में छिपी है
आजाद होने की
उत्कट इच्छा

उनकी आजादी की इच्छा
दमनकारी शासकों का
सिर–दर्द है

दमनकारी शासक
बेहद शक्तिशाली हैं
उन्हें सिर–दर्द देना
'राजनीतिक भूल' है

कोई 'राजनीतिक भूल'
नहीं करना चाहता
इसलिए
तिब्बत के बौद्ध लामा
दशकों से रो रहे हैं।

तिब्बत : दो

जब तिब्बत के
लामा रोते हैं
तो नदियों में
बाढ़ नहीं आती
जब तिब्बत के
लामा रोते हैं
तो भयंकर सूखा
नहीं पड़ता
जब तिब्बत के
लामा रोते हैं
तो कोई भूकम्प
नहीं आता
जब तिब्बत के
लामा रोते हैं
तो धरती से केवल
हरियाली
संगीत
और मिठास
कम हो जाती है
जब तिब्बत के
लामा रोते हैं
तो धरती से केवल
रोशनी
सुगन्ध
और इन्सानियत
कम हो जाती है।

— द्वारा, एच.बी. सिन्हा, ५१७४, श्यामला–बिल्डिंग, वसन्त रोड, नयी दिल्ली– ११००५५

'दलाई लामा' एक मंगोल उपाधि

– हरिकृष्ण निगम

क्या प्रचलित 'खाँ' उपनाम की जड़ों की पृष्ठभूमि गैर-इस्लामी हो सकती है ? इस पर अनेक लोगों को विश्वास नहीं होगा; पर यदि हम मध्ययुगीन विशाल मंगोल साम्राज्य, जो एक समय मेसोपोटामिया या इराक की यूफ्रेटस (फरात) नदी के किनारे से लेकर चीन, तिब्बत व आज के रूस से लेकर प्रशान्त महासागर तक फैला था, वहाँ लगभग १५० वर्षों तक चंगेज खाँ (मूलनाम छिंगिस खाँ) के वंशज सत्ता में रहे थे और बौद्ध धर्म के व्याप्त होने के कारण उन्होंने अनेक तरह की पदवियाँ धारण की थीं, जैसे खाँ, सम्राट, सुल्तान, राजा, शाह, अमीर और यहाँ तक कि दलाई लामा भी मूलतः मंगोल पदवी थी। अगली सात शताब्दियों तक उस विस्तृत क्षेत्र में चंगेज खाँ के वंशज राज्य करते थे। मुगल वंश, वह भी चंगेजी चुगताई वंश की ही एक शाखा थी। रूस के 'गोल्डेन होर्ड' कहलानेवाले शासक हों या कुबलाई खाँ के वंश की चीन की युवान राजवंश की शाखा हो अथवा फारस या इराक के हलाकू के बाद के वंशज हों, सभी मंगोल-साम्राज्य के शाही परिवार की शाखा से जुड़े थे।

छिंगिस खाँ   कुबलाई खाँ

एक विश्वप्रसिद्ध नृवंश शास्त्री जैक वेदर फोर्ड ने अपने शोध-ग्रन्थ 'गेन्गिज खान : एण्ड द मेकिंग आफ द माडर्न वर्ल्ड' में स्पष्ट लिखा है कि यद्यपि चंगेज खाँ आक्रमणकारी था और अपनी जनजातीय पैतृक सम्पत्ति से ऊपर उठकर विना धार्मिक भेदभाव के विशाल भूभाग को रौंदता व पददलित करता हुआ अपनी साहसिकता से विशाल साम्राज्य बना सका था। उसने इस्लामी देशों को भी उसी क्रूरता से विजित किया था।

कुबलाई खाँ, चंगेज खाँ का पोता था, जो मंगोलियाई 'स्टेप्स' के सैकड़ों मील लम्बे घास के मैदानों में 'जनाडू' नामक स्थान पर एक विशाल महल में रहता था। वह इतने स्वतन्त्र विचारों का था कि इस्लामी आस्था के प्रति नहीं; बल्कि बौद्ध धर्म पर विश्वास करता था। यह भी कहा जाता है कि रोमन पोण्टिफ ग्रेगरी ने उसे ईसाई बनाने की बहुत कोशिश की थी; पर वह असफल रहा था।

तिब्बत में प्रचलित लामा-पद्धति की जड़ें मजबूत करनेवाला एक ही व्यक्ति कुबलाई खाँ था। मार्को पोलो तथा ब्रिटिश इतिहासकारों के साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि कुबलाई खाँ एक व्युत्पन्नमति राजा था। वह एक उत्तम धर्म का जिज्ञासु था, इसलिए वहाँ अपने राज्य के विभाजित भागों को एक धर्म में जोड़ने के लिए उस समय के प्रधान लामा शख्य (शाक्य) के साथ ईसाई और इस्लाम धर्मावलम्बी प्रतिनिधि को भी आमन्त्रित किया गया था। अनेक विचार-विमर्श के बाद कुबलाई खाँ इस निर्णय पर पहुँचा कि उस समय के चीन से लगे तिब्बत में भी लामा-पद्धति प्रचलित थी। फिर भी उसने बौद्धधर्म को स्वीकार नहीं किया, जब तक प्रत्यक्ष में इसकी महानता सिद्ध नहीं होती है। तत्कालीन पोप रोमन पौण्टिफ ग्रेगरी सारे मंगोलों को ईसाई बनाने के सपने देख रहा था। कुबलाई खाँ ने पोप को एक पत्र द्वारा उनसे १०० ईसाई आस्था वाले बुद्धिमान् व्यक्तियों को तर्क द्वारा ईसाई धर्म की महानता सिद्ध करने को कहा। उसने पादरियों से कहा कि यदि तुम्हारा धर्म किसी प्रकार का चमत्कार दिखाये, तो मैं उसे स्वीकार करूँगा अन्यथा यदि बौद्ध लामा चमत्कार कर दिखायेगा, तो वह बौद्ध धर्म स्वीकार करेगा।

राजा द्वारा प्रस्तुत चमत्कार को ईसाई पादरी न दिखा सके; पर लामा ने एक ही क्षण में निराधार मद्य के प्याले को राजा के ओठों तक पहुँचा दिया। कुबलाई खाँ ने आश्चर्यचकित होकर लामा पद्धति का बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। यह सन् १२७० का वर्ष था, जब कुबलाई खाँ ने शाक्य पण्डित को (जो शख्य का लामा था) तिब्बत का शासक बना दिया। कुबलाई खाँ ने स्वीकृत धर्म का पोषण किया और मंगोलिया आदि देशों में दर्जनों बड़े मठों की स्थापना की। उसी समय का एक बहुत बड़ा मठ उलान बटोर और पीकिंग में बनवाया गया था। इस प्रकार लामा धर्म सुदृढ़ होता गया।

कुबलाई खाँ का लड़का हलाकू भी इसी प्रकार इस्लामी आस्था में विश्वारा नहीं करता था तथा उसको भी ईसाई बनाने के प्रयत्न हुए थे। अपने देश में भी अत्यन्त प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक विलियम लैरी डिम्पल ने दशकों पहले अपनी

युवावस्था में दूरदराज के 'जनाडू' की यात्रा कर 'प्रिजनर और जनाडू' ग्रन्थ में चर्च के हलाकू को धर्मान्तरित करने के असफल प्रयत्नों पर स्वयं तथ्यों के साथ प्रकाश डाला था। हमारे देश में कदाचित् आज भी अनेक सुविज्ञ पाठकों को भी यह ज्ञात न होगा कि उपर्युक्त दोनों मंगोल योद्धा मुसलमान नहीं थे और खाँ की अन्तिम पदवी का मूल कम से कम तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर बाद तक गैर- इस्लामी था। कई सदी बाद सन् १६४० में मंगोल राजा घुसरी खाँ ने तिब्बत पर विजय कर गेल-लग-पा नामी लामा को शासनाधिकार सौंपकर उसे 'दलाई लामा' पदवी से विभूषित किया। 'दलाई लामा' मंगोल शब्द है, जिसका अर्थ होता है— सागर-सा महान्। सन् १६५० से दलाई लामा पुनः-पुनः जन्म लेकर तिब्बत के धर्मगुरु और शासक होते रहे हैं। ल्हासा स्थित पोटाला राजभवन के निर्माण और नामकरण का श्रेय प्रथम दलाई लामा को है। चाहे लामाओं का मन्त्र एवं तन्त्र पर अत्यधिक विश्वास हो या दैवी आपदाओं, दुर्भिक्ष आदि के अतिरिक्त ताबीज या रक्षाकरण के धागों या घर पर लगाये झण्डों की बात हो, उनकी भारत की मूल आस्था और हिन्दुओं के अच्छे दिन वार या मुहूर्त आदि के ज्योतिष का भी पूरा प्रभाव है।

हलाकू खाँ

कहते हैं कि जब चंगेज खाँ की मृत्यु हुई थी, उसके विश्वस्त सैनिकों ने उसे गुप्त रूप से अज्ञात स्थल पर ले जाकर दफनाया था और लगभग अगले आठ सौ वर्षों तक यह स्थान प्रवेश के लिए प्रतिबन्धित था और यह ऐतिहासिक स्मृति स्थल, जो एशिया के हृदय में गुप्त रहा, कोई भी न जान सका। मंगोल साम्राज्य के पतन के बाद विदेशी सेनाओं ने मंगोलिया के कुछ हिस्से पर विजय पायी, मंगोल नागरिक किसी को भी उस कथित पवित्र पूर्वज के स्मारक-स्थान पर नहीं जाने देते थे। यहाँ तक कि जब अधिकांश मंगोलों ने बौद्ध धर्म अपना लिया, उसके उत्तराधिकारियों ने बौद्ध भिक्षुओं को भी उसके नाम से किसी मन्दिर, मठ या स्मारक को उस स्थान पर नहीं बनाने दिया। बीसवीं शताब्दी में भी इस भय से कि कहीं चंगेज खाँ राष्ट्रवादियों की एकजुटता का प्रतीक न बन जाये, सोवियत

हिमालय की गोद में दो अरब वर्ष पुरानी आर्य संस्कृति के तीन ग्राम

भारत में हिमालय की गोद में अब भी प्राचीन आर्यों की सन्तानों के तीन ग्राम विद्यमान हैं। ये ग्राम लेह (लदाख) में दाह, दारकुन व दारचिक हैं। इन ग्रामों के निवासी स्वयं को आर्य कहते हैं एवं अपने आप को आर्यों का वंशज भी बताते हैं। आर्य संस्कृति की पुष्टि करते हुए ये लोग वेद में बताये गये यज्ञ का अनुष्ठान अतीव श्रद्धा से करते है एवं उसे ओंकार देव का मुख्य आदेश बताते हैं। इन ग्रामों में रहनेवाले लगभग तीन हजार आर्यजन विशुद्ध शाकाहारी हैं। ये लोग अपनी आर्य संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा हेतु बाहर के लोगों को नहीं बसाते, इसी कारण अपनी पुत्रियों व पुत्रों का विवाह बाहर न करके अपने ही आर्यों में करते हैं। खेती करना, गाय पालना आदि मुख्य व्यवसाय हैं। इन आर्य स्त्री-पुरुषों की वेषभूषा भी अन्य सब लोगों से भिन्न है। यहाँ के लोग अपने सिर पर फूलों से सजा हुआ टोपी जैसा मुकुट रखते हैं। नर-नारी सभी सुन्दर मालाएँ और आभूषण भी रखते हैं। इन का रहन-सहन अतीव स्वच्छ और आकर्षित करनेवाला है। महर्षि दयानन्द सरस्वती (जिन्होंने विश्व शान्ति तथा समृद्धि हेतु संसार भर के लोगों को वेदों के ज्ञान से सुभूषित करने हेतु आर्यसमाज की स्थापना की थी) भी स्वरचित संस्कार विधि में लिखते हैं कि आर्य नर-नारी को सिर पर मुकुट, टोपी, पगड़ी आदि रखना चाहिए। उसका सजीव दर्शन आर्यों के इन ऐतिहासिक ग्रामों में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ के लोगों के पास अपने आर्य पूर्वजों के एक विशेष प्रकार के गले में धारण किये हुए लाकेट भी हैं। सभी इनका अनुसरण करके आनन्दित हों। □

— आचार्य आर्य नरेश
वैदिक गवेषक, उदगीथ (हिमाचल)

साम्यवादी दल ने इस स्थान को सुरक्षाकर्मियों के घेरे में रखा। प्रशासन ने इस क्षेत्र को 'अत्यन्त प्रतिबन्धित क्षेत्र' के वर्ग में रख दिया था। यह स्थान मास्को के केन्द्रीय प्रशासन के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रखा गया था। बाद में इस प्रतिबन्धित क्षेत्र के साथ ही सभी पर्यटकों के लिए इसके चारों ओर एक लाख हेक्टेयर का क्षेत्र भी प्रतिबन्धित कर दिया गया। मंगोलिया की राजधानी उलान बटोर के निकट का यह सारा इलाका धीरे-धीरे सोवियत संघ ने एक छावनी में बदल डाला।

सन् १९३७ की बात है, जब कहा जाता है कि चंगेज खाँ की माला मध्य मंगोलिया की मून नदी के नीचे के काली शांख पहाड़ियों के पास बने मठ से लुप्त हो गयी। यहाँ आस्थावान् लामा सदियों से उसकी आत्मा के लिए प्रार्थना कर उसे संरक्षण देते थे। तीस के दशक के दौरान स्टालिन के आदमियों ने लगभग ३०,००० मंगोलों को एक अभियान की श्रृंखला में, जो उनकी संस्कृति को नष्ट करने के लिए थी, मार डाला था। सैन्य बलों ने एक के बाद एक मठ को ध्वस्त किया, मठाधीशों व लामाओं को गोली से भून दिया, सभी धार्मिक उपकरणों व पुस्तकालयों को जलाकर उनके साथ धर्मग्रन्थों को भी स्वाहा कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि उस समय किसी बौद्ध भिक्षु ने गुप्त रूप से चंगेज खाँ की आत्मा के प्रतीक घोड़े के बाल वाला झण्डा, बचाकर शांख मठ से ले जाकर राजधानी उलानबटोर में रखा था, जहाँ से वह फिर गायब हो गया।

पोटाला महल

इस सारे ऐतिहासिक प्रकरण से यह सिद्ध होता है कि 'खाँ' जैसे जाने–पहचाने उपनाम या पदवी के पीछे १३हवीं शताब्दी और बाद के सैकड़ों सालों के अतीत के पीले पड़े पृष्ठ इसकी बौद्ध पृष्ठभूमि के कारण भारत से जोड़ते हैं। सातवीं सदी तक तिब्बत में कोई चीनी नहीं था। वज्रयान बौद्ध सिद्धान्त तिब्बत की भाषाओं में सुरक्षित था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक मुस्लिम शाहजादे स्त्रौन सान गेंपो ने पहली बार बौद्ध धर्म स्वीकार कर दो बौद्ध मतानुयायी स्त्रियों से विवाह किया था। उसने ही समभोट नामक व्यक्ति को बौद्ध ग्रन्थों के सञ्चय के लिए भारत भेजा था। वह सन् ६५० में लौटा था और इस बीच भारत में लिपिदत्त नामक ब्राह्मण तथा पण्डित देवविद् सिंह अथवा सिंह घोष से शिक्षा ग्रहण की और तिब्बती लिपि का निर्माण किया और इसका व्याकरण व्यवस्थित किया। समभोट को भारत–यात्रा के दौरान बहुत से उपलब्ध बौद्ध ग्रन्थों के उद्धरण संकलित करने का अवसर दिया। कहते हैं, यही स्त्रौन सान गैंपो तिब्बत का महान् राजा कहलाता है, जिसने सभ्यता और साक्षरता के साथ बौद्धधर्म को बढ़ाया। उसकी दोनों पत्नियों के नाम थे श्वेततारा और हरितारा। उन्होंने बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर आदि मूर्त्तियाँ बनाये गये मन्दिरों में लगवायीं। इन्हीं सब कारणों से कदाचित् यह मान्यता सत्य प्रतीत होती है कि खाँ, दोरजे, दलाईलामा, सुलतान या राजा जैसी पदवियाँ मंगोल मूल के बौद्ध अनुयायियों के लिए सामान्य थीं। □
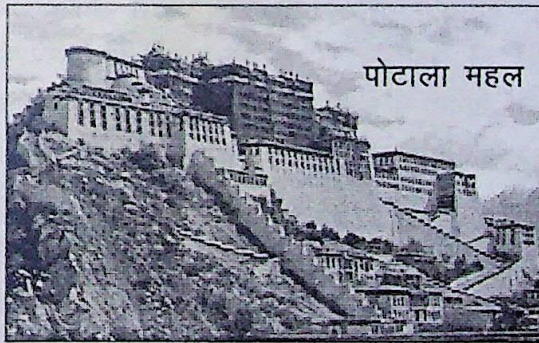
— ए–१००२, पञ्चशील हाइट्स, महावीरनगर, कान्दिवली (पश्चिम), मुम्बई– ४०००६७

ॐ पर्वत

कैलास-मानसरोवर की तीर्थ-यात्रा अनादि काल से हर हिन्दू धर्मावलम्बी की एक चिर अभिलाषा रही है। यह परम पवित्र तीर्थ जिस स्वतन्त्र बौद्ध देश तिब्बत की भौगोलिक सीमा में स्थित है, उसे हमारे पुराणों में 'त्रिविष्टप' कहा गया है, जो स्वर्ग का एक पर्यायवाची है। तिब्बत और भारत दोनों के लिए, तिब्बत की स्वतन्त्रता का सैन्य-बल से चीन द्वारा अपहरण अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना मानी जाती है। स्वतन्त्र तिब्बत की धर्मसत्ता और राजसत्ता दोनों के प्रतीक परम पावन दलाई लामा को पलायन कर भारत में शरण लेनी पड़ी और यह यात्रा बन्द हो गयी थी। अनेक प्रयत्नों के पश्चात् यह यात्रा पुनः प्रारम्भ होने पर श्री तरुण विजय, तत्कालीन सम्पादक 'पाञ्चजन्य' (साप्ताहिक) इस यात्रा पर जब गये, तो उन्होंने अपनी इस तीर्थ-यात्रा के महत्त्व तथा साथ ही आनन्द का अपूर्व अनुभव अपनी कालजयी सचित्र कृति 'साक्षात् शिव से संवाद' में शब्दांकित कर अपनी सशक्त लेखनी को सार्थक और धन्य किया था। उसी कृति में सर्वप्रथम ॐ पर्वत का चित्र प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार अपनी इस कृति में ॐ पर्वत का भव्य चित्र देकर लाखों लोगों को घर बैठे ही उसके दर्शन का सौभाग्य प्रदान करने का पुण्य-लाभ उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

वास्तव में ॐ पर्वत उत्तराखण्ड के कुमायूँ सम्भाग के उस कोण में स्थित है, जो भारत, नेपाल और तिब्बत का प्राकृतिक मिलन-स्थल है। यात्रा-मार्ग पिथौरागढ़ जनपद के धारचूला से आगे कठिनतर होता जाता है। आगे कालापानी नामक स्थान से यात्री-दल दो भागों में बँट कर एक भाग कैलास पर्वत की परिक्रमा कर तब मानसरोवर जाता है और बाद में अदला-बदली होती है। कालापानी में ही काली गंगा नदी का उद्गम है। उसके बाद का पड़ाव नवीढांग में होता है और यहीं से ॐ पर्वत के दिव्य-दर्शन होते हैं। आवश्यक नहीं कि सभी यात्री दलों को ये दर्शन हो ही जायें। बहुधा बादल छाये रहते हैं और यात्री घण्टों दर्शन के लिए आतुर प्रतीक्षा करते हैं। यदि किसी यात्री-दल को ये दर्शन नहीं हुए, तो बड़ा खराब मानते हैं।

यह ॐ पर्वत एक प्रकृति निर्मित भव्य हिमानी है, जो अलौकिक तो है ही, यह भी प्रमाणित करता है कि ॐ यह दिव्य प्रणव-मन्त्र योगी के अन्तःकरण में स्थित और सृष्टि-रचना का आदि अधिष्ठान है, जिसका साक्षात्कार हमारे ऋषि-मुनियों ने स्वयम् तो किया ही, उससे संसार को अवगत भी कराया। हिन्दू धर्म सनातन और ईश्वरीय है, यह भी प्रकृति माता इस पवित्र पर्वत के द्वारा सृष्टि के आदि काल से 'स्वतः प्रमाण' के रूप में प्रस्तुत कर रही है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चतुर्थ सरसंघचालक पूज्य रज्जू भैया जी (प्रो. राजेन्द्र सिंह) जब प्रवास पर दक्षिण अफ्रीका गये थे, तो इस ॐ पर्वत के कई चित्र मढ़वाकर साथ ले गये थे, जिन्हें उन्होंने वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों को भेंट स्वरूप प्रदान किया था। वे लोग इतने श्रद्धाभिभूत हो गये कि उन्होंने अपने पूजागृहों में उसे प्रतिष्ठापित किया।

श्रद्धेय अटल जी जब प्रधानमन्त्री के रूप में २००३ ई. में मारीशस-प्रवास पर गये थे, तो इस ॐ पर्वत के दो चित्र ले जाना नहीं भूले। एक चित्र उन्होंने वहाँ के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री शिवसागर रामगुलाम जी को और दूसरा प्रधानमन्त्री श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ जी को भेंट किया था। इस दिव्य पर्वत के चित्र में दर्शन करके दोनों ही महानुभाव अभिभूत हो उठे थे।

सत्य ही ॐ नाम परमात्मा का है और देवतात्मा हिमालय के हृदय-स्थल कैलास-मानसरोवर क्षेत्र में साक्षात् ब्रह्म-दर्शन का प्रतीक भी। □

ॐ पर्वत (नवी ढांग से दर्शन)
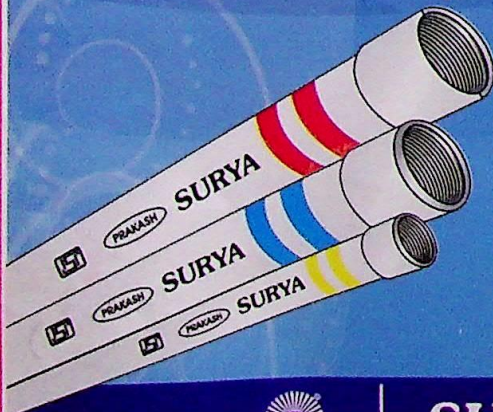
तिब्बत की त्रासदी चीनी अत्याचार

— डॉ. किशोरी लाल व्यास

देवभूमि हिमालय के पार, मध्य हिमालय में स्थित लगभग ४,७१,६६२ वर्गमील का पहाड़ियों से घिरा रहस्यमय देश है— तिब्बत। फ्रान्स, जर्मनी तथा इटली— तीन देशों को मिलाने पर जितना भू-भाग बनता है, उससे भी कहीं बड़ा है तिब्बत, आध्यात्मिकता, शान्ति और सौहार्द का निलय।

चारों ओर से ऊँचे-सुरम्य पर्वतों से घिरा यह प्रदेश सदियों से दूसरे देशों के सम्पर्क से अछूता रहा। इसी कारण इस प्रदेश में विशेष संस्कृति, कला, शान्ति-प्रियता तथा आध्यात्मिकता का विकास हुआ।

'कैलास पर्वत' (२२,०२७ फुट ऊँचा) तिब्बत के सागरमाथा (एवरेस्ट) के बाद सबसे ऊँचा पर्वत है, जो बौद्धों तथा हिन्दुओं के लिए पवित्र धाम है। तिब्बत अपने ऊँचे पठार के कारण 'दुनिया की छत' कहलाता है। भारत और पाकिस्तान में बहनेवाली सिन्धु और सतलज नदियों का उद्‌गम पश्चिमी तिब्बत में कैलास पर्वत ही है। तिब्बत के दक्षिण में बहनेवाली 'यारलंङ् यांङ्पो' नदी कैलास के पूर्व की ओर बहती है तथा तिब्बत घाटी का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है यह। इस प्रदेश की 'तिब्बती संस्कृति' का स्वर्ग भी कहा जाता है। तिब्बत की राजधानी ल्हासा नगर इसी नदी की घाटी में स्थित है। यह सबसे बड़ा शहर है। तिब्बत के दक्षिण में ही सालपिन, मेकाङ् तथा यांगजे नदियों की गहरी घाटियाँ हैं, जो उपजाऊ तो हैं ही गहरे हिमाचल-वनों से आच्छादित हैं।

भारत में बहनेवाली विशाल नदियाँ तिब्बत से ही निकलती हैं, यहीं के ग्लेशियरों तथा बर्फ के पिघलने से सदानीरा (जल से भरी) होती हैं— यथा सिन्धु-सतलज तथा ब्रह्मपुत्र या यारलङ् याङ् पो यारलंङ् नदी पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग १,२७८ मील बहती है तथा गंगा से मिलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। तिब्बत को झीलों का प्रदेश भी कहा जाता है। लगभग १५०० झीलें, नीले स्वच्छ अप्रदूषित जल से परिपूर्ण इसकी शोभा बढ़ाती हैं।

'नाम सो' ल्हासा के उत्तर पश्चिम में स्थित तिब्बत की सबसे बड़ी झील है। यह अत्यन्त रमणीय है। दक्षिण में मफम-सो या 'मानसरोवर' तथा 'राक्षस ताल' या 'रावणहद' स्थित हैं। मानसरोवर सूर्य के आकार की झील है तथा शुद्ध जल से पूरित, हिन्दुओं-बौद्धों के लिए अत्यन्त पवित्र स्थल है। 'राक्षस ताल' अर्द्धचन्द्राकार एवं काले जल से भरी हुई झील है। बौद्ध-जन इन दोनों तालों को जीवन का प्रतीक एवं आवश्यक मानते हैं।

तिब्बत का जलवायु ऐसा है कि उसे अत्यधिक ठण्डी से 'शीत ताप' तथा अत्यधिक गर्मी से 'उष्ण ताप' लग सकता है।
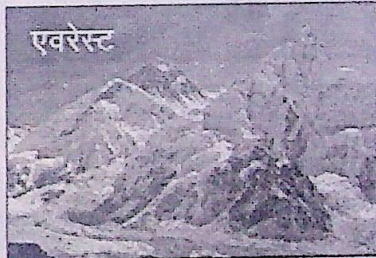
तिब्बत पर कई राजवंशों ने शान्तिपूर्ण राज्य किया। लगभग दसवीं सदी में तिब्बत में बौद्धधर्म ने प्रवेश किया तथा जीवन, संस्कृति और कलाओं पर पूर्णतः छा गया। कुछ समय तक मंगोल भी यहाँ के शासक रहे। बौद्ध धर्म गुरु परम पावन दलाई लामा का तिब्बत में बड़ा आदर किया जाता है। सन् १६१३ में दलाई लामा ने तिब्बत को एक स्वतन्त्र-सार्वभौम राज्य घोषित कर दिया। तिब्बत का अपना ध्वज, अपना सिक्का आदि बना। सन् १६१४ में अंग्रेजों ने शिमला-समझौते के अन्तर्गत भारत-तिब्बत की सीमा निर्धारित की तथा तिब्बत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया। अंग्रेजों की सहायता लेकर, दलाई लामा ने तिब्बत में अनेक सुधार शुरू किये। १६३३ में तेरहवें दलाई लामा का देहान्त हुआ। दलाई लामा यहाँ का परम्परागत पद है। सन् १६४६ में चीन के माओत्से तुंङ् ने चीन की च्याङ् काई शेक सरकार को हटाकर, कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना की।

मई, १६५१ में पैर आगे बढ़ाते हुए सितम्बर, १६५१ तक चीन की 'पीपुल्स लिबरेशन आर्मी' ने ल्हासा राजधानी पर अधिकार जमा लिया। तब से तिब्बत की स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी। चीनियों का भयंकर यातना का दौर शुरू हुआ। तिब्बत की जनता १० मार्च, १६५६ को विद्रोह में उठ खड़ी हुई; लेकिन भयानक हिंसा द्वारा इसे कुचल दिया गया। हजारों निरपराध नागरिक मारे गये। १७ मार्च, १६५६ को दलाई लामा ने

भागकर भारत में शरण ली तथा आज भी यहीं हैं। हजारों की संख्या में तिब्बती लोग भारत, नेपाल, भूटान तथा पश्चिमी देशों को पलायन कर गये। इन देशों ने तिब्बतियों को राजनैतिक शरण दी। चीन का भयंकर यातना-शिविर शुरू हुआ। लाखों चीनी सैनिक तिब्बत में छा गये। 'ल्हासा-विद्रोह' में लगभग १५,००० तिब्बती मारे गये। कई बहुत बड़े-बड़े कलात्मक मठ-मन्दिर भूमिसात् कर दिये गये। कई कलाकृतियाँ तोड़ी-फोड़ी और जला दी गयीं, कुछ लूट ली गयीं। वर्तमान चीन 'धर्म' में विश्वास नहीं करता, अतः धर्म पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मठ-मन्दिरों की भूमि छीन ली गयी। भिक्षुओं, साध्वियों और धर्माचार्यों को जेलों में ठूँस दिया गया। उन्हें भयंकर यातनाएँ दी गयीं। हजारों लोग यातनाओं के कारण काल कवलित हो गये। कई भूख के कारण समाप्त हुए। चीनी अत्याचारों का यह दौर चलता ही रहा। किसानों को उनकी परम्परागत फसल 'जौ' के बदले धान-गेहूँ बोने के लिए बाध्य किया गया। परिणाम यह हुआ कि देश में अकाल जैसी स्थिति उत्पन्न हुई। १९६२ में लगभग ७०,००० लोग भूख के कारण मारे गये।

१३हवें दलाई लामा

माओ ने यह (झूठी) घोषणा की कि 'तिब्बत छठी शताब्दी में चीन का अंग था। हम उसे फिर ले रहे हैं।' चीन के सैनिकों ने तिब्बती स्त्रियों के साथ अमानुषिक बलात्कार किये, ताकि पूरी की पूरी 'नस्ल' बदली जा सके। यह मानवता के प्रति घोर अपराध था। कम्यूनिज्म का भयंकरतम रूप सामने आया। माओ ने १९६६ में 'सांस्कृतिक क्रान्ति' का दौर शुरू किया। इस क्रान्ति के दौरान सारे पुराने को नये से स्थानापन्न कर दिया गया।

सारा तिब्बत एक विशाल कारागार बन गया। जिसने भी आवाज उठायी, उसे यातना-शिविर या श्रम-शिविर में डाल दिया गया। ६००० कलात्मक मठों का विनाश किया गया। बामियान के धर्मान्ध तालिबान से माओ कम्युनिस्ट कुछ कम नहीं थे। उधर देश के पर्यावरण को बुरी तरह नष्ट किया गया। तिब्बत के प्रमुख पशु 'याक' को सैनिकों ने मार डाला, इतना अधिक शिकार किया कि वे विलुप्ति के कगार पर पहुँच गये। दक्षिण के हरे-भरे जंगलों का भयंकर विनाश किया तथा लकड़ी चीन ले गये। अन्य पशु-पक्षियों का बेरहमी से शिकार किया। बौद्धधर्म के अनुसार तिब्बती लोग किसी प्राणी का अवाञ्छित शिकार नहीं करते, न हरा-भरा पेड़ काटते हैं। भूमि को खोदना तक वे पाप मानते हैं। ऐसे में चीनी सैनिकों ने देश में विनाश की लहर चला दी। तिब्बत समृद्धि और स्वतन्त्रता के दौर से परतन्त्रता, यातना और विनाश के कगार पर पहुँच गया। चीनी भाषा सीखना अनिवार्य कर दिया गया। तिब्बती भाषा प्रतिबन्धित हो गयी। सन् १९७६ में माओ की मृत्यु के साथ ही 'सांस्कृतिक क्रान्ति' का यातना-युग समाप्त हुआ। चीनी सरकार को अपनी गलती महसूस हुई। अब पर्यावरण को पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया जा रहा है; पर भयंकर विनाश तो हो चुका।

संयुक्त राष्ट्र संघ सहित अनेक देशों ने अपील जारी की; पर आज भी चीन का रवैया ज्यों का त्यों बना हुआ है। चीनी एक शान्तिप्रिय देश पर अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहते। **चीनियों ने तिब्बतियों की संस्कृति, विशिष्ट समाज व्यवस्था, लोक-जीवन, पर्यावरण और नस्ल को ही नष्ट करने का प्रयत्न किया। चीनी सैनिकों ने जबर्दस्ती लाखों तिब्बती स्त्रियों को बलात्कार द्वारा गर्भवती बनाया तथा उत्पन्न होनेवाली सन्तान के माध्यम से चीनी समाज व्यवस्था, संस्कृति और भाषा को उन पर थोपा। यह मानव जाति का सबसे जघन्य अपराध है।**

क्या भारत के माओवादी चीन के इसी अमानवीय अत्याचारों का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं ?

क्या केवल रोटी से किसी देश की भूख मिटती है ? चीनी अगर आर्थिक प्रगति करना चाहते हैं, तो संस्कृति और कलात्मक मूल्यों के विनाश की कीमत पर नहीं की जा सकती, जिन्हें तिब्बतियों ने भूखे रहकर मन्दिरों और मठों में युग-युगों से निर्मित किया। क्या माओवाद केवल रोटी और गोली पर विश्वास करता है ? क्या माओवाद नस्ल के बदलने में विश्वास करता है ? कलात्मक कृतियों के विनाश में विश्वास रखता है ? बांग्लादेश में पाकिस्तानी सेना ने लाखों महिलाओं को बलात्कार द्वारा गर्भवती कर, उस सन्तान के माध्यम से संस्कृति परिवर्तन की चाह की थी। तिब्बत में अब तक जो नर–संहार व विध्वंस किया है, वह अक्षम्य अपराध है। इतिहास इसे क्षमा नहीं करेगा। □

– एफ–१, रत्ना रेजीडेन्सी, माहेश्वरी नगर, हब्शीगुडा, हैदराबाद– ५००००२ (आ.प्र.)

आजाद तिब्बत या कैलास-मानसरोवर

(तिब्बत के प्रकरण में लोकसभा में डॉ. लोहिया का भाषण)

लोकसभा : १४ जुलाई, '६७

राममनोहर लोहिया : आचार्य हिरेन मुकर्जी ने आचार्य कृपलानी को ताना मारा कि वह बीस बरस पुराने पड़ गये हैं। जब उन्होंने यह ताना मारा, तो मेरे मन में आया कि उनकी दुनिया आज ही जग गयी है और वह समझते हैं कि इस वक्त की ही क्रान्ति आखिरी क्रान्ति है और अब आगे कोई क्रान्ति नहीं होनेवाली है। सबसे पहले मैं आचार्य मुकर्जी को यह बताना चाहता हूँ...

एक माननीय सदस्य : आचार्य कब से बन गये ?

राममनोहर लोहिया : विद्यार्थी हिरेन मुकर्जी कहूँ ?

यह आखिरी क्रान्ति नहीं हुई है, अभी और अनेक क्रान्तियाँ होनेवाली हैं और दुनिया को न जाने और कितने मजे देखने हैं। उनमें शायद एक मजा यह भी देखना है कि जो कुछ चीन ने अपने पिछले कुछ दो-चार सौ बरसों में हिन्दुस्तान के कमजोर जमाने में हड़पा है, वह उसको उगलना पड़े। उगलना इसलिए नहीं पड़े कि हिन्दुस्तान ले ले; बल्कि इसलिए कि वह आजाद हो जाये। क्रान्तियाँ अभी बहुत होनेवाली हैं।

एक बात जरूर साफ में कह देना चाहता हूँ कि जो कुछ भी मैं तिब्बत के ऊपर बोलूँ, तो कोई ऐसा न समझे कि मैं युद्ध अथवा शान्ति की बात कर रहा हूँ। जरूरी नहीं है कि केवल इन्हीं दो अवस्थाओं की बात हो। मैं युद्ध नहीं चाहता चीन से; लेकिन उसके साथ-साथ मैं जब तक चीन सुधरता नहीं, तब तक उससे शान्ति भी नहीं चाहता। इसलिए अभी हमको एक तीसरे दौर में से गुजरना है, जब हमको अपना मन बनाना है, हमको अपनी नीति बनानी है, उसको दुनिया में फैलाना है, अपनी संकल्प शक्ति को मजबूत करना है। तिब्बत के मामले में संकल्पशक्ति खाली एक हो सकती है कि तिब्बत आजाद पहले रहा है और आगे भी होना चाहिए।

मैं कभी भी मैकमोहन रेख को अपनी स्वीकृति नहीं दे सकता। मैंने कभी दी भी नहीं और न देना चाहता हूँ। इस सदन में अक्सर कहा गया है कि चीन मैकमोहन रेखा को नहीं मानता और यह सरकार मैकमोहन रेखा की माला को हमेशा जपा करती है। एक बात मैं साफ कहना चाहता हूँ कि भारत की और आजाद तिब्बत की रेखा मैकमोहन रेखा हो सकती है; लेकिन चीन के साथ मैकमोहन रेखा कभी भी नहीं हो सकती। अगर तिब्बत कभी आजाद हुआ तो मैकमोहन रेखा हमारी सीमा हो सकती है।

तिब्बत के मामले में अगर कहीं किसी को डर हो कि हम तिब्बत का मामला उठायेंगे, तो चीनी लोग कश्मीर का मामला उठा देंगे...

श्री मधुलिमये– उठा चुके हैं लोग।

राममनोहर लोहिया– यहाँ के चीनी उठा चुके हैं, तो यहाँ के अभी उन रूसियों को भी उठाना होगा, जिन्हें पता नहीं कि उनके स्तालिन ने कब क्या कहा था और अब के रूसी आगे क्या कहनेवाले हैं। जो उठानेवाले हैं, उनसे मैं कहूँगा कि यह चीन और तिब्बत का मामला भारत और कश्मीर का नहीं, भारत कश्मीर का मामला तो अगर चीन की उपमा देना चाहते हो, तो चीन और सिंक्यांग का मामला है; लेकिन चीन और तिब्बत का मामला इंग्लिस्तान और मालटा का मामला है।...

आज दलाई लामा हमारे देश में हैं। मैं इस मौके पर कोई कड़ा शब्द नहीं कहना चाहता हूँ; क्योंकि आज मैं चागला साहब को चिढ़ाना नहीं चाहता हूँ। वैसे मैं आज यहाँ आता भी नहीं; क्योंकि मेरा शरीर अच्छा नहीं है। कल-परसों छब्बीस-सत्ताईस बरस का एक तिब्बती लड़का, लोदी ग्वालसेन मेरे पास आया। वह एक तिब्बती अखबार का सम्पादक है। वह दलाईलामा जी से मिलने के लिए जा रहा था। उसने बड़ी उत्सुकता से मुझसे खाली एक सवाल पूछा, "क्या तिब्बत कभी आजाद होगा ?" उत्सुकता और दिल में कसक ! आज जब मैं श्री रणधीर सिंह को सुन रहा था, तो मैंने सोचा कि कहीं मेरे दिल में ताकत होती, तो मैं उसको ताकत के साथ जवाब देता। मैं भी कभी पच्चीस-छब्बीस बरस का था। मैं भी कभी अपने देश की आजादी के लिए कसक के साथ बोला करता था। लेकिन मुझमें ताकत ज्यादा थी; क्योंकि आखिर हम तीस-पैंतीस करोड़ थे। **मैं कभी यह नहीं पूछा करता था कि क्या हिन्दुस्तान आजाद होगा या नहीं। लेकिन जब लोदी ग्वालसेन ने मुझे पूछा कि क्या**
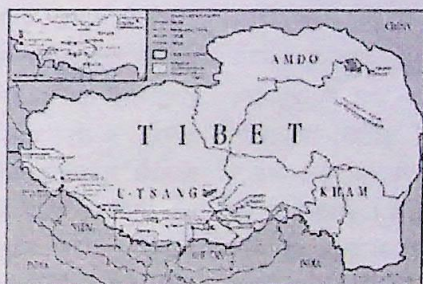
कभी तिब्बत आजाद होगा, तो थोड़ी देर के लिए मुझे उदास हो जाना पड़ा। उदास होकर मैंने खाली यह कहा कि अगर दुनिया को तरक्की करना है और आजादी के रास्ते जाना है, तो मुझे ऐसा लगता है कि वह आजाद होगा।

मैंने उसको कहा कि यह बात अलग है कि आज चीनी यह कोशिश कर रहे हैं कि तिब्बती जाति के साथ खून का मिश्रण करके उसका नामोनिशाँ तक मिटा दें; लेकिन फिर भी उनकी हजार कोशिशों के बावजूद एक ऐसी नयी जाति पैदा होगी, जो चीनी नहीं होगी और मुझे ऐसा लगता है कि तिब्बत की वह जनता उठेगी और आजाद होगी। जैसे कि मैं खुद देखकर आया हूँ कि मैक्सिको में बसनेवाले कोई स्पेनी नहीं हैं, वे दिमागी तौर पर भी स्पेन के अधीन नहीं है और कई बातों में स्पेन की निन्दा करते हैं।

उस वक्त मैं यह बात उस लड़के को बहुत ताकत से नहीं कह पाया– आज भी नहीं कह पा रहा हूँ। लेकिन मैं एक बात साफ कर देना चाहता हूँ। जो हिन्दुस्तान पिछले एक हजार बरस से कमजोर रहा है, जिसकी सीमाएँ नष्ट होती रही हैं, वह हिन्दुस्तान अगर कभी मजबूत हुआ– आज नहीं, तो अगले दस, पन्द्रह, बीस, पचास बरस में, तो उसकी सीमाएँ बतायी जाती हैं– अंग्रेजी जमानी की सीमाएँ, अफगान जमाने की सीमाएँ– जब मैं अफगान कह रहा हूँ, तो मेरा मतलब पठान नहीं, बल्कि नादिरशाह वगैरह से है– मुगल जमाने की सीमाएँ, ये सब ऐसे जमाने की सीमाएँ हैं, जब भारत कमजोर रहा है। लेकिन कभी ऐसा भी वक्त आ सकता है, जब भारत मजबूत हो और उस वक्त के लिए मैं आपको प्राचीन भारत की आखिरी राजधानी कन्नौज के आखिरी कवि, राजराजेश्वर की 'चक्रवर्त्ती राज्य' की यह परिभाषा सुना देना चाहता हूँ : बिन्दसार से लेकर कन्याकुमारी तक जो राज्य हो, वह चक्रवर्त्ती राज्य होता है और बिन्दसार का मतलब है मानसरोवर।

हिन्दुस्तान की ये सीमाएँ जिस सन्धि के द्वारा निर्धारित की गयी हैं, हमने उसी सन्धि को अपने सामने रखना है और उसी को स्वीकार करना है, उन सन्धियों को नहीं, जिनका जिक्र कुछ लोग इधर-उधर की दो-चार किताबें पढ़कर किया करते हैं। वे कमजोर हिन्दुस्तान की सन्धियाँ हैं। शक्तिशाली हिन्दुस्तान की सन्धि के अनुसार इसदेश की सीमाएँ बिन्दसार से लेकर कन्याकुमारी तक हैं और बिन्दसार का मतलब है कैलास मानसरोवर, पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र। इस सम्बन्ध में मैं इस वक्त मन्सर वगैरह के वे सब उदाहरण नहीं देना चाहता हूँ, जो भारत या कश्मीर के कई अफसरों ने मुझे बताये हैं; क्योंकि उसमें वक्त लग जायेगा; लेकिन शक्तिशाली भारत की उत्तर में जो सीमा रही है– शायद उस वक्त चीन न रहा हो, तिब्बत था– वह कैलास मानसरोवर तक थी।
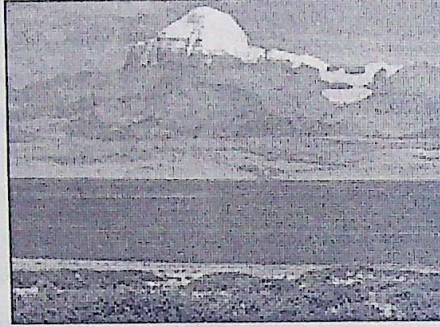
अगर मन्त्री महोदय अन्तरराष्ट्रीयता का रुख लेते हैं, तब तो तिब्बत को सम्पूर्ण आजाद होना चाहिए। अगर वह राष्ट्रीयता का पहलू लेते हैं, तो मैं बीच की बात बता देना चाहता हूँ और वह यह है कि चीन और भारत की सीमा कैलास मानसरोवर और पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र ही हो सकती है। आज से कोई भी मैकमोहन रेखा का नाम न ले। वह केवल धार्मिक स्थान की बात नहीं है, केवल धार्मिक अधिकारों की बात नहीं है; बल्कि वह राजकीय अधिकारों

की बात है। इसलिए अगर मन्त्री महोदय कभी संयुक्त राष्ट्र में जायें, तो वह वहाँ मानवीय अधिकारों की बात न करें। फिजूल है चीनियों से मानवीय अधिकारों की बात करना। क्या वे चीनी तिब्बत में मानवीय अधिकार देंगे, जो अपने घर के अन्दर ही मानवीय अधिकारों का यह हाल बनाये हुए हैं कि यही पता नहीं है कि वहाँ का राष्ट्रपति कौन है, ल्यू–शाओ–ची है या और कोई है, वह बेचारा पीकिंग में है और उसकी बीबी शंघाई में हैं ? क्या मन्त्री महोदय ऐसे लोगों से मानवीय अधिकारों की बात करेंगे ? नहीं। मैं चागला साहब से यह अनुरोध करूँगा कि वह संयुक्त राष्ट्र में जाकर कभी भी मानवीय अधिकारों की बात न करें।

वह वहाँ पर जाकर बात करें अन्तरराष्ट्रीयता के आधार पर तिब्बत की सम्पूर्ण आजादी की, राजकीय आजादी की। और अगर वह राष्ट्रीय आधार लेना चाहते हों, तो मैं एक बीच की बात निकालना चाहता हूँ। शायद भारत और चीन की सीमा फिलहाल, वक्ती तौर पर यह पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र रहे। मैं सलाह देना चाहूँगा कि तब जो दलाईलामा आज करीब-करीब शरण में तो नहीं है, जो यहाँ गाड़ से दिये गये हैं, उनको इस नेपाल और मानसरोवर के बीच के इलाके में एक स्वतन्त्र राजा– ऐसा नहीं कि वह बिल्कुल एक निरंकुश राजा बनें; बल्कि एक संवैधानिक राजा के रूप में बिठाया जा सकता है।

मेरे पास एक नक्शा है, जो करीब दस हजार भारतीय घरों के अन्दर पहुँच चुका है। उपाध्यक्ष महोदय मैं आपको इसकी एक प्रति दूँगा और अगर आपकी इजाजत हो, तो आप इस नक्शे को सदन के पटल पर रख दीजियेगा। इस **नक्शे का शीर्षक है "या आजाद तिब्बत या कैलास मानसरोवर" या तो अन्तरराष्ट्रीयता के हिसाब से आजाद तिब्बत और या राष्ट्रीयता के हिसाब से कैलाश मानसरोवर। मैं इस नक्शे से एक वाक्य आपको पढ़कर सुनाना चाहता हूँ।**

"तिब्बत पूरा आजाद है और रहना चाहिए। तिब्बत चीन का हिस्सा नहीं है। एक– भाषा; दूसरे– लिखावट, तीसरे– जमीन का ढलाव, चौथे– रहन-सहन, पाँचवें– धर्म, छठें– इतिहास, सातवें– लोक-इच्छा के कारण तिब्बत और हिन्दुस्तान भाई हैं। या तिब्बत आजाद हो, नहीं तो कैलास मानसरोवर हिन्दुस्तान में मिले।"

जमीन के ढलाव के बारे में मैकमोहन रेखा की तो बातें कही गयी हैं, वे बिल्कुल मिथ्या हैं; क्योंकि जमीन का ढलाव सिन्धु नदी, गंगा नदी और ब्रह्मपुत्र नदी से मालूम होता है। जमीन का ढलाव कैलाश मानसरोवर है।

और लोक-इच्छा तो बिल्कुल साफ है। तिब्बत का वह छब्बीस-सत्ताईस बरस का लड़का, लोदी ग्वालसेन था, कसक और उत्सुकता लेकर आया था। इस सदन को उस जैसे लड़के के दिल को तसल्ली देने के लिए कोई न कोई काम करना चाहिए। मन्त्री महोदय यह याद रखें कि जब मैं छब्बीस का था, तो मेरे पीछे ताकत थी, तीस-पैंतीस करोड़ की ताकत थी; लेकिन उस बेचारे के पीछे तो लाख, पचास लाख हैं। मन्त्री महोदय से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि वह जवाब देते वक्त, जरा उस लड़के को याद कर लें।

प्रस्तुति– अजय सिंह

'अक्षर धाम', ४/३८३, आवास विकास कालोनी, बाराबंकी (उ.प्र.)

१५ अगस्त, १९४७ को ल्हासा में तिरंगा फहराया गया था

चीनी आक्रमण के पहले तिब्बत मध्ययुगीन धर्मतन्त्र था और इसलिए चीन का दावा कि उसे आधुनिक बीसवीं सदी में लाने का अधिकार या पूरी तरह खोखला तर्क है; क्योंकि यह कार्य उसने एक सुनियोजित सांस्कृतिक नर-संहार व तिब्बत की पहचान मिटाने के साथ किया है। बौद्ध जीवन-शैली व पारम्परिक दृष्टि नष्ट करने के प्रयासों के बीच सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि तिब्बती अपनी ही जन्मभूमि में अल्पसंख्यक बना दिये गये हैं। आधुनिकता की नयी चमक-दमक के बीच वहाँ के व्यापक 'चीनीकरण' ने उनकी मौलिक पहचान पर प्रश्नचिह लगा दिया है।

ब्रिटिश भारत ने स्वतन्त्रता के बाद हमें एक विरासत दी थी, जिसका प्रारम्भ बंगाल के गवर्नर के रूप में वारेन हेस्टिंग्ज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यावसायिक विकास के लिए जार्ज बोगल को १७७४ में पहले ब्रिटिश अभियान के रूप में तिब्बत भेजकर किया था। सन् १९०४ आते-आते फ्रान्सिस यंग हसबैण्ड के ल्हासा के सैन्य-अभियान के बाद ब्रिटिश भारत ने वहाँ व्यापार, वाणिज्य, सैन्य टुकड़ियों और खुली सीमाओं की जो परम्परा डाली थी, हम उसे भी सँभाल न सके। शायद हम इस बात को भी नहीं जानते हैं कि १५ अगस्त, १९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, ब्रिटेन द्वारा विरासत में मिले विशेषाधिकार और तिब्बत पर आ रहे राजनीतिक प्रभाव को दो क्षण को भी हम सँभाल न सके। १५ अगस्त को ल्हासा में ब्रिटिश प्रतिनिधि ह्यू रिचर्ड्सन ने उस दिन 'यूनियन जैक' को उतारकर तिरंगा झण्डा फहराया था। उसने अपने कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि तिब्बत में भारतीय उपस्थिति वैसे ही बरकरार रहेगी, मात्र अंग्रेजी झण्डे के स्थान पर तिरंगा रहेगा। १२ लाख वर्ग किलोमीटर का यह देश, जिसकी दक्षिण में भारत से नैसर्गिक सीमा छूती थी, हमारी राजनीतिक नासमझी ने उसे चीन द्वारा निगलने दिया गया और हम स्वातन्त्र्योत्तर भारत में इस परिवर्त्तन को एक मूकदर्शक की तरह देखते रह गये। बलिहारी हमारे तत्कालीन अदूरदर्शी और अपरिपक्व राजनीतिक नेतृत्व की। □

MADHAV VIDYA NIKETAN

(A SENIOR SECONDARY PUBLIC SCHOOL)

RANJIT AVENUE, A-BLOCK, AMRITSAR

CONGRATULATION TO PARENTS, STUDENTS & STAFF

ON GLORIOUS PERFORMANCE IN P.S.E.B. RESULT'S 2011-2012

THEY BROUGHT US HONOUR

1ST IN PUNJAB (IN MATRIC)

MUKESH KUMAR VERMA

1244/1300 (95.69%)

STATE MERIT HOLDERS IN 10TH

Neha Sharma	Ankush Aery	Pooja Mahajan	Smile Malhotra	Priyanka Jaipuriya	Shweta Maresha
1106/1300 ([illegible])	1122/1300 (86.30%)	1115/1300 (85.76%)	1115/1300 (85.76%)	1113/1300 (85.61%)	1112/1300 (85.53%)
2nd In School	3rd In School	4th In School	4th In School	5th In School	6th In School

OUR TOPPER IN 10+2

Jaspreet Kaur	Josheetal Sharma	Pooja Mandal	Radhika Mehra	Monica Soni	Ibran Hussain
853/1000 (85.3%)	849/1000 (84.9%)	849/1000 (84.9%)	841/1000 (84.1%)	839/1000 (83.9%)	833/1000 (83.3%)
1st In School	2nd In School	3rd In School	4th In School	5th In School	6th In School

Our Students achieve Success and Glory in other field also

Games, Cultural Activities
Science Fair, Social Services

KESHWANAND SHARMA
MANAGER

SHELLY SHARMA
PRINCIPAL

उत्तराखण्ड में न्याय के विचित्र देवता

– विजय कुमार

देवभूमि हिमालय के चप्पे–चप्पे पर देवी–देवताओं का वास है। ये स्थिर भी हैं और चलनशील भी। ये रौद्र भी हैं और सौम्य भी। किसी को अन्न, फल और मिष्ठान्न प्रिय है, तो किसी को सुरा, मानवरक्त और पशुमांस। इनके उद्‌भव और चमत्कारों के बारे में तरह–तरह की लोककथाएँ और मान्यताएँ प्रचलित हैं, जिन्हें तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। कोई माने या न माने; पर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में तो आज भी जीवन के बहुत से काम इन देवताओं की इच्छा और अनुमति से ही होते हैं।

चितई मन्दिर

इन हजारों देवी–देवताओं में से अनेक ऐसे हैं, जो न्याय करते हैं। जो काम सरकारी न्यायालय में लाखों रुपया और कई वर्ष खर्च करने पर भी नहीं होता, वह इन देवताओं के मन्दिरों में आसानी से हो जाता है; पर इसके लिए मन में अटल श्रद्धा और विश्वास होना आवश्यक है। यहाँ उत्तराखण्ड के ऐसे तीन देवताओं के बारे में जानना रुचिकर होगा।

चितई मन्दिर में चितजियान

पौड़ी जिले में समुद्र से १,८०० मीटर की ऊँचाई पर देवदारु, बुरांस और बांज के घने वृक्षों से आच्छादित वन में कण्डोलिया देवता का मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि बहुत साल पहले कुमाऊँ की एक लड़की का विवाह पौड़ी के डुंगरियाल नेगी परिवार में हुआ। वह लड़की बचपन से जिस देवता की पूजा करती थी, विवाह के बाद मीरा की तरह उसे एक छोटी टोकरी (कण्डी) में रखकर अपने साथ ले आयी। इससे उनका नाम कण्डोलिया देवता प्रसिद्ध हो गया। उस लड़की की श्रद्धा देखकर गाँववाले भी उन्हें पूजने लगे।

कुछ समय बाद गाँव के एक बुजुर्ग व्यक्ति के स्वप्न में कण्डोलिया देवता आये और अपना मन्दिर किसी ऊँचे स्थान पर बनाने को कहा। इस पर गाँववालों ने पौड़ी के पास की ऊँची पहाड़ी पर मन्दिर बनाकर कण्डोलिया देवता की वहाँ विधिवत् प्राण–प्रतिष्ठा कर दी। मन्दिर में प्रतिवर्ष तीन दिन का मेला लगता है, जिसमें हजारों श्रद्धालु आकर मनौती माँगते हैं तथा न्याय की पुकार करते हैं। जिन लोगों की मनौती पूरी हो जाती है तथा जिन्हें न्याय मिल जाता है, वे यहाँ छत्र, घण्टा आदि चढ़ाते हैं।
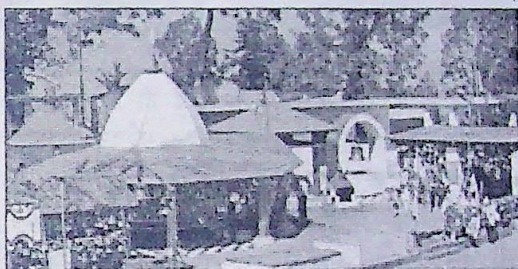
आयोजन के पहले दिन रिंगाल से बने ध्वज को वैदिक मन्त्रों के साथ नगर की परिक्रमा के बाद मन्दिर में चढ़ाया जाता है। इसके बाद वहाँ रामायण का पाठ होता है। अगले दिन पाठ की समाप्ति पर महिला मण्डलों द्वारा कीर्त्तन एवं रात्रि–जागरण किया जाता है। जागरण की समाप्ति पर तीसरे दिन यज्ञ और फिर विशाल भण्डारा होता है। तीन दिन के इस उत्सव में २५ से ३० हजार श्रद्धालु आते हैं। प्रशासन के अनुसार पूरे वर्ष में लगभग एक लाख भक्त यहाँ आकर कण्डोलिया देवता के दर्शन करते हैं।

न्याय के एक अन्य देवता पोखू वीर का मन्दिर उत्तरकाशी जिले के हिमाचल से लगे सीमावर्त्ती गाँव नैटवाड़ में है। यहाँ रुपिन और शुपिन नामक दो नदियों का संगम होता है और फिर इसका नाम टौंस (तमसा) हो जाता है। कुछ लोग इसे कर्मनाशा भी कहते हैं। इस नदी की एक विशेषता यह है कि इसका पानी कोई नहीं पीता। ऐसी मान्यता है कि इसका पानी लगातार दस वर्ष तक पीने से कुष्ठ रोग हो जाता है। डाकपत्थर में यह नदी यमुना में मिल जाती है।
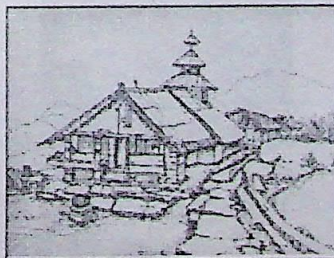
पोखू देवता

इस नदी, मन्दिर और देवता के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि हजारों साल पहले यहाँ किरमिर

नामक राक्षस रहता था। उसके आतंक से लोग परेशान थे। स्थानीय लोगों के आग्रह पर कश्मीर से महासू देवता तथा उनके गण सिड़कुड़िया ने आकर इसका वध किया। राक्षस का सिर वहाँ स्थित शिव के एक गण पोखू के मन्दिर में चढ़ा दिया और उसका धड़ इस संगम में फेंक दिया। उस किरमिर राक्षस के खून से यह नदी अपवित्र हो गयी।
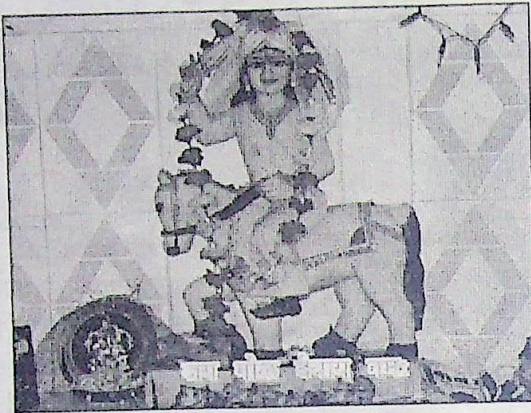
गोलू देव

एक दूसरी मान्यता के अनुसार यहां भीम के पुत्र घटोत्कच का सिर गिरा था। सिर गिरने के बाद वह प्रवाह की विपरीत दिशा में बहने लगा। अतः लोगों ने भयभीत होकर उसे मंदिर में स्थापित कर दिया। रक्त नदी में मिलने से उसका पानी तामसिक हो गया और नदी का नाम तमसा हो गया। मान्यता चाहे जो हो; पर यह सत्य है कि साफ होने पर भी लोग इसका पानी प्रयोग नहीं करते।

देहरादून जिले के जौनसार भावर और उत्तरकाशी जिले की इस घाटी में पाण्डवों और कौरवों की पूजा होती है। यहाँ दुर्योधन, भीम और कर्ण के मन्दिर हैं। जौनसार के गाँवों में पाण्डव–नृत्य की परम्परा है।

पोखू देवता के मन्दिर में आरती का ढंग भी अजीब है। इस देवता का रूप इतना भयानक कहा जाता है कि उसे देखनेवाला तत्काल मर जाता है। इसलिए पुजारी मन्दिर की ओर पीठ करके आरती करता है। अदालतों के इस दौर में भी इस मन्दिर में न्याय के लिए वादी और प्रतिवादी आते हैं। टौंस घाटी के लोगों में इस देवता का इतना भय है कि यहाँ आकर लोग झूठ नहीं बोलते और मन्दिर के पुजारी के सम्मुख ही निर्णय हो जाता है।

इस मन्दिर में पशु बलि होती है। पशु का सिर मन्दिर के अन्दर फेंक दिया जाता है और शेष शरीर को प्रसाद रूप में बाँट दिया जाता है। एक आश्चर्य यह भी है कि हजारों सालों से यह प्रथा होने के बाद भी मन्दिर के प्रांगण में कोई दुर्गन्ध नहीं है।

कुछ लोगों का मत है कि मन्दिर से ही कोई गुप्त मार्ग नदी के संगम तक है, जिससे पशु का सिर संगम के तेज
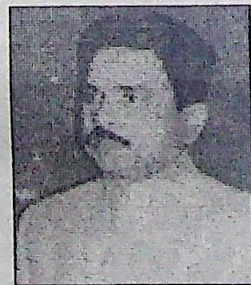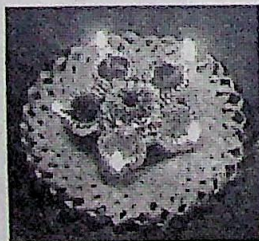
अधूरा काव्य

– शत्रुघ्न प्रसाद

मेरे तुषारधवल हिमशिखर !
पूनम की बरसती चाँदनी में
उज्ज्वल कलापत्र लगते हो
जिस पर
युगों से काव्य-सृजन हो रहा।
अभी तक
न सृजन पूरा हुआ
न युगलेखनी रुक सकी
'जय' क्रमशः 'महाभारत' बना था;
तुम क्या बनोगे
बताना असम्भव है।
मेरे दुग्ध धवल देवशिखर !
काल की अमर लेखनी ने
तुम पर अंकित की है,
शम्भू औ' गौरा की तपःपूत रागमयी संस्कृति
मनु और श्रद्धा की मानवी सृष्टि
भगीरथ-साधना की सुधामयी परिणति।
काल की अक्षय लेखनी ने
तुम पर वर्णित की है
धर्मरक्षित औ' दीपंकर की आत्मविजय
तिब्बत और चीन तक बुद्ध की वाणी
सेनानी जोरावर की दिग्विजय
पश्चिमोत्तर की आँधी की
देवदारु वन में बार-बार पराजय।
मेरे चिरयुगीन प्रहरी शिखर !
अचानक... यह क्या हुआ
कलापत्र पर रक्त की छींटें
मानसर के कमल कोष पर
लाल तूणीर के तीर विषबुझे
तिब्बत से लोहित तीर्थ तक बारूदी गन्ध
संगीन की नोक से चीखती हंसिनी
हथगोलों से काँपती चाँदनी
आहत-पीड़ित हो गयी विवश हिमानी।
मेरे गन्धर्वप्रिय यक्षशिखर !
यक्षिणी तो बेहोश पड़ी है
'ओम् मणि पद्मे हुम' मन्त्र अवरुद्ध हो रहा
फाहियान-ह्वेनसाङ् के वंशज का दम्भ-दर्प
बुद्ध के रक्त की राक्षसी प्यास
माओ-महत्त्वाकांक्षा का अट्टहास
दम्भी के चेलों का निरन्तर उत्पात
ब्रह्मपुत्र-गंगा-गण्डक के आसपास।
मेरे अभ्रभेदी शैल शिखर !
अब तो शान्तिदूत भीमार्जुन बनेंगे
अहिंसादूत खड्ग-धारण करेंगे
परशुराम आते दिख रहे हैं
चाणक्य करवट बदल रहे हैं
दिनकर-नेपाली के जागरण गीत गूँजने लगे हैं।
मेरे शाश्वत शैल सन्त !
करुणेश आशुतोष
अब प्रलयंकर महाकाल बनेंगे
ताण्डव भीषण होगा
हिमखण्ड उसकी महत्त्वाकांक्षा पर टूट पड़ेंगे
खण्ड प्रलय होगा
और तब
हिमाद्रि काव्य पूरा होगा।

□

बी–३, त्रिभुवन विनायक रेजिडेन्सी, बुद्ध कालोनी, पटना– ८००००१ (बिहार)

प्रवाह में विलीन हो जाता है। कुछ दुःसाहसी लोगों ने मन्दिर के अन्दर जाने का प्रयास किया; पर उनकी भी वही गति हुई, जो पशुओं के सिर की होती है। अतः अब कोई इस मंदिर के अन्दर नहीं जाता।

नैटवाड़ गाँव के लिए देहरादून से चकराता, त्यूनी, पुरोला होते हुए रास्ता जाता है। यह प्रसिद्ध पर्यटक–स्थल हर की दून के मार्ग पर पड़ता है, जो सुगन्धित फूलों और बुग्यालों (घास के बड़े मैदानों) के लिए प्रसिद्ध है।

गढ़वाल के इन दो देवताओं की तरह कुमाऊँ में प्रसिद्ध गोलू देवता भी न्याय के देवता हैं। इन्हें गोलज्यू, गौर भैरव और बाला गोरिया आदि नामों से भी पुकारा जाता है। घोड़ाखाल (नैनीताल), चितई (अल्मोड़ा) तथा चम्पावत में इनके प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

कहते हैं कि गोलू चम्पावत के कत्यूरी राजा झालुराई के पुत्र थे। राजा को सात रानियों से भी जब सन्तान प्राप्त नहीं हुई, तो उन्होंने भैरव भगवान की उपासना की। इससे प्रसन्न

होकर भैरव ने उन्हें दर्शन देकर कहा कि तुम एक विवाह और करो, तब मैं उस रानी के गर्भ में आऊँगा। इस पर राजा ने कलिंगा नामक वीर युवती से विवाह किया, जिससे उनकी भेंट जंगल में शिकार के समय हुई थी। इसी रानी के गर्भ से गोलू का जन्म हुआ।

कण्डोलिया मन्दिर में घण्टियाँ

गोलू के जन्म लेते ही अन्य रानियों ने षड़यन्त्र कर उसे गोशाला में फेंक दिया और कलिंगा को बहका दिया कि तुमने एक पत्थर को जन्म दिया है। वह बालक गाय का दूध पीकर जीवित रह गया। यह देखकर रानियों ने उसे एक लकड़ी के बक्से में बन्द कर नदी में डाल दिया। वह बक्सा गोरीघाट में एक निःसन्तान मछुआरे को मिला, जिसने गोलू को पुत्र की तरह पाल लिया।

कुछ बड़ा होने पर गोलू को अपने जन्म और राज्य से सम्बन्धित कई स्वप्न दिखाई दिये। इस पर उसने अपने खेलनेवाले लकड़ी के घोड़े में प्राण डाल दिये और उस पर चढ़कर अपने पिता के राज्य में आ गया। वहाँ आकर उसने राजा को सारी कथा बतायी। राजा नाराज तो बहुत हुआ; पर गोलू के कहने पर उसने षड़यन्त्रकारी रानियों को क्षमा कर दिया। यही गोलू आगे चलकर फिर राजा बने।

गोलू एक न्यायप्रिय राजा थे। वे घोड़े पर सवार होकर पूरे राज्य में घूमकर लोगों को न्याय देते थे। इसलिए उनकी घोड़े पर सवार प्रतिमा की ही पूजा होती है। इन मन्दिरों में लोग अपनी व्यथा कागज पर लिख कर इधर–उधर टाँग देते हैं। सरकारी न्यायालय से निराश लोग बड़ी संख्या में वहाँ फरियाद करते हैं। कई लोग तो राजकीय रसीदी कागज पर प्रार्थना लिखकर मन्दिर की दीवार पर चिपका देते हैं। न्याय मिलने पर लोग मन्दिर में घण्टा चढ़ाते हैं। ५० ग्राम से लेकर ५०० किलो तक भार वाले, विभिन्न धातुओं के ऐसे हजारों घण्टे और घण्टियाँ गोलू देवता के मन्दिर में टँगी रहती हैं।
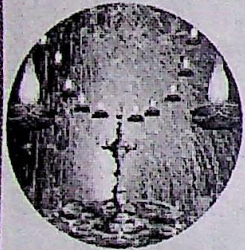
– संकटमोचन आश्रम, रामकृष्णपुरम्, सेक्टर ६, नयी दिल्ली – ११००२२

Blog - vijaipath.blogspot.in
Blog - hardinpavan.blogspot.in
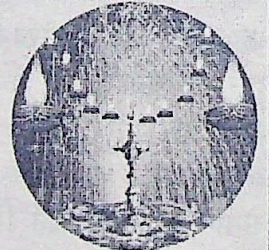
एशिया-सामरिक क्षेत्र में धुरी : तिब्बत

— डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी

पामीर एशिया की छत है, हिमालय हिन्द का सुरक्षा प्रहरी है, तो तिब्बत एशिया-सामरिक क्षेत्र में धुरी। एशिया के बीचोबीच, सर्वाधिक ऊँचाई रखनेवाला, शीत में ठिठुरनेवाला, वर्षा के लिए तरसनेवाला, कृषि अभाव में जीनेवाला, खनिज संसाधनों से प्रत्यक्षतः पंगु; पर बहुत धनी, अत्यल्प जनसंख्या रखनेवाला यह पठार, आज विश्व का सर्वाधिक महत्त्व का स्थल बना है। इसकी महत्ता मनुष्य ने नहीं, प्रकृति ने दी है। प्रकृति ने इसे ऐसी भू-स्थिति दी है कि यह रूस, चीन और भारत तीनों को ही अपनी आँखों में तरेरता, पूरी एशिया को अपने प्रभाव में बाँधता दीखता है। यह नियन्त्रण की सामर्थ्य रखता है। सभी ओर देखने और सम्हालने की शक्ति रखता है। इसीलिए चीन जैसे ही स्वतन्त्र हुआ, सत्ता सम्हाली कि तिब्बत को दबोच बैठा।

रूस, तिब्बत पर आँख गड़ाये रहा। और तो और अमेरिका अपना प्रभाव तिब्बत पर डालने के लिए बेचैन रहा। रूस और चीन दोनों ही भली प्रकार जानते हैं कि चीन के लिए तिब्बत सञ्जीवनी-शक्ति है। न अन्न सही, न जनसंख्या सही, न खनिज सही, न उद्योग सही; किन्तु स्थिति तो वह है कि चीन के आन्तरिक क्षेत्र को कसती है, उइगुरु देश (सिङ-क्याङ– चीनी नाम) और मंगोलिया को सम्हालती है तथा दक्षिण चीन तक प्रभाव डालती है। आन्तरिक क्षेत्र के साथ ही चीन की आक्रामक-शक्ति इसी तिब्बत के बल पर अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, म्यांमार और भारत को अपनी षड्यन्त्र सनी पीली अँगुलियों में दबोचती है। रूस के पैर बाँध देती है।

चाऊ एन लाई व नेहरू

तिब्बत का आकार, मनोवैज्ञानिक और सामरिक स्वरूप बने चीन को विश्व में महान् शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी यौद्धिक क्षमता को बढ़ाता है। आकार के साथ ही पठार की आकृति इतनी अनुकूल, चीन के हित में बनी है कि चीन सभी पड़ोसी देशों को अपनी मुट्ठी में पकड़ता दिखायी पड़ता है। पाकिस्तान और कश्मीर पर उसका अँगूठा है, तो हथेली में हिमाचल, उत्तराखण्ड, भूटान, सिक्किम को सम्हालता, नेपाल को दबोचता और अपनी कनिष्ठिका (छंगुनी) से पूर्वाञ्चल तथा म्यांमार को पकड़ता मिलता है। इस स्थल से पूरी शक्ति झोंक सकता है और झोंकी है। १९६२ भुलाये नहीं भूलेगा। तिब्बत को, चीन ने सफलता के साथ आक्रमण का आधार-स्थल बना लिया।

हाँ, यह अवश्य है कि रक्त के सम्बन्ध, संस्कृति के सम्बन्ध, दर्शन के सम्बन्ध, उपासना और आदर्शों के सम्बन्ध, चीन को झकझोरते हैं। तिब्बत के उत्तर सिङ्क्याङ् क्षेत्र में एक करोड़ से भी अधिक उइगुर मुस्लिम अपने ढंग से चीन को आँख दिखाते हैं, तो मंगोल भी चीन के मुख्य रक्त 'हान' से दोस्ताना नहीं गाँठते, तिब्बत के बौद्ध बिल्कुल अलग, युद्धरत खड़े हैं। उनका रक्त का सम्बन्ध, मुख्य चीनी रक्त से नहीं। २५ लाख की संख्या में वे अपने अस्तित्व और पहचान के लिए जूझ रहे हैं। इनका आध्यात्मिक और उपासना का जीवन भारत से जुड़ता है। इसीलिए चीन पूरी शक्ति लगाकर उन्हें समूल नष्ट करने पर तुला है। माओ त्से-तुङ् ने १९५७ में ही कहा था कि "चीन के ५ प्रतिशत से भी कम लोग हमारे आधे से अधिक भाग में फैले हैं।" चीन का यह तानाशाह तिब्बत को तिब्बतियों का घर नहीं मानता। इसी प्रकार सिङ्क्याङ् को उइगुर, तुर्किस्तानियों का घर नहीं मानता और न मंगोलिया को मंगोलों का घर मानता है। माओ कहता है "हमें सबको चीनी बनाना है।" यह काम चल रहा है।

१३ जनवरी, १९६५ में 'इण्टरनेशनल कमीशन आफ जूरिस्ट' ने प्रकाशित किया कि तिब्बत की जनता के जीवन
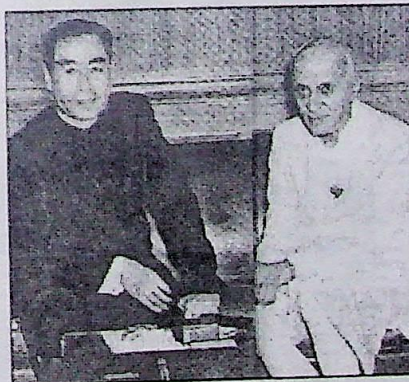
के हर क्षेत्र में चीन के शासकों ने प्रतिबन्ध लगा रखा है। मठों को विध्वंस किया जा रहा है या सैनिक अड्डों में बदला जा रहा है। तिब्बतियों को नागरिक अधिकारों से वञ्चित कर दिया गया है। तिब्बती स्त्रियों को चीनियों से विवाह के लिए बाध्य किया जा रहा है। उनका नामो-निशान मिटा दिया जायेगा। चीनी अफसर और सैनिक तिब्बती महिलाओं से बलात् विवाह करते हैं। तिब्बत के कृषकों, व्यापारियों पर भारी कर लगाया जाता है। तिब्बत का सम्पूर्ण खाद्य-भाण्डार सैनिकों के लिए दबा लिया जाता है। सैकड़ों तिब्बती भूखों मरे हैं। तिब्बतियों को वेष-भूषा, भोजन और सांस्कृतिक विचार बदलने के लिए विवश कर दिया गया है। पुराने नाम बदल दिये गये हैं। बच्चों को छीनकर, चीन भेज दिया जाता है, उन्हें चीनी बनाया जाता है। चीनी मूल रक्त, हान को बड़ी से बड़ी संख्या में तिब्बत में बसाया जा रहा है। फिर भी तिब्बतियों का अस्तित्व न मिटाये मिट रहा है और न दबाये दब रहा है। हर अत्याचार और हर आतंक सहते हुए, वे अपने शान्त; किन्तु आश्वस्त ढंग से लोकतान्त्रिक रूप में खड़े हैं; क्योंकि उनको प्रकृति ने जो जीने का दर्शन दिया है, वह भोग का नहीं, पशुता का नहीं, मनुष्यता और दूसरों के लिए जीने का है। उनको निर्माण और कल्याण की संस्कृति दी है, जो ध्वंस के हाथों मिटती नहीं; उनको त्याग और समर्पण की संस्कृति दी है, जो छीनने और दबोचने से समाप्त नहीं होती। इसीलिए तो विश्व में दलाई लामा सम्मानित हैं। दलाई लामा को मान्यता प्राप्त है। वह भारतभूमि पर रहते हैं। तिब्बतियों का विस्तार, दूसरे देशों में है ही। तिब्बत में वे पैर जमाये बैठे हैं। चीनी उन्हें उखाड़ नहीं पाये हैं।

तिब्बत के मामले में बहुत अच्छे जानकार जार्ज पैटर्सन, तिब्बत में वहाँ के खम्पा जाति के लोगों के साथ वर्षों तक रहे हैं कि अब भी चीन के विरुद्ध संघर्ष जारी है। ल्हासा, जो लामाओं का नगर था, चीनी सैनिकों का अड्डा बना दिया गया है। राजधानी से कई मील तक कोई लामा दिखायी नहीं देता। सैनिकों की संख्या नागरिकों से अधिक है; किन्तु अपने को बनाये रखने की उमंग, किसी प्रकार मिटाये नहीं मिटती।

१९४९ में नेहरू ने तिब्बत में चीन की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार कर ली थी; परन्तु यह माँग की थी कि उसे स्वायत्तशासन प्रदान किया जाये। २३ मई, १९५१ को तिब्बत और चीन के बीच एक समझौता हुआ कि तिब्बत के वैदेशिक सम्बन्ध, सञ्चार और व्यापार का नियन्त्रण पूर्ण रूप से चीन के हाथ में रहेगा। इस समझौते के अनुसार तिब्बत की सेना को चीन की सेना में मिला दिया गया। चीन ने तिब्बत को स्वायत्त शासन प्रदान किया; परन्तु १० फरवरी, १९५२ को ल्हासा में सैनिक अड्डा बना दिया गया, तिब्बत की स्वतन्त्रता

समाप्त कर दी गयी। चीनी सेना, भारत की सीमा तक आ पहुँची। १६५६ में दलाई लामा को तिब्बत छोड़ना पड़ा और वे गोपनीय ढंग से भारत आ गये।

तिब्बत संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना दर्द लेकर गया। वहाँ उलझा ही रहा। १६६२ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मान लिया कि चीन को मानवाधिकारों के कुचलने के कृत्य से रोका जाये; परन्तु चीन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह हर तरह से तिब्बत को चीन का अभिन्न अंग बनाना चाहता है। १६६५ में संयुक्त राष्ट्र संघ असेम्बली ने तिब्बत को अपने वाद-विवाद की सूची में सम्मिलित किया; परन्तु चीन टस से मस न हीं हुआ। वह भला कैसे तिब्बत को छोड़ दे ? वही तो एक विस्तार का रास्ता है; वही तो विश्व में शक्ति बन फैल जाने की कुञ्जी है; वहीं तो बड़ी-बड़ी शक्तियों को झुका देने की चाबी है।

श्री गुरुजी

चीन अपने समुद्रतटीय बड़े-बड़े नगरों के बल पर, न तो प्रशान्त सागर में अजेय शक्ति बन टिक सकता है और न दक्षिण एशिया के देशों में शक्ति बन बैठ सकता है। यह काम वह तिब्बत के बल पर ही कर सकता है। इसी के बल पर उसने भारत की उत्तरी सीमा के क्षेत्र को अपना क्षेत्र बता रखा है और नित्य नये-नये विवाद खड़े करता रहता है। इसी के बल पर वह पाकिस्तान में अन्दर तक धँस गया है। समझौता कर, पाकिस्तान के हाथों कश्मीर की जमीन पर कब्जा कर बैठा है और पाकिस्तान के ग्वादर बन्दरगाह पर अपना नैसैनिक अड्डा बना लिया है।

यह तिब्बत की ही धरती है, जिसके बल पर चीन के पीले पञ्जे, १६६२ में भारत की धरती पर गड़े और चीन ने भारत के स्वाभिमान को ध्वस्त कर डाला। कश्मीर में अक्षय चीन पर वह कब्जा कर बैठा और भारत की उत्तरी सीमा को कसकर दबोच बैठा। यह तिब्बत ही है, जिसके कारण नेपाल को चीन अपनी गोद में ले बैठा है। एक मात्र हिन्दू राष्ट्र रहा, नेपाल, हिन्दुस्तान के हाथों से खिसक रहा है।

डॉ. राममनोहर लोहिया   आचार्य रघुवीर

इसी तिब्बत की जमीन चीन को म्यांमार में घुसा रही है। लगता है, पूरा दक्षिणी एशिया चीन अपने चंगुल में दबोचने जा रहा है। तिब्बत की यह विनाशक स्थिति हमारे ही हाथों बनी। हमी ने चीन का सर्वोच्च स्वामित्व तिब्बत पर स्वीकार कर लिया। हमने अपनी सेना हटा ली। हमने तिब्बत के सम्बन्ध कमजोर किये। तिब्बत का साथ न संयुक्त राष्ट्र संघ में दिया और न व्यावहारिक धरातल पर साथ खड़े हुए। बस, दलाई लामा को शरण दी। दलाई लामा को खुलकर अपना राजनीतिक काम भी नहीं करने दिया।

चीन भविष्य में अपने बढ़ते वर्चस्व को स्थापित करने के लिए अपने आणविक अस्त्रों को तिब्बत में (लहासा) जमा चुका है। यह उसका नियन्त्रण स्थल बन चुका है। यहाँ से वह रूस, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और पूरी दक्षिणी एशिया को नियन्त्रण में बाँधे रख सकता है। ब्रिटेन गया, रूस बिखरा, अमेरिका ध्वस्त हो रहा है; किन्तु यह बड़ा 'ड्रैगन' (चीन) मुँह खोले उभरता आ रहा है। हमें तुरन्त आँखें खोलनी होंगी।
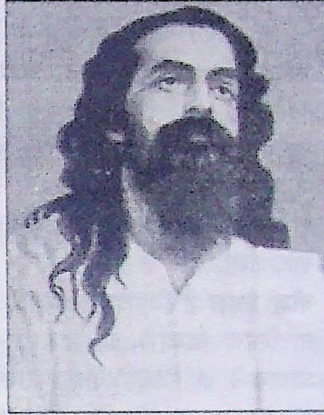
इस ड्रैगन (अजगर) को रोकना है, तो सबके पहले पाकिस्तान को समझना होगा। पाकिस्तान स्थापित सत्य/तथ्य नहीं है। स्थापित तथ्य होता, तो बांग्लादेश नहीं बनता। पाकिस्तान स्वाभाविकतः न तो देश है, न राज्य है और न राष्ट्र है। यह तो इस्लाम के आक्रमण का अस्थायी दहाड़ता हुआ स्वरूप है। कभी भी ध्वस्त हो सकता है। पाकिस्तान का मिटना, भारत ही नहीं, विश्व के लिए भी परम आवश्यक है। यह आतंक और आक्रमण का विषैला नाग है। पाकिस्तान गया, तो चीन के फैलते पञ्जे अपने आप रुक जायेंगे।

पाकिस्तान को ठीक करने के साथ ही अपने रक्त, अपने सगे और अपने सनातन से सम्बन्धी, नेपाल को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक सम्बन्धों में कसकर बाँधना होगा। दोनों का समाज एक है, एक रहे। इसी एकत्व की शक्ति पर नेपाल चीन की अस्वाभाविक गोद से बाहर आ, भारत की भुजाओं में सम्हलेगा। यह होते ही चीन का स्वप्न भंग हो जायेगा।

तिब्बत के पूर्वी क्षेत्र को सम्हालने के लिए म्यांमार के पुराने रिश्ते जोड़ने होंगे। वह तो भारत का ही अंश रहा है और प्राकृतिक दृष्टि से भारत ही है।

तिब्बत को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक सम्बन्धों में योजनापूर्वक प्रगाढ़ रूप में बाँधना होगा। बहुत पुराने काल से तिब्बत भारत के साथ रहा है। उसका आध्यात्मिक, त्यागपूर्ण जीवन, भारत के जीवन का ही रूप है। कैलास और मानसरोवर जीवन्त प्रमाण हैं। शिपकी दर्रा, माना दर्रा, नीती दर्रा, कुंगरी-बिंगरी दर्रा,

धर्मा दर्रा, लिपू लेक दर्रा सरलता से आने-जाने का काम दे सकते हैं। लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार और असम से भी तिब्बत तथा तिब्बतियों को जोड़ा जा सकता है। हमारी सोच ठीक हो।

स्पष्ट देखा जा सकता है, विधि का लिखा भी यह है कि चीन शीघ्र ही तीन खण्डों में विभाजित हो रहा है। तिब्बत, सिङ्क्याङ्, मंगाल क्षेत्र सरक रहा है, तो दक्षिण चीन अलग भागने को तैयार है। इस विचार की पुष्टि विश्व के महान् भूगोलवेत्ता कोहेन भी करते हैं। यह प्रकृति के हाथों हो रहा है, होगा। हम तिब्बत को सम्हालें। काश ! हमने गोलवलकर जी की बात सुनी होती; हमने डॉ. लोहिया के कहे पर ध्यान दिया होता; डॉ. रघुवीर की भविष्यत् दृष्टि को समझा होता, तो तिब्बत को चीन के हाथों कभी न सौंपते और तिब्बत, हमारा त्रिविष्टप आज आठ-आठ आँसू रोने को बाध्य न होता। □

– १/२३६, नगलादीना, फतेहगढ़, फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

मन्दिर प्रमाण

भारत से चीन पहुँचा था बौद्ध धर्म

चीन के सबसे बड़े रेगिस्तान में १५०० साल पुराने एक बौद्ध मन्दिर के खण्डहर का पता चलने के बाद इतिहासकारों को इस विषय पर अध्ययन करने के लिए मूल्यवान् सामग्री उपलब्ध हो गयी है कि बौद्ध धर्म का चीन में विस्तार भारत से हुआ था।

चीन की समाचार एजेन्सी सिन्हुआ द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार, मन्दिर के मुख्य कक्ष की संरचना दुर्लभ है, जो लगभग तीन चौकोर गलियारों और एक विशाल बौद्ध प्रतिमा पर आधारित है। उत्खनन परियोजना के प्रमुख पुरातत्त्व–विज्ञानी वू सिन्हुआ ने कहा कि इस इलाके में पुरातत्त्वविद् २०वीं सदी में जब से काम करने आये हैं, तकलामकाँ रेगिस्तान में अपने तरह का यह सबसे बड़ा कक्ष पाया गया है। शोधकर्त्ताओं के लिए इस विषय पर अध्ययन करने का यह सबसे अच्छा बौद्ध स्थल है कि यह धर्म भारत से चीन कैसे पहुँचा और चीन में इसके प्रारम्भिक विकास की क्या स्थिति थी ? वू चीनी सामाजिक विज्ञान अकादमी के जिङ्जियाङ् पुरातात्त्विक दल का नेतृत्व भी करते हैं।

यह खण्डहर तारिम नदी के बेसिन में स्थित तकलामकाँ रेगिस्तान के दक्षिण में स्थित है। इसे प्राचीन खोतान साम्राज्य के समय दामागो नखलिस्तान (शाद्वल) के नाम से जाना जाता था। इस राज्य की बौद्ध सभ्यता ईसापूर्व तीसरी सदी को मानी जाती है।

यात्रा के पन्ने

– राहुल सांकृत्यायन

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश

भाषा और जाति के विचार से तिब्बती और अम्दो (तंगुत) एक ही जाति के हैं। तंगुत चीन की सीमा, मध्य एशिया-चीन के प्रधान-मार्ग (रेशम-पथ) के नजदीक होने से सभ्यता में पहले प्रविष्ट हुए और तीसरी-चौथी सदी में अपने सभ्य पड़ोसियों की तरह संस्कृति-कला तथा दर्शन में भारतीय रंग में रँगे; लेकिन मुख्य तिब्बत के विशाल भू-भाग पर अभी सभ्यता का छींटा नहीं पड़ा था। **अभी तिब्बती लोगों का आर्थिक जीवन पशुपालों के घुमन्तू जीवन से आगे नहीं बढ़ा था, जबकि उनके एक सरदार स्त्रोङ्-चन्-गम्पो (जन्म ६१७ ई.) ने छोटी-छोटी घुमन्तू सरदारियों में बँटे तिब्बत** को ६३० ई. से एकताबद्ध करना शुरू किया और दस-बारह साल के भीतर, पीछे के मंगोलों की तरह, तिब्बत के लड़ाकू घुमन्तूओं ने असम से लेकर कश्मीर तक सारे हिमालय, पूर्वी-मध्य एशिया और चीन के भी कुछ इलाकों पर अपना अधिकार कर एक विशाल राज्य को स्थापित कर दिया। अब वह घुमन्तू जीवन के लिए उपयुक्त संस्कृति तक अपने को सीमित नहीं रख सकते थे। उन्होंने भी अपने अम्दो भाइयों की तरह बौद्ध धर्म और संस्कृति को अपनाया। **बौद्ध धर्म को अपनाना एशिया की किसी जाति के लिए कठिन नहीं था; क्योंकि उसमें वह सहिष्णुता थी, जिससे वह किसी देश के इतिहास, राष्ट्रीयता या देवावली का विरोध नहीं करता था। बौद्ध धर्म जहाँ भी गया, ध्वंसक के तौर पर नहीं; बल्कि पूरक के तौर पर गया।**

यद्यपि तिब्बत के इतिहासकारों और धार्मिक नेताओं ने इस बात की कोशिश की, बौद्ध धर्म द्वारा ली हुई सारी चीजों को सीधे भारत से आयी सिद्ध करें; किन्तु अन्तःसाक्षियों से पता लगता है कि कितनी ही बातों को तिब्बत ने भारत से सीधे नहीं; बल्कि पूर्वी-मध्य एशिया (सिङ्-क्याङ्) द्वारा लिया। यद्यपि तिब्बत की शिरोरेखा वाली लिपि (ऊ-चेन्) की समानता छठी सदी की उत्तर भारतीय लिपि से है; किन्तु उसकी मुँडिया-लिपि (ऊ-मेद्) का उद्गम मध्य एशिया है। वह स्वाभाविक भी था; क्योंकि उनके जाति-भाई अम्दो लोगों ने भी यही रास्ता लिया था।

छिंगिस् खाँ

सम्राट् स्त्रोङ्-चन्, चिंगिस-खान की तरह आजन्म निरक्षर नहीं रहा। ल्हासा नगर के पास की पहाड़ी में अब भी आदमी के हाथों से बनाये वह गुहागृह मौजूद हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि तिब्बत के प्रथम सम्राट् ने यहीं चार वर्ष तिब्बती भाषा के लिए बनी नयी लिपि और नये व्याकरण का अभ्यास किया था। यदि इन गुहागृहों में स्त्रोङ्-चन् ने कुछ समय तक वास किया हो, तो अचरज की बात नहीं है, क्योंकि उस समय अभी ल्हासा नहीं बसा था, और दूसरे घुमन्तू विजेताओं की तरह स्त्रोङ्-चन् का भी ओर्-दू (घुमन्तू-निवास) तम्बुओं का ही रहा होगा।

इतने विशाल साम्राज्य का संस्थापक साधारण आदमी नहीं रहा होगा, वह अच्छा सेनानायक तो होगा ही; साथ ही अपने शासन को दृढ़ करने के लिए उसका दूरदर्शी राजनीतिज्ञ होना भी जरूरी है। **अपनी पाँच शताब्दी पीछे हुए महान् विजेता चिंगिस् खान (चिंग्-हिर्-हान्) की तरह उसमें भी बहुत-सी विलक्षणताएँ रही होंगी, लेकिन अफसोस है, उसकी जीवनी लिखने के लिए कोई बाण या अन्य प्रतिभाशाली लेखक नहीं मिला– यह स्मरण रहना चाहिए कि स्त्रोङ्-चन् बाण के चरित्रनायक हर्षवर्द्धन का समकालीन था** और हर्ष के मरने के बाद जब चीनी राजदूत का कन्नौज के शासक अर्जुन ने अपमान किया, तो स्त्रोङ्-चन् की ही सेना ने आकर उसका जबर्दस्त बदला लिया और अर्जुन को बन्दी बनाकर चीन भेज दिया।

स्त्रोङ्-चन् के सैनिकों और सेनापतियों को, हो सकता है अपनी विजय-यात्रा में बौद्ध धर्म के नजदीक जाने का मौका मिला हो; लेकिन **स्त्रोङ्-चन् के बौद्ध बनने के बारे में बतलाया जाता है कि उसका कारण उसकी दो रानियाँ हुईं, जिनमें एक नेपाल के राजा अंशुवर्मा की लड़की थी और दूसरी तत्कालीन चीन सम्राट् की। घुमन्तू महान् शासक को सभ्यता में प्रविष्ट करने के लिए इससे बढ़कर नजदीक की प्रेरणा नहीं मिल सकती थी, इसमें सन्देह नहीं।** रूस के प्रथम ईसाई राजा ब्लादिमीर (९००–१०१५ ई.) के बारे में भी यही बात हुई थी। उसकी रानी ग्रीक राजकुमारी अन्ना विद्वान् साधुओं, कलाकारों आदि की एक बड़ी जमात के साथ कियेफ नगरी में पहुँची थी, जिन्होंने

रूस को एक नयी दिशा दी। रूस ने उनसे अपनी भाषा के लिए ग्रीक लिपि सीखी, अपनी भाषा में बाइबिल को पढ़ने का अवसर पाया और वास्तुकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला आदि के प्रथम पाठ पढ़े। उस समय तक अभी ईसाई धर्म का व्यवहार सहिष्णुता और समन्वय का नहीं था, नहीं तो क्रिश्चियन होने के पहले से यद्यपि उसने रूस के प्रथम ईसाई राजा की भाँति यह घोषित नहीं किया कि जो कल अपनी सूर्य आदि की मूर्त्तियों को दिनयेप नदी में फेंककर बपतिस्मा नहीं लेगा, उसे मेरी कृपा-दृष्टि की आशा नहीं रखनी चाहिए। **सम्राट् पर धार्मिक प्रभाव डालनेवाली नेपाली रानी ठो-चुन ६४० ई. में तिब्बत पहुँची और उससे अगले साल चीनी राजकुमारी कोङ्-जो भी आ पहुँची। दोनों ही रानियाँ बहुत-से बौद्ध भिक्षु-पण्डितों, कलाकारों और पुस्तकों के अतिरिक्त सुन्दर बुद्ध-मूर्त्तियों के साथ आयी थीं। आज भी तिब्बती लोगों की यह सबसे पवित्र मूर्त्ति है और कोई तिब्बती उसके नाम से झूठी शपथ खाने के लिए तैयार नहीं होता। इस मूर्त्ति को तिब्बती भाषा में 'जो' या 'जोवो' (स्वामी) कहते हैं और जिस मन्दिर में यह स्थापित है, उसे 'जो खङ्' (स्वामिगृह)।** रूस के सूर्य आदि देवताओं की मूर्त्तियों का देवालयों से ही नहीं; बल्कि वहाँ की पुरानी धार्मिक कथाओं और गीतों, त्योहारों और रीति-रिवाजों का भी बहुत-सा परिचय मिलता है। तिब्बत में बौद्धों ने वहाँ की इन चीजों को जान-बूझकर नष्ट करने की कोशिश नहीं की। यदि हर एक चीज को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया, तो इसका कारण यही था कि उन्हें सांसारिक चीजों की ओर अधिक आकर्षण नहीं था अथवा अधिक आकर्षण दिखलाना नहीं चाहते थे।

कुबलाई खाँ

स्रोङ्-चन् ने किस सन् में बौद्ध धर्म स्वीकार कर अपने देशवासियों को उसे अपनाने का निमन्त्रण दिया, इसका ठीक पता नहीं है।

जो खङ् के बारे में तिब्बती इतिहास कहता है, कि इसके बनाने के संकल्प के साथ ही स्रोङ्-चन् ने ल्हासा नगर को बसाने का भी निश्चय किया। ल्हासा का अर्थ है देवभूमि; किन्तु देवभूमि बनने से पहले यह रा-सा (अज-भूमि या बकरियों की भूमि) के नाम से प्रसिद्ध था। इस जगह एक विशाल स्वाभाविक गढ़ा था, जिसमें पानी जमा होकर एक जलाशय का रूप लिये हुए था और शायद इसी के किनारे बकरीवाले अपना डेरा डाला करते थे। **ल्हासा १२,००० फुट**

की ऊँचाई पर बसा है; किन्तु जिस उपत्यका में यह अवस्थित है, वह आठ-दस मील चौड़ी तथा उससे कई गुना लम्बी है। लम्बाई पूर्व से पश्चिम होने के कारण वहाँ सूर्य की धूप अधिक लगती है, यह भी उसके लिए अनुकूलता है। नगर से दक्षिण की ओर ब्रह्मपुत्र की एक शाखा उइ-छू (मध्या नदी) बहती है। यह उपत्यका सैनिक तौर से भी बहुत सुरक्षित है। पूर्व की ओर उपत्यका संकुचित होकर घूम जाती है और पश्चिम की तरफ ब्रह्मपुत्र की एक और शाखा नदी तथा पास में आये पहाड़ों ने प्रतिरक्षा का अच्छा रूप धारण किया है। वस्तुतः उपत्यका के दोनों सिरे इतने टेढ़े-मेढ़े हो गये हैं कि आदमी जब तक छोर पर नहीं पहुँच जाता, तब तक पर्वत-बाँही पर अवस्थित चमकती सोने की छतों वाले पोतला-प्रासाद को देख नहीं सकता। यद्यपि पोतला का भी आरम्भ स्रोङ्-चन् के समय ही बतलाया जाता है; किन्तु वह उस समय इतना भव्य नहीं रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

यदि आप ल्हासा नगर के नक्शे को देखें, तो मालूम होगा कि उसके बीचोबीच में तेरहवीं शताब्दी का पुराना वही जो–खङ् मन्दिर है, यद्यपि वह नगर के सारे चौकोर केन्द्र को नहीं घेरता। केन्द्र के पश्चिमी छोर पर जो-खङ् है, जिसके पश्चिमी और उत्तरी भाग पर मन्दिर ही के घर हैं; लेकिन पूर्व की ओर दूर तक कितने ही मकान और किनारे-किनारे दुकानें हैं, जिनका अन्तिम भाग जुर-खङ् (कोने का महल) काफी स्थान घेरे हुए है। जुर-खङ् बहुत ही धनी, पुराना और प्रभावशाली सामन्त वंश है। हाल में तिब्बत के चार मन्त्रियों में सबसे प्रभावशाली इसी वंश का प्रधान पुरुष था। तिब्बत में झोपड़ी से महल तक सभी भाइयों का एक ही विवाह होने के कारण वहाँ किसी सामन्त-वंश के बढ़ने की गुञ्जाइश नहीं है, इसीलिए जुर-खङ् परिवार के गरीब व्यक्तियों के मिलने की सम्भावना नहीं है। पश्चिम में जो-खङ् से जुर-खङ् तक फैले ल्हासा नगर के केन्द्रीय ब्लाक को घेरे हुए काफी चौड़ी सड़क है, जो ल्हासा के प्रधान बाजार का भी काम देती है और साथ ही मन्दिर की परिक्रमा का भी। इसके दोनों तरफ बहुत-सी बड़ी-छोटी दुकानें हैं, जिनमें कितने ही लखपति नेपाली सौदागरों की भी कोठियाँ हैं। यही भारत और विदेशी कारखानों की बनी हुई हजारों तरह की चीजें तिब्बत में फैलाते हैं। ल्हासा में अब बिजली भी लग गयी है और कुछ समय पहले छोटा-सा रेडियो स्टेशन भी खोल दिया गया था; लेकिन सिवाय नववर्षोत्सव के जुलूस के रथ के कोई पहियेवाली गाड़ी प्रदक्षिणा में नहीं चली।

जो-खङ् के बनाने का इतिहास इस प्रकार है–

तिस्ता के तीर से

– कुँ. शिवभूषण सिंह 'गौतम'

हिमगिरि के आगोश में, शिशु-सा सुन्दर शान्त।
मनमोहक मुसकान-सा, है यह सिक्किम प्रान्त।।
संवाहक है शान्ति का, भारत का यह अंग।
सीमा पर सन्नद्ध है, हिमगिरि का हर शृंग।।
सजग अहेरी-सा अचल, सीमा पर हिमवान।
सदा सुरक्षित रहेगी, सिक्किम की यह शान।।
साक्षात है बरफ से, आच्छादित हिमवान।
श्वेताम्बर ओढ़े हुए, शुद्ध बुद्ध भगवान।।
मौन तथागत दे रहे, हैं ऐसा आभास।
तिब्बत के दुख दर्द का, है उनको अहसास।।
अति प्राचीन नवीनतम, निर्मित बौद्धविहार।
पञ्चशील सिद्धान्त का, करते हैं विस्तार।।
दक्षिण सिक्किम नामची, निर्मित चारों धाम।
इस धरती का स्वर्ग है, यह सुन्दर गिरिग्राम।।
तन मन निर्मल कर गया, सिक्किम का सौन्दर्य।
धुली-धुली सी घाटियाँ, अनपेक्षित औदार्य।।
श्रम की सार्थक साधना, औ निश्छल व्योहार।
नैसर्गिक सौन्दर्य ही, सिक्किम का आधार।।
प्यासी-प्यासी सी नजर, सहमे-सहमे भाव।
भोली-सी मुस्कान ने, मेटे सभी अभाव।।
खिली-खिली सी नारियाँ, सरल सजीले लोग।
भोला-भाला बचपना, सिक्किम का संयोग।।
सुबह सुहानी धूप से, खिल उठता गँगटोक।
पीने लगता दोपहर, पानी भर-भर ओक।।
सन्ध्या होते ही यहाँ, यत्र-तत्र-सर्वत्र।
नभ से आते हैं उतर, धरती पर नक्षत्र।।
गरमी की भीषण तपन, का न तनिक अहसास।
होने पाता है यहाँ, तिस्ता तेरे पास।।
तिस्ता तेरे तीर का, जनजीवन जीवन्त।
यों ही मुस्काता रहे, युगों-युगों पर्यन्त।।
अन्तरतम अत्यन्त ही, व्याकुल और अधीर।
तन तो होगा वतन में, मन तिस्ता के तीर।।
इस 'हाली-डे-होम' में, कुछ दिन का विश्राम।
संस्मृतियों में रहेगा, अपने आठो याम।।
यह कुछ दोहे दे रहा, सिक्किम तेरे नाम।
अब सम्भवतः फिर कभी, हो न यहाँ विश्राम।।

– 'अन्तर्वेद', कमला कालोनी,
छतरपुर– ४७१००१ (उ.प्र.)

चीनी राजकुमारी बड़े ही धनाढ्य कुल की लड़की होने से दहेज में बहुत सम्पत्ति लायी थीं। अपने साथ लायी बुद्ध-मूर्त्ति (जोवो) के लिए उसने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया, जो ल्हासा नगर में ही उत्तर की तरफ आज भी र-मो-छे के नाम से प्रसिद्ध है। स्रोङ्-चन् के मरने के बाद यही मूर्त्ति जो-खङ् में लाकर स्थापित कर दी गयी। नेपाल-कुमारी एक छोटे राजा की लड़की थी, उसके पास इतना धन कहाँ कि अपनी मूर्त्ति के लिए कोई अच्छा मन्दिर बना सके। सम्राट् को जब इसका पता लगा, तो उसने अपनी बड़ी रानी तथा अपने भी भक्तिभाव को विशाल रूप में दिखलाने के लिए ल्हासा नगर के केन्द्र में जो-खङ् का निर्माण कराया। इस कथा से यह भी पता लगता है, कि नगर के निर्माण या योजना के बाद यह मन्दिर बनाया गया। यदि ऐसा नहीं होता, तो उसे केन्द्र के एक छोर को नहीं, सारे भाग को घेरना चाहिए था। मैंने एक मंगोल शिल्पकार से मन्दिर का लकड़ी का नमूना बनाने के लिए कहा। मन्दिर के आसपास कितने ही और छोटे-मोटे देवालय तथा उपदेश-शालाएँ आदि बनते गये हैं। शिल्पकार ने अपने नमूने को तैयार करने के लिए मन्दिर की छान-बीन की थी।

मन्दिरों की दीवारों पर अनेक प्रकार के सुन्दर चित्र बने हुए हैं। कहीं सम्ये या दूसरे पुराने विहारों के चित्र हैं, कहीं सुवर्ण-वर्णाकित बुद्ध अपने पूर्व-जन्म में सैकड़ों प्रकार के महान् त्याग कर रहे हैं, अर्थात् जातक-कथाएँ चित्रित हैं। कहीं भगवान् बुद्ध के जीवन के अन्तिम जीवन की घटनाएँ दी हुई हैं। चित्र बहुत सुन्दर हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि यह मन्दिर के साथ ही बने थे; लेकिन कुछ चित्रों की रेखाएँ सत्रहवीं सदी के प्रसिद्ध चित्रकारों की हैं, इस पर विश्वास किया जा सकता है। समय-समय पर नये रंगों को फेरते वक्त भी तिब्बत में पुरानी रेखाओं का ख्याल रखा जाता है। मन्दिर के भीतर की मूर्त्तियों पर बहुत पुरानी होने से पलस्तर की एक खुरदरी मटमैले रंग की मोटी तह जमी हुई है, तो भी उनके अंग-प्रत्यंग का मान, उनकी मुख-मुद्रा, रेखाओं की कोमलता और भाव-व्यञ्जकता बड़ी सुन्दर है। मुख्य मन्दिर के भीतर जोवो की मूर्त्ति के सामने मक्खन से भरे सोने-चाँदी के विशाल दीपक रात-दिन जलते रहते हैं। चाँदी का सबसे बड़ा दीपक ८०० तोलों का है। बहुमूल्य रत्न और धातुएँ जहाँ-तहाँ जड़ी हुई हैं। जोवो की प्रधान मूर्त्ति के साथ चन्दन तथा काष्ठ की और कई सुन्दर मूर्त्तियाँ छोटे देवालय में रखी हुई हैं। प्रधान मन्दिर के सामने की ओर दूसरे तल पर अपनी दोनों रानियों के साथ स्रोङ्-चन् की मूर्त्ति है। और भी जहाँ-तहाँ पुराने भोट-सम्राटों की मूर्त्तियाँ हैं।

यद्यपि लड़ाइयाँ कितनी ही बार होती रही हैं; किन्तु कभी

कोई बौद्ध धर्म विरोधी विजेता मध्य तिब्बत तक नहीं पहुँच सका, इसलिए वहाँ के मन्दिर और मठ प्रायः सभी सुरक्षित रहे। इसका यह अर्थ नहीं कि आपसी युद्ध में भी किसी पुराने विहार की कुछ क्षति नहीं हुई। १९०८ के आसपास दलाई लामा जब अपनी चीन–विरोधी नीति के कारण तिब्बत से भगा दिये गये, तो ल्हासा के महाप्रभावशाली महन्त का मान बढ़ गया। प्रथम चीनी क्रान्ति के बाद चीनियों की निर्बलता से लाभ उठाकर जब दलाई लामा (तेरहवें) १९१२ के आसपास तिब्बत लौटने में सफल हुए, तो उस महन्त को मरवाकर उसके विशाल मठ को उन्होंने नष्ट करके वहाँ कोई चिह्न नहीं छोड़ा। उसी की खाली जमीन पर पीछे ल्हासा का डाक–तार घर स्थापित हुआ। मन्दिर की मूर्तियाँ और पुस्तकें क्या हुई, इसके बारे में चाहे निश्चित रूप से कुछ भी न कहा जा सके, लेकिन उस पुराने मठ की दीवारों के मध्य धार्मिक चित्रों को नष्ट कर दिया गया, इसमें कोई सन्देह नहीं। लोगों का कहना था कि दलाई लामा ने उस मठ को तोप के गोलों से उड़वा दिया। अभी हाल की बात है। **तेरहवें दलाई लामा के मरने के बाद रेडिङ् के लामा रिजेन्ट (उपराज) हुए थे और वह बारह–तेरह वर्ष तक अपने पद पर रहे। अन्त में भीतरी दलबन्दी में रेडिङ् लामा को अपने प्राण खोने पड़े। उनका मठ रेडिङ् ग्यारहवीं शताब्दी के तीसरे पाद में बना था। भारतीय महान् आचार्य और धर्म–प्रचारक दीपंकर श्री ज्ञान के प्रमुख शिष्य डोम्–तोन् द्वारा यह विहार स्थापित हुआ था। तब से पिछली नौ शताब्दियों तक ल्हासा से उत्तर चार दिन के रास्ते पर अवस्थित यह विहार बहुत–सी राष्ट्रीय निधियों का संग्रहालय बनता गया।** १९३४ ई. में अपनी द्वितीय यात्राओं में इस मठ में मैं प्राचीन वस्तुओं के अनुसन्धान के लिए गया था। हाँ; भारत से गयी कुछ लाल–पोथियाँ थीं, जिन्हें तो मैं देख नहीं सका; किन्तु वहाँ मैंने दो दर्जन के करीब अत्यन्त सुन्दर भारतीय चित्रपट देखे थे, जब मैंने सुना कि रेडिङ् लामा के मारने के समय विरोधियों ने इस मठ में भी आग लगा दी, तो मुझे बार–बार भारतीय कला की इन अनमोल निधियों का ख्याल आता था। **हाल में जब तिब्बत और चीन का संघर्ष निश्चित–सा दिखायी पड़ता था, तो मुझे जो–खङ् और उसकी तरह के सातवीं से बारहवीं–तेरहवीं सदी तक के बने दो दर्जन प्राचीन मठों का ख्याल आता था, जिसका विनाश तिब्बत की ही नहीं; बल्कि हमारे देश की भी भारी सांस्कृतिक क्षति होती।** भारत की संस्कृति, कला की निधियों के प्रति जिनके हृदय में प्रेम है, उन्हें धन्यवाद देना चाहिए कि चीन और तिब्बत के बीच शान्तिपूर्ण समझौता हो गया।

तिब्बत पर भारतीय प्रभाव

तिब्बत जाति उत्तर में मंगोल, पूरब में चीनी, दक्षिण में भारतीय और पश्चिम में तुर्क तथा ताजिक जातियों से घिरी है। इसके दूर के सम्बन्धियों में बर्मी और सिक्किम में लेप्चा भी हैं। हिमालय के भोटिया और जाड लोगों की तरह मध्य एशिया के तंगूत या अम्दो इसके ही भाग हैं। चीनी और रूसी लोग जिन्हें तंगूत कहते हैं, तिब्बत में उन्हें अम्दो कहा जाता है। इनका इलाका हाङ्-हो नदी की उपत्यका से लेकर लोबनोर तक रहा। लोबनोर के किनारे करा-शहर तो कभी इनकी राजधानी थी। **वैसे मुख्य तिब्बत में संस्कृति का विशेष प्रसार ७वीं सदी में हुआ, जबकि निम्न ब्रह्मपुत्र वाले तिब्बती भाग (ल्हो-खा) के एक सामन्त के पुत्र स्रोङ्-ग्चन् स्गम्-पो (६३०–६६० ई.) ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। अम्दो लोगों ने उससे तीन शताब्दी पहले ही चीन के एक भाग का शासन अपने हाथ में ले लिया था। उस वक्त उनमें बौद्ध धर्म प्रचलित हो चुका था; लेकिन यह बौद्ध धर्म सीधे भारत से न आकर कश्मीर और मध्य एशिया से होकर वहाँ पहुँचा था।** अम्दो भाषा के कुछ हस्तलेख रूसी पर्यटकों और विद्वानों को मिले हैं; लेकिन वह उतने पुराने नहीं हैं। जो भी हो, अम्दो लोगों का तिब्बत की संस्कृति और विद्या के क्षेत्र में मुख्य स्थान है।

ल्हासा नगर

प्रसिद्ध तिब्बती दार्शनिक और सुधारक चोङ्-ख-पा (१३५७–१४१९ ई.) अम्दो का ही निवासी था, जिसके ही अनुयायियों और उत्तराधिकारियों में आज के दलाई लामा और पण्-छेन् लामा जैसे बड़े-बड़े सत्ताधारी हैं। चोङ्-ख-पा सिर्फ एक सुधारवादी बौद्ध सम्प्रदाय का संस्थापक ही नहीं था; बल्कि वह एक उच्चकोटि का दार्शनिक और विद्वान् भी था। उसने तथा उसके योग्य शिष्यों जम्-यङ्, शाक्य-ये-शेस् और दर्गे-दुन्-डब् ने गं-दन्, सेरा, डेपुङ्, टशी-ल्हुन्पो जैसे विशाल विद्या-केन्द्र स्थापित किये, जिनमें लद्दाख, कनौर, नेपाल, भूटान और मंगोलिया और बैकाल तक के भी हजारों विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। यह इसी शिक्षा प्रचार का प्रभाव था कि तिब्बती भाषा बैकाल और वोल्गा के तट पर भी सुनायी देती थी। वहाँ के मठों में ग्रन्थों को ही तिब्बती भाषा में नहीं पढ़ते थे; बल्कि कितनी बार तो यह व्यवहार की भाषा देखी जाती थी।

१९३५ में मैं कोरिया से साईबेरिया के रास्ते मास्को जा रहा था। मंचूरिया के नगर हर्बिन से रेल पर चढ़कर आगे जाते समय हैलर के आसपास दो मंगोल पुरुष मेरे डिब्बे में आकर चढ़े। चीनी मैं बोल नहीं सकता था। मंगोल भाषा का भी मुझे ज्ञान नहीं था। मैंने विना सोचे-समझे तिब्बती में

उनसे पूछा, तो लम्बी-पतली चोटी वाले गृहस्थ ने कोई जवाब नहीं दिया; किन्तु लामा (भिक्षु) ने तिब्बती भाषा में जवाब दिया और बतलाया कि हमारे विहारों में तिब्बती भाषा समझनेवाले बहुत मिलेंगे।

मंगोलिया में बौद्ध धर्म का प्रचार और उसके द्वारा हिन्दू-तिब्बती संस्कृति का फैलाव जिनके द्वारा हुआ, उनमें चोङ्-ख-पा जैसे अम्दो विद्वानों का विशेष हाथ है। इधर पिछली डेढ़ शताब्दियों में तो मध्य तिब्बत में भी बड़े-बड़े विद्वान् अम्दो वाले रहे हैं। मेरी ल्हासा यात्राओं के समय वहाँ के सबसे बड़े विहार डेपुङ् के गेशे शे-रब राजधानी के सबसे बड़े विद्वान् माने जाते थे। उन्हीं की देख-रेख में ल्हासा का कंजूर ब्लाक तैयार हुआ। कंजूर में बौद्ध त्रिपिटक तथा बुद्ध के मुँह से निकले कहे जाने वाले बच्चों का तिब्बती अनुवाद संगृहीत है। इसकी एक सौ तीन पोथियों में से प्रत्येक दस-दस हजार श्लोकों के बराबर की हैं। गेशे शे-रब नवीन चीन के साथ हैं। जिस समय ल्हासा में रेडियो स्टेशन खोलकर नवीन चीन के विरुद्ध प्रचार शुरू हुआ, उस समय गेशे शे-रब ने अम्दो से रेडियो-भाषण देना शुरू किया, जिसका तिब्बती लोगों पर अधिक असर होना स्वाभाविक था। अम्दो लोगों में विद्या और कला के प्रति बहुत प्रेम है, जो चौथी सदी से आज तक अक्षुण्ण चला आ रहा है। अम्दो का नाम तिब्बत में विद्या का पर्याय समझा जाता है।

यद्यपि अम्दो (तंगूत) लोगों में पहुँचकर विशाल तिब्बती जनता के एक भाग में भारतीय संस्कृति चौथी शताब्दी में स्थापित हो चुकी थी; किन्तु जैसा कि ऊपर कहा, तिब्बती साम्राज्य के सातवीं शताब्दी में स्थापित होने के पहले वह सीधे तिब्बत में नहीं पहुँच सकी। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने तक तिब्बत भारतीय संस्कृति के विशाल समुद्र के भीतर एक द्वीप की तरह अछूता पड़ा था। उसके पूरब में चीन का बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति से घनिष्ठतम सम्बन्ध हो चुका था। दक्षिण-पूर्व कोने में तो नया गन्धार मौजूद था, जहाँ के लोग भारतीय धर्म और संस्कृति के परम अनुरक्त थे। १३वीं शताब्दी के तीसरे पाद तक वर्त्तमान युन्नान प्रदेश (चीन) का एक भाग गंधार कहा जाता था। जब कुबलाइखान ने बड़े खून-खराबे के साथ स्वतन्त्रता-प्रेमी गंधारों को परतन्त्र किया, तो उनके कितने ही लोग असम, बर्मा और स्याम की ओर भागे। स्याम के थाई मूलतः यही पुराने गंधार थे। उन्हीं के नाम पर आजकल स्याम को थाईलैण्ड कहा जाता है। तिब्बत के दक्षिण में तो स्वयं भारत ही था। पश्चिम में लद्दाख और कश्मीर तो उस समय भी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग थे। पूर्वी मध्य एशिया के निवासी भी बौद्ध धर्मी थे। चीन और मध्य एशिया को मिलानेवाली कड़ी अम्दो लोगों की बौद्ध धर्म में परम आस्था रखती थी। □

चेहरा नहीं, चाहत देखो चीन

— डॉ. राममनोहर लोहिया

जब चीनी अंग्रेजों की नजीर देते हैं कि अंग्रेजों ने मान ली थी तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता, तो अंग्रेजों ने इसलिए मानी कि चीन का राजा कमजोर, नपुंसक था, इसलिए उसकी सत्ता मान ली और उस सत्ता का इस्तेमाल उन्होंने खुद किया। तिब्बत के ऊपर इनका सिक्का चलता था। तो, अंग्रेजों का तिब्बत के ऊपर चीन की सत्ता मान लेना कोई भी मतलब नहीं रखता। यह तो १८वीं सदी की होड़ का नतीजा रहा है। उनके अपने अन्तरराष्ट्रीय रिश्तों के चलाने के तरीकों का नतीजा रहा है और जब चीन वाले कहते हैं कि यह मैकमोहन रेखा तो अंग्रेजों की बनायी हुई साम्राज्यशाही रेखा उसकी असली रेखा नहीं। असली रेखा बनानी है, तो और बनेगी। पहले तो मैं वह सब बतलाना चाहता हूँ कि मैकमोहन रेखा तो अंग्रेजों की बनायी हुई है, साम्राज्यशाही की है; लेकिन तिब्बत के ऊपर चीन के आधिपत्य साबित करने के लिए अंग्रेजों के कायदे-कानून और जुमलों एवं अंग्रेजों की लिखी हुई बातों को क्यों चीनी लोग इतनी अहमियत देते हैं ?

मैकमोहन रेखा के मामले में तिब्बत का जो कैलास मानसरोवर वगैरह का इलाका है– मनसर का एक बड़ा प्रमाण मैंने दिया ही है– उसके अलावा मोटा-सा सवाल है। कौन कौम है, जो अपने बड़े देवी-देवताओं को परदेस में बसाया करती है ? छोटे-मोटे का बसा भी दें; लेकिन बड़ों को, शिव और पार्वती को परदेस में बसायें ? यह कभी हुआ है ? उन्हें कब बसाया, मैं नहीं कह सकता। शिव और पार्वती के किस्से कब गढ़े गये ? मैं तो बिल्कुल आधुनिक आदमी की तरह बोल रहा हूँ। हो सकता है कि कुछ आधुनिक लोग कहें कि अन्तरराष्ट्रीय बहस में, कूटनीति की बहस में शिव पार्वती को क्यों लाते हो ? मैं मानकर चलता हूँ कि ये किस्से कभी गढ़े गये, कभी भी ये किस्से बनाये गये, हिन्दुस्तानियों ने बनाये। कब बनाये, इसके ऊपर तहकीकात करो। मान लो ४००–५०० बरस पहले बनाये या ४–५ हजार बरस पहले। जब भी ये किस्से बनाये गये, तब कैलास और मानसरोवर भारत का हिस्सा जरूर रहा होगा, तभी तो कैलास और मानसरोवर में इन बड़े देवी-देवताओं को बसाया, नहीं तो और कहीं बसाते। खाली पिछले २–३ सौ बरस की टूटी-फूटी, सड़ी किसी सन्धि को, दस्तावेज को लेकर साबित कर देना कि तिब्बत चीन के साथ जुड़ा हुआ है, यह कोई मतलब नहीं रखता। तिब्बत में कैलास और मानसरोवर का इलाका है। कैलास और मानसरोवर हिन्दुस्तान का कभी न कभी रहा होगा, यह बात बिल्कुल तय है। एक तो मनसर की सबब से और दूसरे कैलास मानसरोवर की सबब से और खैर, जमीन का ढलाव, ये सबब जो होते हैं, उनके ऊपर हिन्दुस्तानी और चीनी अफसरों ने बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें की हैं। वह इलाका ले लो, जहाँ की नदियाँ चीन की तरफ बहती हैं; लेकिन इधर जो बहती हैं, वह तो बिल्कुल साफ कैलास और मानसरोवर एवं पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्र का इलाका है। इसलिए बार-बार मुझ जैसे लोगों ने कहा है कि **मैकमोहन रेखा हिन्दुस्तान और चीन की रेखा तो है ही नहीं, हो नहीं सकती, होनी नहीं चाहिए। अगर तिब्बत आजाद रहता है, तो तब हम अपने कैलास और मानसरोवर के इलाके को, जो कभी हिन्दुस्तान के राजकीय हिस्से थे, तिब्बत की रखवाली में रख सकते हैं; क्योंकि तिब्बत हमारा भाई है, नेपाल की तरह, करीब-करीब। लेकिन अगर तिब्बत आजाद नहीं रहता है, तब हिन्दुस्तान और चीन की सीमा रेखा मैकमोहन न हो करके और ७०–८०–९० मील उत्तर जा करके जहाँ पर कि कैलास**
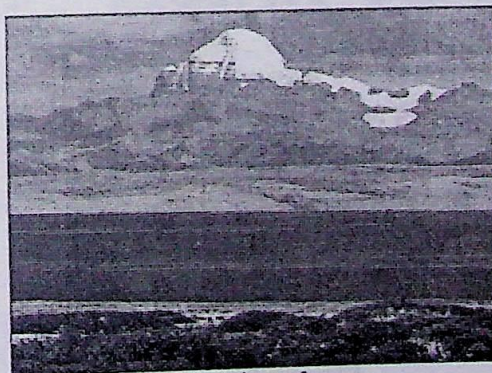
मानसरोवर झील

और मानसरोवर हैं, होती है। हो सकता है कि कुछ कहें कि यहाँ तो १५ अगस्त, १६४७ की रक्षा कर ही नहीं पाते, जो १६४७ को मिला था, तो मैकमोहन से भी ७०–८० मील दूर उत्तर जा रहे हो। इस पर मेरा एक छोटा-सा ही जवाब होगा। हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक लोग नहीं बैठे रहेंगे। इसके अलावा मेरा और कोई जवाब नहीं है। हिन्दुस्तान की जनता कभी न कभी इन मामलों के ऊपर सोच-विचार करके तय करेगी।

बताया जाता है कि आर्य, मंगोल, द्रविड़ ये सब जातियाँ थीं, जो अलग-अलग इलाकों में बसी हुई हैं, और इधर-उधर फैलती हैं एवं हिमालय के इलाके में जो लोग बसे हुए हैं, नेपाली या तिब्बती या मोनपा या अभोर या डाफला इन सबको मंगोल नाम दिया जाता है और हम ४५ करोड़ हिन्दुस्तानी भी इस गलतफहमी के शिकार बन जाते हैं। प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखते हैं कि चीनी का पीला रंग, चपटी नाक और तिरछी आँखें। हिमालय के उन लोगों को छोड़ दीजिए, जो भारतीय हिमालय के, कश्मीर के या कुछ हिमालय प्रदेश और पंजाब के इलाके में रहते हैं; लेकिन ज्यादातर तिरछी आँख अैर चपटी नाक और पीले रंग ने इतना सितम ढाया है कि हिन्दुस्तानी दिमाग सोच बैठा है कि हिमालय तो ऐसे लोगों से बसा हुआ है, जो चीनियों के साथ ज्यादा नजदीक हैं। इस सम्बन्ध में एक बात बताता हूँ कि परदेसी को हम जब देखते हैं, अगर बड़ी सावधानी से न देखें, खूब गौर करके उसके एक-एक अंग को, तब तक परदेसी के नखशिख को पहचानने में बड़ी कठिनाई हुआ करती है। अपने आपस के जो देशी लोग हैं, उनको देख लेना तो आसान होता है। उनका क्या नखशिख है, उनका क्या रंग है, वह जानने भी लगते हैं; क्योंकि दिन-रात उनको देखा करते हैं; लेकिन परदेसी सामने आया, जैसे बर्मी है, चीनी है, तिब्बत है, नेपाली है, तो इतना फौरन आँखें हमारे दिमाग को सन्देशा पहुँचा देती हैं कि यह परदेसी है, और यहाँ यह सन्देशा पहुँचा कि यह परदेसी है कि आँखें और दिमाग दोनों ढीले पड़ जाते हैं, ज्यादा गौर से देखते नहीं, समझ बैठते हैं, सब एक जैसे हैं, तिरछी आँखें, चपटी नाक, पीला रंग वगैरह, वगैरह। अगर हम गौर से देखें, जिस तरह से अपने देश में गौर से देखते हैं या उनको, जिनके साथ बहुत ज्यादा नाता-रिश्ता रहा है, गौर से देखते हैं, तो फर्क मालूम पड़ जायेंगे।

वास्तव में देखा जाये, तो हिमालय के इलाके में जो लोग बसते हैं, उनका चीनियों के साथ तो शारीरिक सम्बन्ध भी करीब-करीब नहीं। दिमागी तो है ही नहीं, लिखावट, भाषा का है ही नहीं। □

(१६६२ के भाषण का अंश)

(दैनिक भास्कर, २६–८–२०१० से साभार)
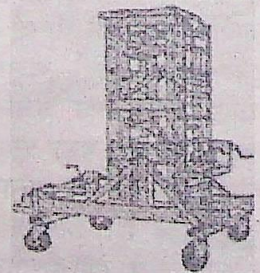
चीनी विस्तारवाद कँपकँपाता भारत !

– डॉ. रवीश कुमार

ऐसा लगता है कि भारत के कम्युनिस्ट भी परोक्ष रूप में चीन के छिपे हुए एजेण्ट है। केरल के तत्कालीन मुख्यमन्त्री अच्युतानन्दन ने खुलासा किया है कि सन् १६६२ के युद्ध में सैनिकों के लिए रक्तदान देने की जब उन्होंने पहल की तो कम्युनिस्ट पार्टी में कोहराम मच गया। सारे कामरेड एक साथ अच्युतानन्दन के विरोधी हो गये। पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री बने ज्योति बसु की सार्वजनिक सभाओं में नारा लगाया जाता था– चीनेर ओध्यक्ष, आमादेर ओध्यक्ष (अर्थात् चीन का अध्यक्ष हमारा अध्यक्ष है) और ज्योति बसु हाथ हिलाकर इस नारे को स्वीकार करते थे।

नवम्बर, २०११ में नेपाल के प्रधानमन्त्री बाबूराम भट्टरई भारत आये। भट्टरई ने भारत के प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह से मुलाकात में कहा– हम चाहते हैं कि नेपाल के माओवादी सशस्त्र विद्रोहियों को नेपाल की सेना में शामिल किया जाये। इसके लिए वे भारत की अनुमति चाहते थे। भारतीय प्रधानमन्त्री को इसका तीव्र विरोध करना चाहिए था; परन्तु मनमोहन सिंह इस पर बिल्कुल मौन रहे, एक प्रकार से बात को अनसुना कर दिया। बाबूराम भट्टरई ने इसे भारतीय प्रधानमन्त्री का 'मौनं स्वीकृति लक्षणम्' माना और तुरन्त नेपाल में विशेष सैन्य शिबिर लगाकर १६,००० माओवादी विद्रोहियों की नेपाली सेना में भर्ती प्रारम्भ कर दी गयी।

चीन नेपाल को दूसरा तिब्बत बनाना चाहता है। सत्यता यह कि चीन की विस्तारवादी नीति में केवल तिब्बत ही नहीं नेपाल, भूटान, सिक्किम, लद्दाख और अरुणाचल प्रदेश भी हैं। नेपाल, भूटान, सिक्किम, लद्दाख, अरुणाचल प्रदेश की भाँति तिब्बत कभी भी चीन का अंग नहीं रहा है। चीन के कब्जे से पहले तिब्बत पूर्णतया स्वतन्त्र राष्ट्र था। सन् १६४७ में एफ्रो-एशियाई देशों के सम्मेलन में तिब्बत ने एक स्वतन्त्र देश के रूप में भाग लिया था। इस अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में तिब्बत और चीन के अलग-अलग राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। तिब्बत ने सबसे बड़ी गलती यह की कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बना। यदि तिब्बत एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया होता, तो चीन पर अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक और नैतिक दबाव रहता।

यदि तिब्बत को स्वतन्त्र राष्ट्र बना दिया जाये, तो भारत और चीन की सीमा कहीं नहीं मिलती है। **डॉ. अम्बेडकर ने कहा था– 'यदि भारत ने तिब्बत को मान्यता दी होती, जैसी १६४६ में चीन को दी गयी थी, तो आज भारत-चीन सीमा विवाद न होकर तिब्बत-चीन सीमा विवाद होता।' डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, "चीनियों ने तिब्बत को लूटा है। तिब्बत को चीन के लौह शिकञ्जे से आजाद कर उसे तिब्बतियों को सौंपना होगा।"** परन्तु भारत सरकार की तिब्बत नीति कायरतापूर्ण ही नहीं, नपुंसक है। जब कि तिब्बत भारतीय संस्कृति और भारत-भूमि का ही विस्तार है। हमारे प्रमुख तीर्थ स्थान कैलास और मानसरोवर तिब्बत में हैं। अंग्रेजों की तिब्बत नीति वर्तमान कायर भारत सरकार से अच्छी थी। अंग्रेजों के समय में तिब्बत में भारतीय मुद्रा चलती थी, तिब्बत में भारत की डाक सेवा थी और भारतीय सेना तिब्बत में थी।

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने कहा था– 'कौन कौम अपने बड़े देवी–देवता को परदेश में बसाती है, वह भी शिव-पार्वती को (अर्थात् कैलास पर्वत = शिव-पार्वती का निवास स्थान / मानसरोवर = लक्ष्मी-नारायण का निवास स्थान) मैकमोहन रेखा हिन्दुस्तान और चीन की रेखा तो है नहीं, हो ही नहीं सकती, होनी भी नहीं चाहिए। तिब्बत आजाद रहे, तो कैलास-मानसरोवर उसकी रखवाली में रहेंगे। तिब्बत हमारा भाई है। हिन्दुस्तान और चीन की सीमा रेखा मैकमोहन न हो, ७०–८० मील उत्तर में कैलास-मानसरोवर तक हो... हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक लोग नहीं बैठेंगे।'

डॉ. राम मनोहर लोहिया का कथन सत्य था; परन्तु इससे भी कडुवा सच और भी है। यह ठीक है कि स्वतन्त्र तिब्बत भारत के लिए वरदान है। दलाई लामा ने कहा है– भारत गुरु और तिब्बत शिष्य है। सिर्फ शिष्य ही नहीं विश्वसनीय शिष्य है। पूज्य दलाई लामा जी ने यह भी कहा है कि मेरा (दलाई लामा का) अगला अवतार पूरी तरह भारतीय होगा और भारत के पहाड़ी क्षेत्र में जन्म लेगा। परम पावन दलाई लामा के संकेतों के अनुसार उनका अगला जन्म चीन के कब्जे से कराह रहे तिब्बत में नहीं, वरन् भारत के पहाड़ी क्षेत्र में होगा। बोध गया में दलाई लामा ने यह भी कहा है कि – "भगवान् बुद्ध का शिष्य होने के कारण

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

पोटाला (पोतला) प्रासाद

तिब्बत की राजधानी ल्हासा के मध्य भाग में लाल पहाड़ी पर स्थित सबसे ऊँचाई पर विश्व का सबसे पुराना प्रासाद है। ऊँचाई १२३५६.५५ फुट।

यह दक्षिण भारत की एक पवित्र पहाड़ी के नाम पर संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है 'करुणावतार अवलोकितेश्वर का निवास'। ७वीं शती ई. में चीन की तङ् राजवंश की अपनी पत्नी राजकुमारी वेन चङ् के स्वागत में तत्कालीन तिब्बत नरेश सोङ्त्सेन गम्पा ने लाल पहाड़ी पर १००० कक्षों का नौमञ्जिला प्रासाद बनवाया था और नाम रखा पोटाला। सोङ्त्सेन गम्पा-वंश के समाप्त होने पर युद्धों में वह प्रासाद लगभग ध्वस्त हो गया था। वर्त्तमान में जो भवन हम देखते हैं, वह क्विङ् राजवंश द्वारा निर्मित हुआ, जो १७वीं शती तक विस्तार-कार्य का फल है।
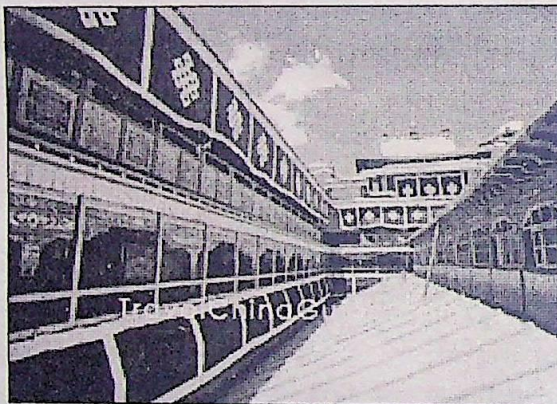
इसका निर्माण-ढाँचा दो भाग में है—

१. लाल प्रासाद केन्द्र में।

२. श्वेत प्रासाद दो पार्श्वों में।

लाल प्रासाद या पोतरङ्-मार्पो पोटाला का केन्द्रीय सर्वोच्च भाग है। इसका उपयोग केवल बुद्ध धर्म के अध्ययन और प्रार्थना के लिए होता है। इसे लाल रंग से रँगा गया था राजसत्ता के प्रतीक के रूप में। इसका मानचित्र बहुत ही घुमावदार व जटिल है। पश्चिमी महाकक्ष 'धर्मगुफा' में तेरहवें दलाई लामा की समाधि आदि हैं। यह लगभग ७८०४ वर्ग फुट का विशालतम कक्ष है, सुन्दर भित्तिचित्रों से अलंकृत है। धर्मगुफा व भिक्षु-मठ मात्र दो ही ७वीं शती के निर्माण बचे हैं। शेष दो मठ नष्ट हो गये हैं।

श्वेत प्रासाद (पोतराङ् कार्पो) कभी तिब्बत सरकार का मुख्य कार्यालय और दलाई लामा के आवास के रूप में प्रयुक्त होता था। प्रासाद की दीवार श्वेत रँगी गयी थी, जो कि शान्ति व नीरवता का रंग है। विभिन्न तलों पर बने महाकक्ष व अन्य कक्षों का पृथक्-पृथक् विवरण दे पाना विस्तारभय से सम्भव नहीं है। चीन के कम्युनिष्ट शासकों ने ल्हासा स्थित विश्व के इस प्राचीनतम सुविस्तृत भव्य प्रासाद को आज कैसा विद्रूप कर डाला है और विश्व मौन-व्रत धारण किये बैठा है; देखकर, जानकर दुःखमिश्रित आश्चर्य होता है। □

पोताला प्रासाद (ल्हासा में परम पावन दलाई लामा का निवास)

संस्कृति के दर्पण में 'अरुणाचल'

– डॉ. बीना बुदकी

सूरज की पहली किरण भारत में जिस छोर से प्रवेश करती है, जहाँ ललछौंहा बालरवि पहली किलकारी भरता है, अरुणोदय की उस धरती का नाम है– अरुणाचल प्रदेश। पर्वतों, वनों, नदियों से हरा-भरा यह प्रदेश अपने यहाँ रहनेवाली विभिन्न जनजातियों की बहुरंगी संस्कृतियों का संगम भी है, हिमालय की पर्वतश्रेणियों की गोद में स्थित इस पहाड़ी प्रदेश के उत्तर में चीन अधिकृत देश तिब्बत है। अरुणाचल प्रदेश में ही विदर्भ और चेदि राज्य थे, यह केवल लोकविश्वास नहीं, इस बात के पुरातात्त्विक अवशेष भी यहाँ के भीष्मक नगर में मिलते हैं। श्रीकृष्ण यहीं से रुक्मी और शिशुपाल को हराकर रुक्मिणी का हरण कर द्वारका ले गये थे।

आपातानी समाज का आराधना–स्थल 'मेदर नेलो'

नृत्य, गीत के प्रेमी यहाँ की जनजातियों को अपनी संस्कृति, धर्म, विश्वास, वेष-भूषा, पर्व, त्योहारों से बड़ा लगाव है। कोई इनकी अस्मिता पर आघात करता है, तो ये बिफर जाते हैं। इन्होंने अपनी पहाड़ी संस्कृति को पड़ोसी असम की मैदानी संस्कृति के साथ सामञ्जस्य रखते हुए भी अक्षुण्ण रखा है; हालाँकि अरुणाचली जनजातियों के असम की समतलीय लोगों के साथ रक्त-सम्बन्ध रहे हैं। पहले यहाँ की पहाड़ी संस्कृति और मैदान की ग्राम्य कृषि–संस्कृति में कोई अन्तर नहीं था। अतीत काल से ही अरुणाचल और असम, जो कि पहले एक ही थे, के लोगों में आपसी सौहार्द रहा है। आहोमों के शासनकाल और अंग्रेजों के शुरुआती पचास-साठ साल के शासनकाल में भी आपसी सम्बन्धों में कोई शिथिलता नहीं आयी, राजनीति और प्रशासनीय बाधाओं के उपरान्त भी दोनों राज्यों के बीच ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक एकरूपता प्राचीन काल से रही है। इनमें आपसी भाईचारा रहा, दोनों राज्यों के लोग एक दूजे के मीत रहे।

तांग्सा और त्युत्सा समाजों के आराध्य भगवान रांग्फ्रा

आदी समाज के आराध्य दूवीङ बोते

अरुणाचल में मिथुन नामक पशु देखने में गाय से बड़ा; किन्तु भैंस से छोटा होता है। इसका आकार भैंस से मिलता-जुलता है। मिथुन अरुणाचल की जनजातियों की सम्पदा के सूचक हैं। ये इन्हें अपने घरों में पालने के बजाय ज्यादातर जंगल में ही चरने छोड़ देते हैं। कभी-कभी इन्हें घर नमक चटाने लाते हैं। किसी पूजा में बलि देने की जरूरत पड़ने पर हाँककर ले आते हैं। मिथुन यहाँ की सामाजिक संरचना के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। विवाह करने के लिए लड़के वाले को लड़की के बाप को मिथुनों के रूप में दहेज देना पड़ता है।

किरातवंशीय भीष्मक का कुण्डिनपुर राज्य यहीं है, जिसकी राजधानी भीष्मक नगर थी। भीष्मक के रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मेश और रुक्ममाली नामक पाँच पुत्र और एक कन्या रुक्मिणी थी। रुक्मिणी ने मानसिक रूप से श्रीकृष्ण को पति के रूप में वरण कर लिया था, जबकि बड़ा भाई रुक्मी उसका विवाह चेदि (वर्त्तमान तेजू) नरेश दमघोष के पुत्र शिशुपाल से कराने का इच्छुक था। रुक्मिणी ने एक सन्देशवाहक द्वारा श्रीकृष्ण को यहाँ आकर उसे ले जाने का निमन्त्रण भेजा। इसे स्वीकार कर श्रीकृष्ण वहाँ आये और रुक्मिणी का हरण कर द्वारका ले गये। इस तरह श्रीकृष्ण ने भारत के पूर्वी भाग से पश्चिम का चिरस्थायी सम्बन्ध स्थापित किया, जिस तरह राम ने देश के उत्तरी भाग को दक्षिण से जोड़ा था। आज भी इदू मिश्मी अपना सम्बन्ध रुक्मिणी से मानते हैं।

इदू मिश्मी 'रेह त्योहार' १ फरवरी को मनाते हैं। इसमें शान्ति और उन्नति के लिए देवताओं की बाँस और बाँस की खपचियों से बनाये गये फूलों से बनायी गयी आकृतियों की पूजा करते हैं। पुजारी द्वारा होते मन्त्रोच्चार के साथ इदू अपने देवी-देवताओं के नाम पर जानवरों की बलि देते हैं, नृत्य-गीत होते हैं, त्योहार के समापन के समय पुजारी द्वारा किया जानेवाला 'आइ ईद्' नृत्य विशेष आकर्षक होता है। नृत्य में पुजारी अपनी विविध भंगिमाओं द्वारा अपने में जाग्रत दैवी-शक्ति से किसी व्यक्ति को हुए रोग का निदान कर

उसके उपचार की व्यवस्था करता है।

यहाँ 'स्टेविया' नामक वनस्पति होती है, जो शुगर फ्री होकर भी चीनी से तीन सौ गुना ज्यादा मीठी है। इसी प्रकार यहाँ के जटरोपा पौधे के तेल को डीजल का विकल्प बनाने की तैयारी पर काम चल रहा है।

'आदी' अरुणाचल की सबसे बड़ी और प्रभावी जनजाति है, संख्या और बल की दृष्टि से भी और राजनीतिक, सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से भी। इनका विश्वास है कि आबो तानी और 'छांधा ग्रीङ याइ' की सन्तान 'आतु निया' से समस्त मानव पैदा हुए हैं। आवो का अर्थ आकाश या पिता और छाङा का अर्थ धरती या माँ होता है। समस्त आदी, आपातानी, न्यिशी, हील मिरी, तागिन, मिशिंग और गालो जनजातियों में यही विश्वास चला आ रहा है कि ये लोग आबो तानी के वंशज हैं। आदी जनजाति में कुछ लोग लम्बे केश-रखते हैं, कुछ छोटे। इनके हथियार दाव (तलवार) और तीर-कमान हैं। आदी पुरुषों का पुरातन पहनावा 'ऊगन' (लँगोटी जैसा परिधान) और उसके ऊपर घरों में बुना, बिना बाँह का 'गालुक' (जैकट) है। सिर पर बेंत से बनी हुई टोपी पहनते हैं। कुछ लोग गले में मूँगे की माला भी पहनते हैं। स्त्रियाँ पेटीकोट के रूप में घुटनों तक लटकता काला अन्तर्वस्त्र लपेटती हैं। उसके ऊपर पिण्डलियों तक लटकते 'गाले' मेखला पहनती हैं। गले में चाँदी के सिक्कों के हार तथा तरह-तरह के मूँगों की मालाएँ भी शौक से पहनती हैं।

वांग्चू समाज के आराध्य देव | हापोली (जीरो) स्थित २५' ऊँचा स्वयंभू शिवलिंग | आदी समाज के पशुओं के देवता दादि बोते

आदी गाँवों में अविवाहित नवयुवकों के रात्रिवास के लिए एक 'मोसुप' होता है, जहाँ १२ वर्ष के ऊपर वाले लड़के सोते हैं, इसी प्रकार अविवाहित लड़कियों के रात्रिशयन के लिए गाँव से बाहर 'रासेंग' होते है। 'रासेंग' गाँव का गुप्त स्थान माना जाता है, जहाँ कोई भी अपरिचित नहीं जा सकता। इन स्थानों पर इन्हें ग्राम विकास की योजनाएँ तथा लड़कियों को कपड़ा बुनना तथा घर के काम-काज भी सिखाये जाते हैं। विवाह अभिभावक ही तय करते हैं। इनमें एक से अधिक शादियाँ भी होती हैं यानि कुछ के बहुपति भी होते हैं; किन्तु यह भाइयों तक ही सीमित है।

आदी जातियों में जब किसी के यहाँ विवाह प्रस्ताव भेजते

हैं, तो साथ में शिकार की हुई गिलहरी भी भेजते हैं। यदि उसे सामनेवाले पक्ष ने खा लिया, तो रिश्ता तय समझा जाता है और अगर इसे लौटा दिया जाता है, तो यह सम्बन्ध उसे स्वीकार नहीं माना जाता है।

अरुणाचल के 'बेंजीलीने थान' जो हिरिक और शिवा नदी के संगम पर यह पवित्र थान है, उस थान पर कई दिव्याण्ड है, जिनके बारे में विश्वास किया जाता है कि वे शिवलिंग की पिण्डियाँ हैं। इनकी विशेषता है कि उन दिव्याण्डों के दस मीटर के घेरे में नैसर्गिक या मानव आरोपित कोई वनस्पति अंकुरित नहीं होती। आश्चर्य की बात तो यह है कि समीपवर्त्ती घने वनों के पेड़ों से गिरनेवाले सूखे पत्ते तक इन दिव्याण्डों पर गिरकर उन्हें अच्छादित नहीं करते। 'बेंजी' शब्द ईश्वर के उस परम रूप को व्यक्त करता है, जो सम्पूर्ण सृष्टि का पालक है। इसलिए इसकी तुलना शिव से करते हैं। 'लिने' शब्द का अर्थ है 'पाषाण स्मृति' या 'पाषाण स्मारक'।

'मालिनीथान' में प्रतिष्ठित मूर्त्ति दुर्गा की है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर जब यहाँ आये, तब देवी पार्वती ने मालिन के रूप में दर्शन दिये और पुष्प मालाएँ देकर दोनों का गन्धर्व-विवाह करवाया, मालिनीथान का ऐतिहासिक वैभव है। हर वर्ष 'अकाल बोधन' दुर्गा पूजा होती है, जो आश्विन में होनेवाली शारदीय पूजा से अलग है। इसमें मिसींग आदि बोडो-कछारी, नेपाली, असमिया, बंगाली, मारवाड़ी सभी लोग आते हैं।

अरुणाचल की सुवनसिरी घाटी को सुवणशिरी डिविजन के नाम से जाना जाता था। यहाँ प्रवाहित मुख्य नदी सुवणशिरी सचमुच में स्वर्णश्री ही है। इसके पार्श्व से पुरातन काल में स्वर्ण निकाला जाता था। यहाँ पर 'तागिन' जाति के लोग ज्यादातर रहते हैं। इनके घर काफी लम्बे होते हैं। ये घर लकड़ी या बाँस की खपचियों के बने होते हैं। एक घर में कई परिवार रहते हैं। घर में केवल एक मुख्य दरवाजे के सिवाय खिड़कियाँ नहीं होतीं, इसलिए खाना बनाते वक्त घर धुएँ से भर जाता है।

सिम्फो युवती — न्यिशी युवती — गालो युवती

यहाँ के हिलमिरी लोग बिजली चमकने के बारे में बताते हैं कि 'चुंगुम-इरुम' और उसकी पत्नी 'चिंगुम एरुम' का आपस में अति प्रेम था। उन दोनों के मिलन से पृथ्वी का जन्म हुआ। समय के साथ-साथ दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे से विरक्त होते गये। दिन प्रतिदिन उनमें तकरार बढ़ने लगी। एक दिन पत्नी चिंगुम एरुम ने आपसी कलह से बचने का एक रास्ता निकाला। वह अपने अधोवस्त्र खोल अपने पति के सम्मुख खड़ी हो गयी। यह उसका देदीप्यमान रूप ही था, जो बिजली के रूप में चमकता है। इस लोककथा को हिलमिरी चसका लेकर सुनाते हैं और हँस–हँसकर

चीनी आक्रमण के विषय में बाबा नीमकरोरी

१९६२ में चीनी सेना जब आगे बढ़ती आ रही थी, उस समय कुछ लोगों ने प्रधानमन्त्री नेहरू को सलाह दी कि राजधानी को दिल्ली से हटा दिया जाये तथा ताजमहल को ढँकने के प्रयास किये जायें, जिससे शत्रु उस पर बमवर्षा न करे; क्योंकि चीनी बमवर्षक दिल्ली और आगरा तक पहुँच सकते थे। नेहरू ने घबड़ाकर एक विश्वस्त व्यक्ति को उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध सन्त बाबा नीमकरोरी के पास निर्देश माँगने को भेजा। कहते हैं कि बाबा नीमकरोरी ने मुस्कराकर कहा था कि कुछ नहीं होगा तथा चीनी सेना उसी रात वापस चली जायेगी। और ऐसा ही हुआ। □

लोट-पोट होते हैं।

'जीरो' में गोदने का रिवाज पुरुषों के बनिस्बत महिलाओं में अधिक था। महिलाएँ मस्तक से लेकर नाक के नथुनों तक चौड़ी पट्टी का गोदना और निचले ओठ से चिबुक तक गोदने की इतनी लकीरें खिचीं होती हैं कि इनकी सुन्दरता पर कुरूपता की परत चढ़ जाती है। आपातानी स्त्रियों के कान और नाक के बड़े छिद्रों में फँसायी गयी बाँस या लकड़ी की मोटी कीलें देखकर ऐसा लगता है जैसे बिजली का प्लग लगा दिया गया हो। कहावत है कि आपातानी लड़कियों की सुन्दरता के कारण कुछ शरारती लोग इन्हें भगा ले जाते थे। इसीलिए आपातानी समाज इनके चेहरों पर गोदना कराने और नाक-कान छिदाकर मोटी-मोटी कीलें पहनाने लगे; लेकिन आजकल की लड़कियाँ न गोदना कराती हैं और न ही ये बदसूरत कीलें ही पहनती हैं।

ग्राम पञ्चायत को 'बुलियाङ्' कहा जाता है। इसका चुनाव योग्यता, आर्थिक-स्थिति और व्यक्तित्व के आधार पर होता है। समाज में शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने का जिम्मा बुलियाङ् का होता है। गाँव में कोई संकट आने पर उसके समाधान के लिए बुलियाङ् की उपयोगिता होती है। आपातानी अपने पर्व त्योहारों पर बुलियाङ् का विशेष मान-सम्मान करते हैं। आपातानी जनजाति में विवाह बड़ी आसानी से हो जाता है। लड़का-लड़की यदि एक दूजे को चाहते हैं, तो विना किसी धूम-धड़ाके या जलसे के लड़की लड़के के घर चली जाती है, बाद में लड़का माँ-बाप से अलग अपना घर बसाता है।

कश्मीर में अमरनाथ गुफा की तरह प्रेम सुब्बा एक नेपाली लड़के ने हापोली के विशालतम शिवलिंग की खोज की। इसे यहाँ सिद्धेश्वर शिवलिंग के नाम से जाना जाता है। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित शिवपुराण की टीका के सम्वत्

२०५५ (१६७८) के सातवें संस्करण के पृष्ठ २५ पर 'विन्धेश्वरीसंहिता' अध्याय में १६८३ के संस्करण के सत्रहवें अध्याय और सन् २००५ के नये संस्करण के पाँचवें अध्याय में भविष्यवाणी लिखी हुई है कि विशाल शिवलिंग का प्रादुर्भाव होगा और उस स्थान को लिंगालय के नाम से और पूरे क्षेत्र को अरुणाचल के नाम से जाना जायेगा।

अतिथि-परायणता में मौम्पा जनजाति का कोई मुकाबला नहीं। मोन्याओं के मकान चट्टानों पर दोमञ्जिले और ढलुवा छतों वाले होते हैं। इनका पहनावा तिब्बतियों और भूटानियों जैसा होता है। मोन्या जाति अच्छी कारीगर है। इनकी स्त्रियाँ कपड़ों के साथ विभिन्न डिजाइन के ऊनी कम्बल बुनने में सिद्धहस्त हैं। ये भगवान् बुद्ध की तरह-तरह की मूर्त्तियाँ विभिन्न मुखाकृति के मुखौटे और लकड़ी के खिलौने बनाने के साथ इन्हें मिट्टी से भी बनाने में निष्णात हैं। इस जनजाति में मरणोपरान्त पहले-पहल शव को किसी निर्जन स्थान पर रख देते थे, ताकि जंगली जानवर, गिद्ध, चील आदि खा सकें; किन्तु इनका एक संस्कार अनोखा है– मृतक के शरीर के छोटे-छोटे एक सौ आठ टुकड़े कर मछलियों को खाने के लिए नदी में फेंक देना। इसमें मृत-शरीर के सिर को काटकर एक जगह रख दिया जाता है।

लोसर मोन्या जाति का प्रमुख त्योहार है तोंगा। यह दिरांग और थेमवांग के मोम्पाओं का विशेष त्योहार है। विवाह के अवसर पर लड़के वालों को लड़की के पिता को याक (चामर गाय) देना होता है।

अरुणाचल प्रदेश अपने आर्किड फूलों की विभिन्न प्रजातियों के लिए भी जाना जाता है। वेस्ट कामेंग जिले का इलाका तो जैसे आर्किड का मायका ही हो जाता है। यहाँ एशिया की सबसे बड़ी आर्किड पौधशाला है। आर्किड की प्रजातियों में 'सीता पुष्प' और 'द्रौपदी पुष्प' वहाँ पर विख्यात हैं। कहा जाता है कि सीता और द्रौपदी इन पुष्पों को आभूषणों की तरह पहनती थीं।

तवांग जिले के जिमीथांग क्षेत्र में 'गोरछाम' नामक एक बहुत बड़ा बौद्ध स्तूप है। कहा जाता है कि यह एशिया के सबसे ऊँचे स्तूपों में से एक है। पत्थरों से बने इस स्तूप को मिट्टी के गारे से जोड़ा गया है।

अरुणाचल कश्मीर की भाँति अपने अन्दर अद्वितीय सौन्दर्य समेटे हुए है। अरुणाचल के सौन्दर्य को जितना भी देखा जाये, उतना ही कम है। यहाँ की विभिन्न जनजातियाँ, वेष-भूषा और गहनों का आकर्षण बरसों तक आँखों में बसा रहेगा। संस्कृति के दर्पण में अरुणाचल भी कश्मीर का प्रतिबिम्ब है।

□

– एस.सी. इम्प्रेशन, ए–१०२, सेक्टर ४बी (मेवाड़ कालेज के पास), वसुन्धरा, गाजियाबाद– २०१०१२

(पृष्ठ ५१ का शेष) चीनी विस्तारवाद...

मैं भी भारतीय हूँ।" वस्तुतः धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और अनादिकाल से प्राकृतिक-भौगोलिक सम्बन्धों के कारण प्रत्येक तिब्बती भारतीय है।

प्रश्न यह है कि देशभक्ति और राष्ट्रीय हितों से आँखें बन्द किये रहनेवाली भारत सरकार क्या स्वाधीन तिब्बत का कोई लाभ उठा पायेगी ? नेपाल भी एक स्वतन्त्र राष्ट्र था; परन्तु आज नेपाल पर परोक्ष रूप से चीन शासन कर रहा है। देशभक्ति के अभाव में हम किसी भी प्रकार के वरदान का लाभ कदापि नहीं प्राप्त कर सकते हैं। विश्व के तीन राष्ट्रों के नागरिकों में देशभक्ति की अत्यधिक प्रखर भावना है, वे हैं– जापान, चीन और यहूदी अर्थात् इसरायल। चीन ने अपने नागरिकों की प्रखर देशभक्ति का लाभ उठाया है।

परन्तु भारत में आजादी के बाद से देशभक्ति को दबाया गया है, कुचला गया है। आज देशभक्ति की बात करनेवाले प्रत्येक भारतीय को 'हिन्दू साम्प्रदायिक' कहा जाता है। वोट बैंक के मद्देनजर अफजल और कसाब को जेल में पाँच सितारा सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं। जबकि हमारे देश की समस्त समस्याओं का एकमात्र समाधान प्रचण्ड राष्ट्रवाद है। प्रचण्ड राष्ट्रवाद ही वह रामबाण औषधि है, जो भारतवर्ष को पुनः यथाशक्ति विश्व, विश्व-गुरु और सोने की चिड़िया बना देगी। □

– लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

जाग मछन्दर गोरख आया

— डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

आज से ५० साल पहले तिब्बत के धर्म गुरु और राज्य अध्यक्ष दलाई लामा अपना देश छोड़कर भारत में आये थे, उनके साथ उनके लाखों अनुयायी भी तिब्बत को छोड़ आये। जिस समय दलाई लामा आये थे, उस समय उनकी आयु २४ वर्ष की थी। आज वे ७४ वर्ष के हो गये हैं और तिब्बती स्वतंत्रता संघर्ष की आधी शताब्दी पूरी हो चुकी है। निर्वासित तिब्बती सरकार कृतज्ञता से भारत का धन्यवाद कर रही है। इसके लिए भारतवर्ष में कृतज्ञता ज्ञापन कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है।

तिब्बत तो धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहा है; परन्तु भारत सरकार क्या कर रही है ? क्या उसने धर्म का रास्ता छोड़ दिया है ? आज जब तिब्बत भारत के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर रहा है, तो भारत सरकार को भी धर्म के रास्ते पर चल कर तिब्बत के पक्ष में खड़े होना चाहिए। तिब्बत के साथ खड़े होने में भारत का अपना स्वार्थ भी है; क्योंकि तिब्बत की स्वतन्त्रता से ही भारत की सुरक्षा जुड़ी हुई है।

दलाई लामा अपने भाषणों में भारत को गुरु और तिब्बत को चेला बताया करते हैं और उनका यह भी कहना है कि चेले पर जब संकट आता है तब वह गुरु की शरण में ही आता है। गुरु का कर्त्तव्य क्या है इसकी बहुत विस्तार से चर्चा तो दलाई लामा नहीं करते; क्योंकि शायद वे सोचते होंगे कि भारत जैसा प्राचीन देश गुरु के फर्ज को तो अच्छी तरह जानता ही होगा। बाकी जहाँ तक चेले के कर्त्तव्य का मामला है, उसे निर्वासित तिब्बती सरकार निभा ही रही है। दलाई लामा कृतज्ञता ज्ञापन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू और कर्नाटक के उस समय के मुख्यमन्त्री श्री निजलिंगप्पा का विशेष तौर पर स्मरण करते हैं। इस समय लाखों तिब्बती अपने परिवारों समेत भारत में आये थे उस समय नेहरू ने उनको बसाने और उनके बच्चों की शिक्षा के लिए बहुत प्रयास किये थे। निजलिंगप्पा ने भी कर्नाटक में तिब्बतियों की बस्तियाँ बसाने के लिए व्यक्तिगत प्रयास किये थे। यह भारत की तिब्बतियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण से की गयी सहायता थी। यह ठीक है कि तिब्बत को उस वक्त इसकी भी जरूरत थी; लेकिन उसे उस समय भी और आज भी सबसे ज्यादा जरूरत राजनैतिक और कूटनीतिक सहायता की है, जिस पर नेहरू से लेकर आज तक की सभी सरकारे मौन ही रहीं और अभी भी मौन ही हैं। दलाई लामा का यह दर्द कृतज्ञता ज्ञापन करते समय भी कहीं न कहीं फूट ही पड़ता है।

उनका कहना है कि बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर १९५६ में जब वे भारत आये थे, तब उन्होंने पण्डित नेहरू को तिब्बत की वास्तविक स्थिति और चीन के खतरनाक इरादों से अवगत करवा दिया था। तब तिब्बत के प्रमुख लोग यह चाहते थे कि दलाई लामा इसी समय भारत में शरण ले लें और भारत सरकार चीन के साथ तिब्बत का मसला उठाये; लेकिन पण्डित नेहरू उस समय भी दलाई लामा को ल्हासा में जाकर तिब्बती संघर्ष को जारी रखने की सलाह दे रहे थे। बकौल दलाई लामा एक दिन पण्डित नेहरू १७ सूत्रीय करार, जो चीन ने तिब्बत पर जबर्दस्ती थोपा था, की प्रति लेकर सर्कट हाउस में आये। उन्होंने उस करारनामे की कुछ धाराओं को विशेष रूप से रेखांकित किया हुआ था और वे मुझे समझाने लगे कि इन मुद्दों पर तिब्बत की सरकार कानूनी रूप से चीन सरकार से न्याय प्राप्ति के लिए संघर्ष कर सकती है। नेहरू शायद यह तो चाहते थे कि तिब्बत चीन के चुंगल में न जाये; परन्तु इसके लिए वह तिब्बत को अपने ही बलबूते पर चीन से लड़ने की सलाह दे रहे थे और वे आशा करते थे कि तिब्बत ऐसा करे। तिब्बती सरकार तो चीन की विस्तारवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति से पूरी तरह वाकिफ थी; परन्तु नेहरू शायद जान कर भी अनजान बन रहे थे। बकौल दलाई लामा ही उसी प्रवास के दौरान बंगलौर में निजलिंगप्पा ने उनके कान में कहा कि आप आजादी की लड़ाई लड़ो, हम आपके साथ हैं। इसी प्रवास में जय प्रकाश नारायण ने दलाई लामा को आश्वस्त किया कि संकट की घड़ी में हम आपके पीछे खड़े होंगे। दलाई लामा जब प्रवास पूरा करके जाने लगे, तो सिक्किम में भारत सरकार के उस समय के पोलिटीकल आफिसर ने पूरे जोश से कहा कि आप चिन्ता न करें, हम आपके सहायक हैं। दलाई लामा तो अमेरिका का समरण भी करते हैं। उनका कहना है कि अमेरिका के सन्देश भी आते रहे कि किसी भी संकट में अमेरिका तिब्बत के साथ खड़ा होगा। उसके बाद दलाई लामा और उनकी सरकार ने लगभग अकेले अपने बलबूते ही तीन चार साल तक चीन के साथ लोहा लिया। फिर दलाई लामा जोर से हँसते हैं। जब सचमुच १९५९, १० मार्च को तिब्बत के लोगों ने चीन

के खिलाफ विद्रोह कर दिया, तब हमारे साथ कोई खड़ा नहीं हुआ। चीन भी शायद जानता ही होगा कि ऐसे मौके पर तिब्बत के साथ कोई खड़ा नहीं होगा। दलाई लामा की इस हँसी के पीछे न जाने कितना दर्द छिपा हुआ है ! एक बौद्ध भिक्षु की दर्द से भरी हँसी भारत सरकार को एक ही झटके में बेनकाब कर देती है। दलाई लामा की दाद देनी होगी कि ५० सालों के इस सफर में वे दर्द भी पीते रहे और लडते भी रहे।

बहुत से लोग प्रायः कहा करते हैं कि तिब्बत की आजादी की लड़ाई तिब्बतियों को तिब्बत के भीतर रह कर ही लड़नी होगी। पिछले ६० सालों में १० लाख तिब्बती चीनी सेना द्वारा मारे जा चुके हैं। जो कौम आजादी की लड़ाई नहीं लड़ती, उसके १० लाख लोग मारे नहीं जाते। केवल 'दलाई लामा की जय' कहने पर चीन की जेलों में ५ से लेकर १० सालों तक नारकीय यातना भोगनी पड़ती है; और हजारों तिब्बती यह भोग रहे हैं। ६० सालों के चीनी प्रयत्नों के बावजूद मठों से जब चीवर धारण किये भिक्षु धम्म का जय घोष करते हुए निकलते हैं, तो उन्हें गोली खानी पड़ती है। आज तिब्बत के हर मठ में ऐसे भिक्षुओं की सूची मिल जायेगी जो धम्म के लिए बलिदान हो गये। तिब्बत की स्वतन्त्रता की लड़ाई वास्तव में धर्म और अधर्म की लड़ाई है। भारत अपने पूरे इतिहास में धर्म का ध्वजवाहक रहा है। वैसे भी तिब्बत और भारत की संस्कृति, इतिहास और आस्था एक समान है। उसके तीर्थ साँझे हैं और उसके प्रतीक सांझे हैं। तिब्बत की पराजय भारतीय संस्कृति की पराजय ही होगी। तिब्बत की पराजय धर्म की पराजय मानी जायेगी। यह अधर्म की जीत होगी। शास्त्रों में कहा गया है धर्म उसी की रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करते हैं। तिब्बत तो धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहा है। परन्तु भारत सरकार क्या कर रही है। क्या उसने धर्म का रास्ता छोड़ दिया है। आज जब तिब्बत भारत के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर रहा है, तो भारत सरकार को भी धर्म के रास्ते पर चलकर तिब्बत के पक्ष में खड़े होना चाहिए। तिब्बत के साथ खड़े होने में भारत का अपना स्वार्थ भी है; क्योंकि तिब्बत की स्वतन्त्रता से ही भारत की सुरक्षा जुड़ी हुई है; परन्तु भारत को तिब्बत का साथ इस लिए नहीं देना चाहिए कि इसमें उसका अपना स्वार्थ है। यदि ऐसा किया, तो यह अनैतिक हो जायेगा। भारत को तिब्बत का साथ इसलिए देना है कि यह धर्म का युद्ध है। २१ वीं शताब्दी के प्रवेशद्वार पर ही भारत को यह घोषित करना होगा कि भविष्य के लिए वह धर्म का रास्ता चुनता है या उन्हीं पश्चिमी शक्तियों का पिछलग्गू बनता है, जो राजनीति को धर्म नीति नहीं; बल्कि स्वार्थ नीति मानते हैं। विश्व इतिहास में भारत की पहचान इसी धर्म नीति के कारण रही है। उसे अपनी इस पहचान को पुनः स्थापित करना होगा। तिब्बत इसकी कसौटी है और तिब्बतियों द्वारा कृतज्ञता ज्ञापन सोये भारत को जगाने का एक और उपक्रम है। जाग मछन्दर गोरख आया।

भारत को लेकर चीन का मनोविज्ञान

भारत के प्रति चीन की दुर्भावना को लेकर एक और प्रश्न आम तौर पर पूछा जाता है। वह प्रश्न चीन के इतिहास और संस्कृति से ताल्लुक रखता है। आज से लगभग दो हजार साल पहले चीन में बुद्ध वचनों का प्रसार हुआ था। बुद्ध के बचनों और बुद्ध के प्रवचनों ने चीन की मानसिकता को बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। चीन में स्थान–स्थान पर भगवान् बुद्ध के विशाल मन्दिर बने हुए हैं। बुद्ध मत से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है। नालन्दा विश्वविद्यालय में, जो अपने वक्त में बौद्ध दर्शन का विश्व विख्यात केन्द्र था, चीन से पढने के लिए अनेक छात्र और विद्वान् आते थे। विख्यात चीनी दार्शनिक ह्वेनसाङ् इसी ध्येय की पूर्ति के लिए अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए भारत आया था। भारत और चीन के बीच दर्शन शास्त्र के विद्वानों का आना–जाना लगा रहता था। चीन के लोग भारत को पावन–स्थल मानते थे और उनके जीवन की एक आकांक्षा बौद्ध गया और सारनाथ के दर्शन करने की भी रहती थी। साधारण चीनी के मन में भारत का स्वरूप एक तीर्थ स्थान का स्वरूप बनता था। अतः चीनियों के मन में भारत के प्रति दुर्भावना हो, ऐसा सम्भव नहीं लगता। यह

परम्परा प्राचीन इतिहास पर ही आधारित नहीं है; बल्कि इसको अद्यतन इतिहास तक में देखा जा सकता है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने जब शान्ति निकेतन की स्थापना की, तो उसमें अध्ययन के लिए चीनी विभाग भी स्थापित किया और चीन से विद्वानों को निमन्त्रित किया। यहाँ तक कि माओ ने जब चीन में गृहयुद्ध शुरू किया, तो उस गृह युद्ध में दुःख भोग रहे चीनियों की सहायता के लिए महाराष्ट्र के एक डॉक्टर श्री कोटनिस ने अपना पूरा जीवन ही उनकी सेवा में समर्पित कर दिया। वे भारत से चीन चले गये और गृह युद्ध में घायल चीनियों की सेवा–सुश्रुषा करते रहे। वहीं उन्होंने एक चीनी लड़की से शादी की और सेवा करते–करते उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। चीन के लोग आज भी डा. कोटनिस का स्मरण करते हुए नतमस्तक हो जाते हैं। तब यह प्रश्न पैदा होता है कि इस परम्परा की पृष्ठभूमि में चीन भारत का विरोधी कैसे हो गया। इतना विरोधी कि उसने १९६२ में भारत पर आक्रमण ही कर दिया और आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी उसने अपने भारत विरोध को छोड़ा नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर खोजने से पहले एक और प्रश्न का सामना करना पड़ेगा। वह प्रश्न है कि **क्या आज का चीनी शासकतन्त्र सचमुच चीन के लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहा है ? चीन में जो साम्यवादी पार्टी सत्ता पर कुण्डली मारकर बैठी है, उसने यह सत्ता बन्दूक के बल पर हथियायी है, न कि लोकमानस का प्रतिनिधि बनकर। साम्यवादी दल को सत्ता सँभाले हुए आज ६० साल से भी ज्यादा हो गये हैं; लेकिन उन्होंने कभी भी लोकमानस को जानने का प्रयास नहीं किया और न ही कभी लोगों की इच्छाओं के अनुरूप चुनाव होने दिये। इसके विपरीत लोक इच्छा को दबाने के लिए शासक साम्यवादी दल ने थ्यानमेन चौक पर अपने ही लोगों पर टैंक चढ़ा कर उन्हें मार दिया। साम्यवादी दल, दरअसल चीनी की पुरानी परम्परा और सांस्कृतिक विरासत को समाप्त करने का प्रयास कर रहा है इसलिए उसने चीन में महात्मा बुद्ध के प्रभाव को विदेशी प्रभाव घोषित कर दिया है। साम्यवाद मूलतः भौतिकवादी दर्शन है। वह मनुष्य को बाकी सभी स्थानों से तोड़कर केवल भौतिक प्राणी के नाते विकसित करना चाहता है। चीन में कम्युनिस्ट पार्टी यही प्रयोग कर रही है। इस प्रयोग के लिए यह जरूरी है कि चीन को उसकी विरासत, इतिहास और संस्कृति से तोड़ा जाए। इसलिए, आधिकारिक चीनी प्रकाशनों में भगवान बुद्ध को कायर और पलायनवादी तक बताया गया है। एक चीनी अधिकारी ने तो यहाँ तक कहा कि बुद्ध के माध्यम से भारत ने चीन पर बिना कोई सैनिक भेजे दो हजार साल तक राज्य किया। इन प्रश्नों को लेकर चीन के भीतर भी घमासान मचा हुआ है।** चीनी साम्यवादी शासकदल लोगों का इन प्रश्नों पर एक प्रकार से मानसिक दमन कर रहा है और उन्हें पशुबल से चुप रहने के लिए विवश किया जा रहा है। रुस ने लगभग एक शताब्दी तक यह प्रयोग मध्य एशिया के अनेक देशों में किया था; लेकिन वह इसमें सफल नहीं हो पाया। चीन के लिए महात्मा बुद्ध के प्रभाव को समाप्त करने के लिए जरूरी था कि बुद्ध वचनों के उदगम–स्थल भारत को भी शत्रु की श्रेणी में रखा जाये। चीनी साम्यवादी शासक दल के भारत–विरोध का यह एक मुख्य कारण हो सकता है। चीन के लोग कहाँ खडे हैं और चीन की साम्यवादी शासक पार्टी कहाँ खड़ी है, इसका पता तो तभी चलेगा जब भविष्य में कभी चीन में लोगों द्वारा चुनी गयी सरकार स्थापित होगी। तब भारत और चीन के रिश्तों की नये सिरे से व्याख्या होगी; लेकिन यह सब भविष्य की बातें हैं। फिलहाल तो चीन हिमालय पर घात लगाकर बैठा है।

तिब्बत की लड़ाई का अगला पड़ाव

राजनीतिक कार्यो से संन्यास लेने की दलाई लामा की घोषणा तिब्बत के लिए ऐतिहासिक महत्त्व की है। १९५९ में इसी दिन ल्हासा में हजारों तिब्बतियों ने चीन की सत्ता के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। हजारों तिब्बती बलिदान हो गये थे। तिब्बती स्वतन्त्रता का आन्दोलन उसी दिन से किसी न किसी रूप में आज तक चल रहा है। **चीन तिब्बत को लेकर चैन से बैठने की स्थिति में नहीं है। तिब्बत के भीतर वहाँ का जनसाधारण विद्रोह करता रहता है और तिब्बत के बाहर निर्वासित तिब्बती इस मुद्दे को मरने नहीं देते। ऐसा माना जाता है कि इस आन्दोलन की बहुत बड़ी ऊर्जा दलाई लामा से प्राप्त होती है। दलाई लामा ने तिब्बत के प्रश्न को विश्व मञ्च से कभी ओझल नहीं होने दिया, इसलिए चीन के शब्द–भाण्डार में ज्यादा गालियाँ दलाई लामा के लिए ही सुरक्षित रहती हैं। दरअसल, दलाई लामा साधारण शब्दों में तिब्बत के धर्मगुरु और शासक हैं। इतने से ही तिब्बत को समझा जा सकता। यही कारण था कि १९५९ में जब चीन की सेना ने ल्हासा पर पूरी तरह कब्जा कर लिया, तब माओ ने चीनी सेना से पूछा था कि दलाई लामा कहाँ है ? सेना के यह बताने पर कि वह पकड़े नहीं जा सके और भारत चले गये हैं, तो माओ ने कहा था कि हम जीतकर भी हार गये हैं।**

अब उन्हीं दलाई लामा ने तिब्बत की राजनीति से संन्यास लेने का निर्णय किया है। वैसे चीन ने तो दलाई लामा की इस घोषणा को सिरे से खारिज करते हुए इसे उनकी एक और चाल बताया है; परन्तु तिब्बती जानते हैं कि यह उनके धर्मगुरु की चाल नहीं है, बल्कि उनका सोचा–समझा निर्णय है। इसी कारण निर्वासित तिब्बती सरकार और आम तिब्बती में एक भावुक व्याकुलता साफ देखी जा सकती है।

दलाई लामा की उम्र ७६ साल हो चुकी है। जाहिर है कि वह भविष्य के बारे में सोचेंगे ही। यदि तिब्बती स्वतन्त्रता का आन्दोलन उन्हीं के इर्द–गिर्द सिमटा रहा, तो उनके

जाने के बाद उसका क्या होगा ? दलाई लामा ने इसी को ध्यान में रखते हुए कुछ दशक पूर्व निर्वासित तिब्बत सरकार का लोकतन्त्रीकरण कर दिया था। निर्वासित तिब्बती संसद् के लिए बाकायदा चुनाव होते हैं। प्रधानमन्त्री चुना जाता है। मन्त्रिमण्डल का गठन होता है और निर्वासित तिब्बत सरकार लोकतान्त्रिक ढंग से कार्य करती है। जो लोग इस संसद् की बहसों का लेखा–जोखा रखते रहे हैं, वे जानते हैं कि संसद में अक्सर तीव्र असहमति का स्वर भी सुनायी देता है। यहाँ तक कि दलाई लामा के मध्यम मार्ग और स्वतन्त्रता के प्रश्न पर भी गरमागरम बहस होती है। निर्वासित तिब्बत सरकार के संविधान में दलाई लामा को भी कुछ अधिकार दिये गये हैं, लेकिन वह धीरे–धीरे उन्हें छोड़ते जा रहे हैं। संसद् में कुछ सदस्य मनोनीत करने का उनके पास अधिकार था, लेकिन उन्होंने इसे स्वेच्छा से त्याग दिया। जाहिर है, **दलाई लामा अपनी गैरहाजिरी में तिब्बत के लोकतान्त्रिक नेतृत्व को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। दलाई लामा जानते हैं कि उनकी मृत्यु के उपरान्त चीन सरकार अपनी इच्छा से किसी को भी उनका अवतार घोषित कर सकती है और फिर उससे मनमर्जी की घोषणाएँ करवा सकती है। इस आशंका को ध्यान में रखते हुए ही दलाई लामा ने दो कदम उठाए हैं। पहला, यह घोषणा कि वह चीन के कब्जे में गए तिब्बत में पुनर्जन्म नहीं लेंगे। दूसरा, उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में दलाई लामा के अधिकारों को ही समाप्त कर दिया है। भविष्य में चीन यदि किसी अपनी मनमर्जी के दलाई लामा से राजनैतिक घोषणाएँ भी करवायेगा, तो तिब्बतियों की दृष्टि में उनकी कोई कीमत नहीं होगी।**

दलाई लामा के इस कदम से उनके जीवनकाल में तिब्बतियों का ऐसा नेतृत्व उभर सकता है, जो अपने बल–बूते इस आन्दोलन को आगे बढ़ा सके। दलाई लामा शुरू से ही यह मानते हैं कि लोकतान्त्रिक प्रणाली से ही जन–नेतृत्व उभरता है। वह कहते रहते हैं कि भारत अपनी समस्याओं से इसलिए जूझने में सक्षम है, क्योंकि यहाँ शासन की लोकतान्त्रिक प्रणाली है, वे इसे भारत की आन्तरिक शक्ति बताते हैं। दलाई लामा तिब्बती शासन व्यवस्था में इसी शक्ति को स्थापित करना चाहते हैं, ताकि तिब्बती पहचान का आन्दोलन कभी मन्द न पड़े। फिलहाल चाहे दलाई लामा अपने राजनैतिक उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायेंगे; लेकिन उनका नैतिक मार्गदर्शन तिब्ब्ती समुदाय को मिलता ही रहेगा। उनका यही नैतिक मार्ग दर्शन तिब्बत में नये नेतृत्व की शक्ति बनेगा और उसे विभिन्न मुद्दों पर एकमत न होते हुए भी व्यापक प्रश्नों पर साथ चलने की शक्ति प्रदान करेगा। दलाई लामा ने कहा है कि वे धर्मगुरु के नाते ही अपने दायित्वों का निर्वाह करेंगे। तिब्बत की पहचान का प्रश्न भी मूलतः धर्म से ही जुड़ा है। उनके इस कदम से धीरे–धीरे तिब्बतियों का आत्मविश्वास बढ़ेगा और अपने बल–बूते लड़ने की क्षमता भी।

वह जानते हैं कि उनकी मृत्यु के उपरान्त नये दलाई लामा के वयस्क होने तक जो शून्य उत्पन्न होगा, उससे तिब्बती निराश हो सकते हैं और भटक भी सकते हैं। शायद इसीलिए करमापा लामा से उनकी आशा है कि वे इस शून्यकाल में तिब्बतियों का मार्गदर्शन करेंगे। यही कारण रहा होगा कि करमापा लामा को लेकर उठे विवाद में दलाई लामा ने अपना विश्वास स्पष्ट रूप से करमापा में जताया।

कुछ विद्वानों ने हवा में तीर मारने शुरू कर दिये हैं कि दलाई लामा की घोषणा से भारत और चीन के सम्बन्ध सुधरने का रास्ता साफ हो जायेगा। यह विश्लेषण इस अवधारणा पर आधारित है कि भारत और चीन के रिश्तों की खटास का कारण दलाई लामा हैं; पर चीन भारत से इसलिए खफा नही हैं कि यहाँ दलाई लामा रहते हैं। चीन के खफा होने का कारण यह है कि भारत चीन को अरुणाचल और लद्दाख क्यों नहीं सौंप रहा ? चीन भारत के बहुत बड़े भू–भाग को अपना मानता है और वह चाहता है कि भारत उसके इस दावे को स्वीकार करे। दलाई लामा के भारत में रहने या न रहने से चीन के इस दावे पर कोई असर नहीं पड़ता। □

– डॉ. भीमराव शोधपीठ, हिमाचल विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

तिब्बत क्यों ताइवान जैसा मुक्त न बन पाया

— के. विक्रम राव (वरिष्ठ पत्रकार)

कभी कम्युनिस्ट चीन के सम्राट् माओ जेडोंग ने आलंकारिक भाषा में कहा था कि चीन की कटी हथेली तो जुड़ गयी, बस पश्चिमी साम्राज्यवादियों द्वारा अलग की गयी पाँच अँगुलियाँ जुड़नी बाकी हैं। बात पैंसठ वर्ष पुरानी है। बौद्ध तिब्बत को लाल चीन ने कब्जिया लिया था। अँगूठा (नेपाल), तर्जनी (भूटान), मध्यमा (सिक्किम) और बाकी दोनों अँगलियाँ लद्दाख तथा अरुणाचल हैं। गौर करें कि भारतीय शासकों ने साढ़े छह दशकों में इस हिमालयी खतरे का मुकाबला करने का कैसा प्रयास किया ?

आज फिर भारत तन्द्रा में है। तब भी उसकी ऐसी ही ऊँघ के अञ्जाम में चीन ने तिब्बत को लील लिया था। एशिया का इतिहास अपने को दुहरा सकता है। चीन के कम्युनिस्ट, स्वाधीन ताइवान को अगला निशाना बना रहे हैं। पड़ोस की इस विपदा पर भारत सजग न हुआ, तो सिक्किम और अरुणाचल का भारतीय राष्ट्र में बना रहना, भूटान की अस्मिता और नेपाल का स्वतन्त्र राष्ट्र का रूप खतरे में पड़ेगा; पर क्लेश होता है जब दुनिया का दरोगा बना अमरीका अपना बेशी माल खपाने और ज्यादा लाभ कमाने के लोभ में विस्तारवादी चीन के साथ व्यापारी यारी की वेदी पर अपने पुराने और विश्वासी मित्र ताइवान को चढ़ाता है। मार्क्सवादी लहजे में इसे अमरीकी साम्राज्यवाद और चीनी नव उपनिवेशवाद की दुरभिसन्धि कहा जायेगा।

माओत्से तुङ्   च्याङ् काई शेक

देखें, अब हिमालय की ओर चीन ने लद्दाख की भूमि हथिया कर सैनिक-मार्ग बना लिया। आज भी हजारों वर्ग मील पूर्वोत्तर भू-भाग पर चीन का कब्जा है। विदेशी बाजार में चाय, जूट और चावल उत्पाद लागत से कम दामों में बेच कर चीन भारत के लिए संकट उपजा रहा है। **माओवादी चीन अब कम्युनिस्ट अर्थनीति को तज कर मुक्त बाजार की पूँजीवादी नीति को अपना रहा है। तो भारत कब तक बाध्य रहेगा उन घिसीपिटी मान्यताओं से, जिनका आज कोई अर्थ नहीं है। हाँ; नेहरूवादी विदेश नीति से चिपके अटल बिहारी वाजपेयी चीन को दोस्त बनाने में जुटे रहे थे। एक मौका भारत को मिला था, जब दलाईलामा ताइवान गये थे, तो उन्हें राष्ट्राध्यक्ष के समकक्ष सम्मान मिला था। तभी दुनिया के लोकतान्त्रिक राष्ट्रों को तिब्बत और ताइवान की स्वाधीनता के लिए ज्यादा सक्रिय होना चाहिए था, मानवता का तकाजा रहा है।**

इतिहास गवाह है कि १९४९ में चीनी कब्जे के पूर्व तिब्बत एक सार्वभौम राष्ट्र था। ग्यांत्से और यातुंग शहरों में १९४९ तक भारतीय व्यापारी एजेण्ट कार्यरत थे। नयी दिल्ली में १९४७ में सम्पन्न एशियन रिलेशन्स सम्मेलन में एक सार्वभौम राष्ट्र के रूप में तिब्बत शरीक हुआ था। भारतीय तीर्थयात्री तब मानसरोवर जाने हेतु चीन से वीजा नहीं लेते थे। क्या विडम्बना थी कि स्वेच्छा से महाराजा हरि सिंह द्वारा भारत के विलय स्वीकारने के बावजूद जवाहरलाल नेहरू ने कश्मीर में आत्मनिर्णय का सुझाव रखा था, मगर तिब्बत पर चीन के कब्जे के बाद नेहरू ने उससे बौद्ध जनता के आत्मनिर्णय की बात तक नहीं की। इस खामोशी से उत्साहित होकर माओं ने तिब्बत को चीन का पञ्जा बताया। **सातवीं शताब्दी में दक्षिणी चीन का भूभाग तिब्बत के राजा के साम्राज्य का अंग था। तब बीजिंग के ताङ् सम्राट् ने अपनी बेटी को तिब्बत के राजा को भेंटकर युद्ध को टाला था। अपने को बचाया था। जब १९१३ में शिमला में भारत और चीन के बीच सीमावार्त्ता हुई थी, तो तिब्बत एक स्वाधीन राष्ट्र के रोल में शामिल हुआ था। तीनों राष्ट्र समान थे। जनरल च्यांग काई शेक के राष्ट्रपति काल में भी तिब्बत १९४९ तक अपने राजदूत को बीजिंग में रखता था। राजधानी ल्हासा में भारतीय वाणिज्य दूतावास था।**

भारतीय बौद्ध, जिनमें राहुल सांकृत्यायन भी थे, ने तिब्बत को स्वतन्त्र देश के रूप में देखा था। बौद्ध धर्म का यह महान् केन्द्रस्थल और उसके साठ लाख तिब्बतियों का आज कैसा हश्र है ? चीन के अतिक्रमण के बाद पिछले छह दशकों में पन्द्रह लाख स्वाधीनता सेनानी लाल सेना की गोली खाकर बलिदान हो गये। बौद्ध धर्म को नष्ट कर नास्तिकता फैलानेवाली लाल सेना के अभियान का वे विरोध कर रहे थे। **धर्मगुरु दलाईलामा का ऐतिहासिक पोटाला महल आज छावनी में तब्दील हो गया है। सामने का बारखोर चौक परेड मैदान बन गया है। कभी वहाँ बुद्धम**

शरणम् गच्छामि की गूँज होती थी। तिब्बत के घने आच्छादित जंगल अब नंगे हो रहे हैं; क्योंकि पेड़ काटकर चीन के शहरों में सजावट के लिये प्रयुक्त हो रहे हैं। अपने परमाणु शस्त्रों का कूड़ाघर चीन ने तिब्बत को बना डाला है। आशंका है कि विश्व की यह छत कहीं मरूस्थली न बन जाये। सीमावर्त्ती भारतीय राज्यों में भयावह प्रदूषण की समस्या उठ रही है।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी

ल्हासा के विकास की गाथा रचनेवाले कम्युनिस्ट चीन का दावा है कि सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति कर उसने एक आधुनिक समाज का निर्माण किया है; हालाँकि विश्व का पुरातनतम पेशा राजधानी ल्हासा में उभरकर आया है, आज वहाँ वेश्यालय पञ्जीकृत है। समाजवाद का यह भिन्न मील पत्थर है। चूँकि बौद्ध अहिंसक हैं, अतः तिब्बत में दमन व्यापक हुआ। पड़ोस के मुस्लिम-बहुल शिनाजियांग प्रदेश में लाल सेना और इस्लामी मुल्लाओं में गृह-युद्ध का मञ्जर दिखता है। यहाँ कम्युनिस्ट शासन ने आधुनिक जीवन-पद्धति के नाम पर मुसलमानों की आहार पद्धति परिमार्जित करने का प्रयास किया था।

इसीलिए पैंसठ वर्षों की तानाशाही के बावजूद मध्येशियाई सोवियत गणराज्यों में इस्लाम को खत्म नहीं किया जा सका। इसी बौद्धिक स्वतन्त्रता के जीवन्त प्रतीक धर्मगुरु दलाई लामा ने अपने धर्मिक अनुयायियों और तिब्बत की जनता के हित में चीन की सरकार से समझौते की पेशकश की है। उन्होंने सुझाया कि वे तिब्बत को चीन का अंग मानने पर सहमत हैं, मगर चीन को धार्मिक स्वतन्त्रता की गारण्टी और प्रादेशिक स्वायत्ता का सम्मान करना होगा। बजाय इन तर्कसंगत माँगों को मानने के चीन के शासकों ने दलाई लामा के विरुद्ध विषाक्त चरित्र हनन का अभियान शुरू कर दिया। बीजिंग से प्रकाशित दैनिक 'तिब्बत डेली' ने (२३ नवम्बर १६६८ को) समाचार छापा कि जापान के हत्यारे धर्म प्रचारक शौकों आशाहारा का दलाई लामा से नाता है। इस आशाहारा के चेलों ने टोक्यों के भूमिगत रेल स्टेशन में जहरीली गैस से चार वर्ष पूर्व कई यात्रियों की हत्या की थी। दलाई लामा ने हमेशा कहा कि सच्चा बौद्ध प्राण लेता नहीं, बचाता है।

तिब्बती मुक्ति संघर्ष तो दीगर बात है। इन कांग्रेसियों (भाजपाइयों ने भी) बुद्धावतार दलाई लामा की उपेक्षा में कसर नहीं छोड़ी। **हिमाचल की कांग्रेसी सरकार ने धर्मशाला नगर में भारत-पाक क्रिकेट मैच (फरवरी २००५) का दलाई लामा द्वारा उद्घाटन तय किया था। फिर चीन के मित्र पाकिस्तान का भारत से आग्रह था कि मैच रद्द कर दे। मनमोहन सिंह सरकार ने अपने मंत्रियों और**

क्या आप जानते हैं ?

- १९४९–५० में तिब्बत पर चीन के हमले और १९५१ में पूरे कब्जे से पहले तिब्बत पूरी तरह एक स्वतन्त्र देश था और भारत और चीन के बीच सुरक्षा क्षेत्र जैसा था। इससे पहले इतिहास में कभी भी, किसी भी स्थान पर भारत और चीन की सीमा साझी नहीं थी।
- तिब्बत पर कब्जा जमाने के बाद चीन ने तिब्बत को अपनी छावनी की तरह इस्तेमाल किया और १९६२ में भारत पर हमला करके भारत की हजारों वर्गमील भूमि को हड़प लिया।
- आज भारत सरकार को हिमालय की सीमा पर चीनी सेना से भारत की रक्षा के लिए और शान्ति बनाये रखने के लिए पाँच साल में जितना पैसा खर्च करना पड़ता है, उतने पैसे में भारत के ऐसे हर उस नागरिक को पीने का साफ पानी, अच्छा अस्पताल और अच्छी शिक्षा हमेशा के लिए उपलब्ध करायी जा सकती है, जिन्हें यह सब आज तक नसीब नहीं हुआ।
- आज चीन ने तिब्बत में भारत के खिलाफ परमाणु प्रक्षेपास्त्र तैनात किये हुए हैं।
- तिब्बत के कई इलाकों को चीन अपने परमाणु कचरे के कूड़ेदान की तरह इस्तेमाल करके भारत की पवित्र नदियों को दूषित कर रहा है।
- चीन सरकार भारत में आतंकवाद को बढ़ाने के लिए तिब्बत के रास्ते आतंकवादियों को हथियार और प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध करा रही है।
- तिब्बत पर चीन के कब्जे से चीन और पाकिस्तान की सीमाएँ मिल गयी हैं। इससे दोनों देशों को भारत के खिलाफ सीधे सैनिक गठजोड़ की सुविधा मिल गयी है। चीन ने पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध उपयोग के लिए परमाणु बम और मिसाइल टेक्नोलॉजी उपलब्ध करायी है।
- चीन सरकार तिब्बत के जंगलों से ७० अरब डालर यानी २८० हजार करोड़ रुपये से ज्यादा की लकड़ी काटकर विदेशी और देशी बाजारों में बेच चुकी है। इस कारण तिब्बती नदियाँ भारत, नेपाल और बांग्लादेश में हर साल की बाढ़ से भीषण तबाही मचा रही हैं।
- तिब्बत में चीन के नये रेलमार्ग के आने से अब चीन भारत की सीमा तक बड़े से बड़े हथियार और भारी संख्या में सैनिक किसी भी समय तैनात करने में सक्षम हो गया है। इससे भारत की पूरी उत्तरी सीमा के लिए एक और गम्भीर खतरा पैदा हो गया है।
- चीन सरकार तिब्बत के रास्ते भारत में लागत से भी कम दाम पर सस्ते उपभोक्ता माल की तस्करी करके भारतीय उद्योगों, भारतीय व्यापारियों और भारतीय अर्थव्यवस्था को बरबाद करने के षड्यन्त्र में जुटी हुई है।

यह सब केवल तिब्बत पर चीनी कब्जे के कारण ही सम्भव हो पाया। अतएव भारत की सुरक्षा के लिए तिब्बत की स्वतन्त्रता अपरिहार्य है। □

अधिकारियों पर दलाईलामा के समारोहों पर भाग लेने पर पाबन्दी लगा दी, (कैबिनेट सचिव के. एम. चन्द्रशेखर का २ नवम्बर, २००७ का निर्देश)। तब भाजपा विपक्ष ने सवाल किया कि क्या मार्क्सवादी पार्टी के दबाव में संयुक्त प्रगतिशील सरकार ने ऐसा फतवा दिया ? शायद भाजपा तब भूल गयी थी कि डाक्टर मुरली मनोहर जोशी, जो वाजपेयी–नीत राजग काबीना के शिक्षा मन्त्री थे, दलाई लामा की सभा में मुख्य अतिथि बनने की स्वीकृति देने के बाद भी (२१ जनवरी, २००४) अनुपस्थित रहे; क्योंकि प्रधानमन्त्री के विशेष सचिव ब्रजेश मिश्र तब चीन से वार्त्ता में मशगूल थे। उस वक्त भी रक्षा मन्त्री जार्ज फर्नाण्डीज और मुख्यमन्त्री मुलायम सिंह यादव जरूर सक्रिय थे; क्योंकि उनके प्रणेता डॉ. राममनोहर लोहिया आजीवन स्वतन्त्र तिब्बत और हिमालय बचाव वाले संघर्ष में जुटे रहे थे; लेकिन लोहिया हर युग में नहीं जन्मते। लोहिया होते, तो बीजिंग में होनेवाले ओलम्पिक खेलों का बहिष्कार करने का संघर्ष स्वयं चलाते; क्योंकि ओलम्पिक की भावना सदियों से मानवी एकता का प्रतीक रही है। लालचीन ने उस प्रतीक को निरीह जन के खून से लाल पोत डाला है।
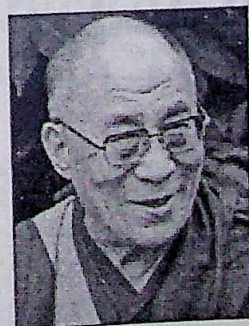
दलाई लामा

भारत भले ही चीन की मैत्री को नये सिरे से तलाशने की कोशिश करे, एक बुनियादी पहलू को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। आज भी चीन भारत के भूभाग पर कब्जा जमाये है। कारगिल के उस पार गुलाम कश्मीर में पाकिस्तान से साँठगाँठ कर चीन ने काराकोरम मार्ग निर्मित किया है, जिससे लद्दाख से नेपाल तक चीन की सेना की, आक्रामक शक्ति बढ़ गयी है। सियाचिन यहाँ से सटा है। उन्हें यकीन है कि भारत में एक वर्ग चीन को चाहता है, नक्सलवादी नेता चारू मजूमदार का नारा था कि चीन के चेयरमैन (माओ) भारत के भी चेयरमैन हैं; हालाँकि आज अमरीका परस्त लाल चीन ने अपने जन्मदाता चेयरमैन माओ को बिसरा दिया है। प्रसंगहीन बना डाला है। भारत को सावधानी बरतनी होगी; क्योंकि चीन के रूप अलग है। अतः उसके दिखावे में न आये। जवाहर लाल नेहरू 'हिन्दी–चीनी, भाई–भाई' के दिखावे में आ गये थे। परिणाम सामने है। भारत को मानना और बतलाना होगा कि हांगकांग तथा ताइवान से तिब्बत भिन्न है। उन दोनों द्वीपों पर हान जाति की नस्ल वाले रहते हैं, जो चीन से

अलग नहीं है। तिब्बती बिल्कुल उतने ही भिन्न हैं, जितने बर्मी, मलयेशियाई और नेपाली। **स्वाधीन तिब्बत ही भारत की पूर्वोत्तर सीमाओं की सुरक्षा की गारण्टी हो सकता है। भारत और चीन में सीमा है ही नहीं। तिब्बत पर कब्जे से यह कृत्रिम अन्तरराष्ट्रीय सीमा बनी है;** अगर आज इतिहास कश्मीर और तिब्बत की समस्या का रचयिता नेहरू को बताता है तो क्या भारतीय जनता पार्टी की सरकार फिर बन जाने पर उसी आतंक और आशंका को पनपायेगी या अपनी चिरसञ्चित राष्ट्रधर्मिता को सँजोयेगी ? जवाब उसकी नयी तिब्बत–नीति से मिलेगा। □

– ७, गुलिस्ताँ कालोनी, बन्दिरयाबाग, लखनऊ– २२६००१ (उ.प्र.)

मेघालय यानी मेघों का घर

दोस्तो, क्या तुम्हें पता है कि बारिश और हरदम मँडराते मेघों के कारण हमारे देश के एक राज्य का नाम ही रख दिया गया है-- मेघालय, यानी बादलों का घर। मेघालय की जलवायु उपोष्ण (उष्ण और शीत के मध्य) तथा आर्द्र है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा २५०० से १२,००० मिमी. तक दर्ज की जाती है, जिसके कारण इसे भारत का सबसे 'गीला' राज्य कहा जाता है।

चेरापूँजी : बारिश की राजधानी

बारिश की राजधानी के रूप में पूरी दुनिया में मशहूर चेरापूँजी अपने ही देश के पूर्वोत्तर राज्य मेघालय में राजधानी शिलांग से ६० कि.मी. की दूरी पर स्थित है। समूचे उत्तर भारत में जहाँ साल में औसतन ६०० मिमी. बारिश पर्याप्त मानी जाती है, वहीं चेरापूँजी में साल में १२,००० मि.मी. औसत बारिश दर्ज की जाती है, यानी हमारी पूरी मानसूनी बरसात से बीस गुनी ज्यादा। यह जानकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ेगी कि वर्ष १६७४ में एक साल के भीतर चेरापूँजी में सबसे अधिक २४,५५५ मि.मी. बारिश दर्ज की गयी थी, जो एक विश्वरिकार्ड है। इतना ही नहीं, करीब डेढ़ सौ साल पहले १८६१ में भी यहाँ एक महीने में २२,६८० मि.मी. बारिश दर्ज की गयी थी और यह भी एक रिकार्ड है। वर्षा, बादलों और अपने प्राकृतिक दृश्यों के कारण देश-विदेश के सैलानी यहाँ आते हैं। इसके पास ही एक गाँव मायसिनराम भी है, जहाँ चेरापूँजी से पहले सबसे ज्यादा सालाना बारिश रिकार्ड की जाती है। पिछले कुछ वर्षों से इन दोनों स्थानों पर बारिश में १५ से २० प्रतिशत की कमी आयी है। इसके लिए ग्लोबल वार्मिंग को जिम्मेदार माना जा रहा है। □
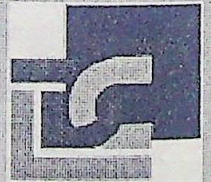
दो महत्त्वपूर्ण पत्र इन्द्रेश जी के

(तिब्बत के प्रश्न पर और भारत चीन के सम्बन्धों पर अनेक प्रमुख व्यक्तियों के भारत सरकार को लिखे गये पत्र उपलब्ध होते हैं। इनमें से सरदार पटेल द्वारा पण्डित जवाहरलाल नेहरू को तिब्बत पर चीनी कब्जे से पूर्व इसकी आशंका जताते हुए नेहरू को लिखा गया पत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसकी यत्र-तत्र चर्चा भी होती रहती है। इसी प्रकार का एक पत्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सहसम्पर्क प्रमुख श्री इन्द्रेश कुमार ने तत्कालीन प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को जून २००३ में उनकी चीन यात्रा से पूर्व लिखा था। इस अध्याय में उनके इस पत्र समेत प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह को, चीनी राष्ट्रपति हू-जिन-ताओ की २० नवम्बर, २००६ को होनेवाली भारत यात्रा के अवसर पर लिखा गया उनका दूसरा पत्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर के कुलपति प्रो. मोहनलाल छीपा का इसी विषय पर पत्र यथारूप दिया गया है।– सम्पादक)

(क) इन्द्रेश जी का श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को लिखा गया पत्र

आदरणीय श्री अटल जी

सादर प्रणाम !

आप द्वारा देश को दिये गये अभी तक के नेतृत्व का मूल्यांकन करने पर अनेक सफलताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वैश्विक कूटनीति में भारत ने अपनी भूमिका के कारण एक अलग पहचान ही नहीं बनायी है; बल्कि एक स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया है; परन्तु अभी भी अनेक कठिन परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना शेष है और उसी में एक अग्नि-परीक्षा आपकी चीन-यात्रा भी है। आप २२ जून से चीन-यात्रा पर जा रहे हैं। चीन कैसा दोस्त या दुश्मन है, आप भली-भाँति जानते हैं।

सन् १६४६ में माओ द्वारा सत्ता सँभालते ही तिब्बत में चीन की प्रत्यक्ष दखलन्दाजी बढ़ी और अत्यन्त चतुराई से सामान्य दिखनेवाली कार्यवाहियाँ करते-करते उसने तिब्बत में सेना बिठायी और ल्हासा को घेर लिया। ल्हासा चीन को समझ नहीं सका, यह उसकी विवशता थी या कमजोरी ? परन्तु यह सत्य है कि सन् १६५६ में पू. दलाई लामा जी को ल्हासा (तिब्बत) छोड़कर कुछ हजार तिब्बती शरणार्थियों के साथ भारत में शरण लेने हेतु चुपचाप छिपकर तिब्बत से प्रस्थान करना पड़ा। भारत ने अपना दायित्व निभाते हुए उन्हें शरण देकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

पं. नेहरू की अनेक गलतियों में यह भी एक भारी गलती थी कि उन्होंने तिब्बत को चीन का भू-भाग स्वीकार कर लिया। कहते हैं आम आदमी गलती करे, तो उसकी सजा समाज व सदियों को नहीं भुगतनी पड़ती है; परन्तु यदि बड़ा व्यक्ति गलती करे, तो उसकी सजा सदियों तक समाज को भुगतनी पड़ती है। यह भी उसी प्रकार की गलती थी। 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' का नारा, चाऊ-माओ की भारत-यात्रा, १६५४ में आठ वर्ष के लिए किया पञ्चशील समझौता आदि में भारतीय नेतृत्व इतना भ्रमित हो गया था कि सत्य को समझना तो दूर, उसने चीनी षड्यन्त्र को ही आँखों से ओझल कर दिया। परिणाम निकला सन् १६६२ में भारतीय सीमाओं पर चीनी आक्रमण। इस आक्रमण के बारे में पू. गुरुजी (श्री माधव राव सदाशिव गोलवलकर), आपने एवं अनेक नेताओं ने चीन की दादागीरी कितनी क्रूर व भयानक है, इसकी चेतावनी के रूप में अनेक बार भारत की जनता व वैश्विक ताकतों को बताया है।

कैलास-मानसरोवर पराया हो गया। भाई व पड़ोसी का घर जो अपना था, बेगाना हो गया है। तिब्बती नस्ल को समाप्त करने की साजिश के तहत २०० लाख चीनियों को सन् २०२० तक तिब्बत में बसाने की योजना चल रही है। तिब्बती कन्याओं के विवाह जोर-जबरदस्ती अथवा बहला-फुसलाकर चीनी युवकों से करवाये जा रहे हैं। हिमालय में अनेक सैनिक छावनियाँ व हवाई अड्डों के साथ-साथ मिसाइल हमले तक के केन्द्र स्थापित किये जा चुके हैं। सड़कों का जाल बिछाया जा चुका है और अब बहुत अधिक धन का व्यय करते हुए रेलवे लाइन ल्हासा तक पहुँचाई जा रही है, ताकि बड़े आयुध व सामान को भारतीय सीमाओं तक सीधे लाया जा सके। पर्यावरण नष्ट किया जा रहा है। तिब्बत को विकसित करने के नाम पर तिब्बती बौद्ध संस्कृति के स्थलों को धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है। पू. दलाईलामा जी का चित्र घर, दुकान में रखने तथा गले में धारण करने पर प्रतिबन्ध है। तिब्बत भारत के लिए मित्रवत् ही नहीं रहा; बल्कि "भारत गुरु है तिब्बत शिष्य है" इस बात को पू. दलाईलामा जी व सारा तिब्बती समाज दिल से मानता है। चीन द्वारा सरकारी तौर पर प्रकाशित मानचित्र जिसमें बीजिंग (पेकिंग) से एक चीनी बाजू निकलता है, जिसमें दिखाया गया है, तिब्बत हथेली है तथा उँगलियाँ नेपाल, भूटान, लद्दाख, सिक्किम व अरुणाचल हैं। यह मानचित्र चीन के कुत्सित इरादों को स्पष्ट उद्घोषित करता है। अरब सागर में ग्वादर पोर्ट को सैनिक अड्डे का रूप दे दिया गया है। म्यांमार, चीन व पाक विश्व-राजनीति में मित्र देश माने जाते हैं। भारत को अस्थिर करने में चीन पाकिस्तान को हर सम्भव मदद कर

रहा है। पाक व चीन हमारी हजारों वर्ग कि.मी. भूमि पर बलात् कब्जा किये हुए हैं।

आप ये सब बातें जानते भी हैं, समझते भी हैं। आपको यह सब बताना छोटा मुँह बड़ी बात है; परन्तु मन कहता है कि राष्ट्र जीवन के हर महत्त्वपूर्ण मोड़ पर अपना कर्त्तव्य करने से चूकना नहीं चाहिए। आपकी चीन-यात्रा पर विश्व, विशेष रूप से एशिया महाद्वीप, भारतीय समाज और उसमें भी विशेष रूप से हिमालयी निवासी व निर्वासित तिब्बत समुदाय आशा की नजर गड़ाये है। शंकित व चिन्तित भी है और विश्वास भी है इस दुविधा की भूमिका में देश खड़ा है। चीनी नेताओं से मिलने पर व्यापार (आर्थिक), सामाजिक (आतंकवाद, घुसपैठ आदि), सीमा समेत सांस्कृतिक, खेलकूद, चिकित्सा आदि अनेक क्षेत्रों पर वार्त्ताएँ होंगी और महत्त्वपूर्ण समझौतें भी होंगे। कुछ आवश्यक बातों की ओर संकेत कर रहा हूँ।

(१) विश्व जानता है कि कैलास-मानसरोवर सभी पन्थों की साधना स्थली होने के कारण आध्यात्मिकता का केन्द्र है। यह कभी भी चीन का न था, न होना चाहिए; परन्तु आज चीन के कब्जे में है। यह कब्जा विश्व शान्ति की साधना स्थली के साथ बलात्कार है। कम से कम चीन कैलास मानसरोवर से अपनी सेनाएँ हटाये तथा यहाँ की यात्रा और वहाँ पर साधना की पूर्ण स्वतन्त्रता कायम हो। उस क्षेत्र को शान्ति-क्षेत्र घोषित करवा उसे भारतीय संरक्षण में लिया जाये। हमें कैलास-मानसरोवर की यात्रा के लिए चीन से अनुमति लेनी पड़ती है, यह शर्मनाक दर्द भी समाप्त हो जायेगा।

(२) चीन से वार्त्ता को श्रद्धा अथवा विश्वास में परिवर्त्तित नहीं किया जाना चाहिए। दो देशों की वार्त्ताएँ सदैव राजनैतिक व कूटनीतिक होती हैं। इसलिए इसी स्तर पर रहकर; परन्तु सावधानीपूर्वक बातचीत व समझौते करें। अपने व हिमालयी देशों के हितों के हम संरक्षक हैं, यह सन्देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष झलकना चाहिए।

(३) तिब्बत की निर्वासित सरकार के प्रतिनिधि व चीन के बीच वार्त्तालाप चल रहा है। पू. दलाईलामा जी ने मध्यम मार्ग (middle Path) चुना है ताकि तिब्बत समस्या का समाधान निकले। हमें उसके लिए दबाव बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। बहूद्देशीय लाभ होगा।

पर्वत-पीड़ा : उत्तराखण्ड की

— तरुण विजय

पहाड़ बोलता है, कराहता है,
लेकिन पहाड़ सुनता भी है।
पहाड़ को सुनने के लिए,
पहाड़ होना होता है।
दर्द को झेलना नहीं, सहना नहीं,
दर्द को जीना होता है।
उसके जैसा बन कर ही,
उसको सुना जा सकता है।
अनगढ़ पत्थरों-सा घनीभूत आक्रोश।
मिट्टी की ममता ने हजार साल तक लिपटाये,
सीने से चिपकाये, चुप खड़े रहो।
गंगा को मृत झील में बदलते देख भी,
आँसू पत्थरों से बनाये, टिकाये रहो,
तो पहाड़ शायद बन सको।
और फिर सुन सको, पहाड़ कहता क्या है ?

('जनसत्ता' से साभार)

(क) तिब्बती अपनी मातृभूमि (देश) लौट सकेंगे।

(ख) एक बलशाली, जोर-जबरदस्ती से पड़ोसी बना चीन हमारी सीमाओं से बहुत दूर चला जायेगा अर्थात् हिमालय की पीड़ा और हमारी असुरक्षा दूर हो होगी।

(ग) चीन, जो पाक को प्रत्यक्ष मदद कर भारत को अशान्त बनाने का कार्य करता रहता है, वह पाक को भी मदद नहीं कर पायेगा।

(घ) हमारा विश्व के साथ सम्पर्क एवं व्यापार हेतु धरती मार्ग खुलेगा।

(ङ) तिब्बती शरणार्थियों पर होनेवाला व्यय उनके अथवा अपने देश के विकास पर व्यय होगा।

(च) चीन के तिब्बत हड़पने व हिमालय में अड्डे बनाने से पूर्व लद्दाख से अरुणाचल तक की अघोषित सीमाओं पर केवल ७५ से १०० तक पुलिस वाले थे। देश की कानून व्यवस्था, शान्ति, अखण्डता सुरक्षित थी तथा व्यय भी बहुत कम था; परन्तु आज हजारों लाखों में सेना है, प्रतिदिन का ५ से ७ करोड़ रु. का व्यय है और देश की एकता व अखण्डता पूरी तरह से खतरे में है। सीमा सुरक्षा के व्यय में भारी बचत होगी।

(४) चीन विभिन्न समझौतों द्वारा हमारी मण्डी के उत्पादन व माल को चौपट न कर दे और अपने माल की बिक्री के नानाविध तौर-तरीकों की आड़ में चीन गुप्तचरी व अन्य प्रकार के अड्डे न बनाना शुरू कर दे, यह सावधानी रखना जरूरी है।

सभी आशा में प्रतीक्षारत हैं। आप यशस्वी बनें, राष्ट्र सामर्थ्यवान् हो, इन शुभकामनाओं के साथ–

आपका

(इन्द्रेश कुमार)

संस्थापक संयोजक – हिमालय परिवार

संस्थापक संरक्षक– भारत–तिब्बत सहयोग मञ्च

हिमालय परिवार

(१६८१, मेन बाजार, पहाड़गञ्ज (चित्रगुप्त मन्दिर के सामने), नयी दिल्ली– ५५)

केन्द्रीय संयोजक
इन्द्रेश कुमार

आदरणीय श्री मनमोहन सिंह जी
प्रधानमन्त्री, भारत सरकार
नयी दिल्ली।

सादर प्रणाम !

आपको एक महान् देश के प्रधानमन्त्री के रूप में नेतृत्व करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज भारत व एशिया का ही नहीं; बल्कि विश्व का बहुत बड़ा जनमत भारत को विश्व पटल पर एक शक्तिशाली नेतृत्व के रूप में देखना चाहता है। भारत के अध्यात्म में विश्व-शान्ति, बन्धुत्व व विकास के बीज विद्यमान हैं; परन्तु सन् १६४७ के स्वतन्त्रता के अवसर पर दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन से लेकर आज तक हम एक कमजोर नेतृत्व वाला विभाजित-सा देश व समाज दिखायी दे रहे हैं। अनेक अन्तरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय संकटों के अवसर पर जाति, दल व पन्थ (धर्म) से ऊपर उठकर हमने राष्ट्रीय व मानवीय अस्मिता से जुड़े अनेक मुद्दों– चीन से अपना भू-भाग खाली करवाना, पाक अधिकृत कश्मीर वापस लेना, समान नागरिक संहिता, कश्मीर घाटी में विस्थापितों की वापसी, गोहत्या बन्दी (गो संरक्षण एवं संवर्द्धन), अधिकांश यानि ६० प्रतिशत से अधिक मुस्लिम व ईसाई बन्धु पूर्वज, परम्परा व वतन से भारतीय हैं न कि विदेशी (अल्पसंख्यक अवधारणा), आतंकवाद व आतंकवादी स्वतन्त्रता, समानता, विकास व शान्ति का दुश्मन है तथा विदेशी इशारों पर नाचनेवाला है, उसे कुचलने के लिए सख्त कानून व कार्यवाही ही करना, ताकि मुख्यधारा में भी लाया जा सके, भारत व भारतीय होने का स्वाभिमान, आरक्षण जो कि गरीब व पिछड़े को सम्मान व स्वावलम्बन हेतु प्रावधान था, उसका आज वोट बैंक के रूप में उपयोग कर प्रावधान था, उसका आज वोट बैंक के रूप में उपयोग कर समाज को बाँटना व लड़वाना आदि-आदि पर समान मत व समाधान की नीति से एकजुट भारत की छवि बननी चाहिए थी, वह नहीं बन रही है।

इस पत्र में एक विशेष प्रसंग पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। **चीन के राष्ट्रपति श्री हू जिंताओ भारत की यात्रा पर आ रहे हैं। उन्होंने २० नवम्बर की तिथि शायद इसलिए चुनी; क्योंकि उस दिन चीन द्वारा भारत की हजारों वर्ग कि.मी. भूमि पर कब्जा कर लेने के पश्चात् एकतरफा युद्ध-विराम घोषित किया था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें इस यात्रा के लिए कोई अन्य तिथि सुझानी चाहिए थी। उदाहरण के लिए हम १४ नवम्बर की तिथि सुझा सकते थे। यह दिन प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू का जन्मदिवस होने के साथ-साथ, इस दिन भारत के दोनों सदनों ने एकमत से एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित कर चीन से एक-एक इञ्च जमीन मुक्त करवाने का संकल्प लिया था।** <u>२० नवम्बर चीन की विस्तारवादी कूटनीति का विजय का दिन है एवं हमारे विश्वास की पराजय का एवं कमजोर इच्छाशक्ति का दिन है।</u>

चीन के राष्ट्रपति भारत आ रहे हैं। सामरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समझौतों के साथ-साथ सीमा-विवाद का समाधान हो, इस पर भी चर्चा होगी। यहाँ हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि चीन ने कम्युनिज्म को पूरी तरह नकार कर पूँजीवाद का मार्ग अपना लिया है; परन्तु उसने अपने मूल साम्राज्यवादी, विस्तारवादी आचरण को नहीं बदला है और न ही उसमें संशोधन किया है। आज भी वह अक्साईचिन, अरुणाचल के कुछ भू-भाग व कैलास मानसरोवर पर कब्जा जमाये है तथा पूरे अरुणाचल प्रदेश को अपना भू-भाग मानता है। उसका वह नक्शा, जिसमें बीजिंग से एक चीनी बाजू निकलती है और उसका हाथ हिमालय पर रुक जाता है। हथेली पर तिब्बत तथा पाँच अँगुलियों में से प्रथम पर लद्दाख, दूसरी पर भूटान, तृतीय अँगुली पर नेपाल, चौथी अँगुली पर सिक्किम, पाँचवीं पर अरुणाचल लिखा है। आज आवश्यकता है कि हमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कैलास मानसरोवर सहित अन्य सभी चीन के अवैध कब्जे में भारतीय भू-भाग को चीन से खाली कराने की बात उठानी चाहिए। अगर हमने दावा करना ही बन्द कर दिया, तो सत्य पराजित अथवा गुलाम हो जायेगा। यह एक भारी अपराध होगा। हमें कैलास-मानसरोवर यात्रा के सभी मार्ग खोलने तथा यात्रा के योग्य बनाने की माँग करनी चाहिए तथा चीन की अपनी जोर-जबदस्ती से रखी सेना को वहाँ से हटाना चाहिए। इस सारे क्षेत्र को मुक्त करने के अति मानवीय कर्त्तव्य को निभाने हेतु चीन को बताना तथा उस पर दबाव बनाना चाहिए।

१६४६ में चीन ने नयी रोशनी की घोषणा की; परन्तु उससे पूर्व अधिकांश मंगोलिया व मञ्चूरिया को वह हड़प चुका था और तिब्बत में पाँव पसारने प्रारम्भ कर दिये थे। हमने सन् १६५४ में पञ्चशील समझौता कर तिब्बत से भारतीय सेना, डाकघर आदि समेट लिये तथा तिब्बती जनता को साम्राज्यवादी चीन के रहमोकरम पर छोड़ दिया। उसने सेना व कूटनीति की सब चालें चल तिब्बत पर कब्जा कर लिया और हमने तिब्बत को चीन का भू-भाग मान एक मानवीय व राजनैतिक अपराध किया। अनेक दूरद्रष्टा नेताओं में से एक उस समय के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय पूजनीय सरसंघचालक श्री गुरुजी (माधव सदाशिवराव गोलवलकर) ने सतत कहा कि चीन पर भरोसा नहीं करना चाहिए, हिमालय पूर्णतया असुरक्षित हो जायेगा, खतरा उस ओर से है; परन्तु इन राष्ट्रीय व मानवीय संकेतों को समझना तो दूर; बल्कि

तत्कालीन नेताओं और विशेष रूप से प्रधानमन्त्री पं. नेहरू का आचरण अत्यन्त अशोभनीय रहा, जिसका परिणाम निकला सन् १९६२ में चीन का भारत पर आक्रमण। सीमा पर सैनिक तैयारी तो बहुत दूर की बात, हमारे सत्ताधारी नेता चीनी आक्रमण के बारे में देश को भी धोखे में रख रहे थे। पूजनीय दलाई लामा जी हजारों लाखों तिब्बतियों के साथ भारत में आज तक निर्वासित जीवन जी रहे हैं। तिब्बतियों ने भारत व विश्व में स्वतन्त्र तिब्बत आन्दोलन को जन्म दिया। भारत व विश्व की ताकतों की उदासीनता देखते हुए वर्त्तमान में पूजनीय दलाई लामा जी ने मध्य मार्ग चुना है, जिसमें उन्होंने मुख्य बात कही है कि तिब्बत को चीन का भू-भाग मान लिया जाये; परन्तु तिब्बत को पूर्ण स्वायत्तता अधिकारों सहित मिले और हजारों निर्वासित तिब्बती पूजनीय दलाई लामा जी के नेतृत्व में पुनः ल्हासा लौट सकें, ताकि तिब्बत, तिब्बती समाज व संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सके; परन्तु चीन से मित्रता खरीदने की नीति के कारण हम सत्य को उठाने में संकोच व कमजोर पड़ रहे हैं। मित्रता समान शक्ति वालों में होती है। कमजोर की मित्रता उसे अपमान व गुलामी देती है। पूजनीय दलाई लामा जी व लाखों तिब्बती यह मानते हैं कि भारत गुरु है तिब्बत शिष्य है। भारत पूरी ताकत से खड़ा होगा। भारत लोकतन्त्र व मानव स्वतन्त्रता का पक्षधर है। फिर तिब्बत पर मौन क्यों ? हमें सरकार व समाज के स्तर पर चीन के राष्ट्रपति से इस विषय को उठाना चाहिए।

चार-पाँच वर्ष पूर्व हिमालय में सतलुज में भारी बाढ़ के कारण भयानक तबाही यानि जानमाल की हानि हुई थी। आज तक उसका कारण अस्पष्ट है। न तो ऊपर भारी वर्षा हुई, न ही बादल फटा, न ही झीलों में अधिक पानी था, जो बहकर आया और न ही भूस्खलन से जल रुका, जो एक साथ बहुत सारा जल बाढ़ रूप में आया हो। आज भी एक सन्देह कायम है कि चीन ने उस ओर कोई भूमिगत आणविक विस्फोट किया, जिस कारण हिमालय के उस ओर की झीलों का जल उछला और भारी तबाही भारत को झेलनी पड़ी। अभी-अभी ब्रह्मपुत्र नदी पर चीन ने डैम बनाने की घोषणा कर दी है। डैम का अर्थ ब्रह्मपुत्र पर चीन का अधिकार बनाये रखना। चीन–भारत की मैत्री की बातें हो रही हैं। चीन ने सम्पूर्ण हिमालय में सड़कों का जाल बिछाकर छह से अधिक स्थानों पर प्रक्षेपास्त्र दागने के केन्द्र (मिसाइल अटैक सेण्टर) निर्माण कर लिये हैं। अनेक अस्त्र व शस्त्रागार भी बना लिये हैं। मित्रता, विकास व शान्ति की आड़ में चीन की इस तरह सामरिक तैयारी को भारत के नेताओं को समझने में कमजोर नहीं पड़ना चाहिए। यदि सरकार, राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक नेतृत्व व जनता को अंधेरे में रखकर चीन से समझौता करती है, तो आपके दल, सरकार व देश को क्या मिलेगा ? हमें सारे समाज को साथ लेकर एक शक्तिशाली संगठित देश के रूप में चीन से वार्त्ता करनी चाहिए, न कि एक दल के रूप में।

तिब्बत में विकास के नाम पर रेलवे लाइन बिछायी जा चुकी है। सड़कें ताबड़तोड़ बन रही हैं। अन्य अनेक प्रकल्प भी विकसित किये जा रहे हैं। बीजिंग से ल्हासा, ल्हासा से काठमाण्डू, काठमाण्डू से ढाका तक भारत से होता हुआ व्यापार सड़क मार्ग बनाने की चर्चा चल रही है, जो हमारी सुरक्षा व अखण्डता के लिए चुनौती है। तिब्बती व तिब्बती पहचान को नष्ट किया जा रहा है। आज विश्व में प्राचीन धरोहरों के संरक्षण के लिए कानून बन रहे हैं, धन का आवंटन हो रहा है तथा व्यवस्थाएँ निर्माण की जा रही हैं; लेकिन तिब्बत में इसके उलट हो रहा है। विकास के नाम पर सांस्कृतिक मौलिक पहचान की रक्षा होनी चाहिए। विश्व के सर्वाधिक छोटी आयु के बन्दी पंचेन लामा के बारे में चीन जानकारी ही नहीं दे रहा और न ही किसी को पंचेन लामा को देखने व मिलने की अनुमति दे रहा है। फिर मानवाधिकारों की बातें करनेवाले देश व संस्थाएँ चीन की इस क्रूरता पर चुप क्यों ? हमें विकास के नाम पर अपनी व पड़ोसी देशों की स्वतन्त्रता, सम्मान व संस्कृति की रक्षा को भी सुनिश्चित करने का विचार करना होगा। मौलिक रूप से सभी पड़ोसी देश भारतीय संस्कृति से जुड़े हैं।

आज चीन व भारत में आयात-निर्यात है। चीन से हमें अनेक आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण व अन्य वस्तुएँ मिल रही हैं। हम भी दवाई, वस्त्र, स्टील, फल आदि अनेक वस्तुएँ चीन को बड़े पैमाने पर दे रहे हैं। दोनों महाशक्तियों में सरकार से लेकर समाज के स्तर पर मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनें व दृढ़ हों; परन्तु सम्मान, स्वतन्त्रता, सुरक्षा व संस्कृति की शर्त पर नहीं। आज तक इतिहास चिल्ला-चिल्ला कर बोल रहा है कि चीन जो कुछ सामने दिखता है, भीतर से वह विपरीत आचरण करता है। आगामी वर्ष सन् २००७ स्वतन्त्रता संग्राम की १८५७ की महानक्रान्ति की, १५०वीं वर्षगाँठ व सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति की ६०वीं वर्षगाँठ का है। अत्यधिक संघर्ष व बलिदान की लम्बी कालावधि का है। बहुत-बहुत मूल्य देकर स्वतन्त्रता मिली है और आज भी बलिदानों की परम्परा के कारण हम अपनी स्वतन्त्रता को बनाये हुए हैं। कवि ने कहा है–

आजादी का इतिहास कहीं पैसे से खेला जाता है ?
यह शीश कटाने का सौदा नंगे सिर झेला जाता है।
आजादी का इतिहास कहीं काली स्याही लिख पाती है?
इसको लिखने के लिए खून की नदी बहायी जाती है।

शायर ने कहा है–

सारा लहू बदन का सरजमीं को पिला दिया,
वतन का कर्ज बहुत था सारे का सारा चुका दिया।

लेखक ने कहा है–

स्वतन्त्रता, सुरक्षा व सम्मान के लिए रक्त बहाया जाता है, खुशी व खुशहाली के लिए नैतिकता पूर्ण ढंग से पसीना बहाया जाता है,

'अतिथि देवो भव' की संस्कृति 'प्राणियों में सद्भावना हो', 'विश्व का कल्याण हो', एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' की संस्कृति वाला देश कमजोर, चापलूस व कायर नहीं; बल्कि स्वाभिमानी व शक्तिशाली दिखायी दे, इसका विश्वास चीनी राष्ट्रपति के प्रयास में झलकेगा, इसी आशा से देश आपको निहार रहा है।

आपका
इन्द्रेश कुमार
अखिल भारतीय कार्यकारिणी सदस्य रा.स्व. संघ
मार्गदर्शक– भाई हिन्दुस्थान
(राष्ट्रवादी मुस्लिम आन्दोलन)

तिब्बत के विषय में श्री अरविन्द के दो वक्तव्य

२० जून, १९५० को श्री अरविन्द ने के.डी. सेठना को लिखा :

"पूरा मामला बिलकुल साफ है। यह साम्यवादियों की पहले उत्तरी और फिर दक्षिण-पूर्वी एशिया के ऊपर हावी होने और उन्हें अधिकृत करने की अभियान-योजना की प्रथम चाल है, यह तिब्बत को भारत के द्वार के रूप में पार करके समस्त एशिया महाद्वीप को अधिकृत करने की कार्य साधन-युक्ति का आरम्भिक कदम है। "अगर वे इसमें सफल होते हैं, तो कोई कारण नहीं कि धीरे-धीरे सारे जगत् पर उनका प्रभुत्व न हो जाए...।"

x x x

"माओ के तिब्बत अभियान का मूलभूत अभिप्राय चीन की सीमाओं को भारत तक ले जाना और उचित युद्धकौशल से प्रहार करना है। हाँ, यदि इसी बीच भारत ही हड़बड़ी में अपने को साम्यवादी दल के पक्ष में घोषित न कर दे; किन्तु माओ और स्टालिन से, उनके आक्रोश से बचने के लिए मिल जाना, किन्हीं भी अर्थों में एक सुरक्षात्मक कार्य नहीं होगा। यह कार्य तो हमारे सभी आदर्शों और अभीप्साओं का पूर्ण विनाश कर देगा। जो कार्य हमें बचा सकता है, वह है चीन के साथ दृढ़ता से पेश आना, खुलकर उसके नापाक इरादों की भर्त्सना करना, बेहिचक अमरीका के साथ खड़े होना और अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए, अमरीका द्वारा अपने पक्ष में हस्तक्षेप के लिए, हर सम्भव व्यवस्था करना; इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है माओ के भारत के प्रति दुष्ट मनसूबों पर अमरीका द्वारा रोक लगाना। सामरिक दृष्टि से, चीन हमसे लगभग १० गुना शक्तिशाली है; किन्तु अमरीका की प्रजातन्त्र की रक्षा-नीति का त्रिशूलाग्र बनकर हम माओ के बख्तरबन्द लाखों सैनिकों को आसानी से रोक सकते हैं। और अब वह घड़ी आ गयी है, जब हमें अपने को ऐसा एक शूलाग्र बनाकर न केवल अपने प्यारे देश की; वरन् दक्षिण-पूर्व एशिया की भी, जिसकी हम प्राचीर हैं, रक्षा करनी होगी।" □

वतन का शिवालय हिमालय बचाओ

– प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत के उत्तर में स्थित नगाधिराज हिमालय देवताओं का निवास, ऋषियों की तपस्थली तथा किन्नरों, यक्षों और विद्याधरों की विहार-भूमि तो रहा ही है, सम्पूर्ण भूतल पर होनेवाली भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल तथा हलचलों का परिमापक भी रहा है। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख है। कहा गया है कि यह परमात्मा की ही महिमा का प्रकटीकरण है–

हिमालय का एक दृश्य

''यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'

(ऋ.सं. १.१२१, ४)

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इसे अपना स्वरूप बतलाया है–

''यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः' (१० : २५)

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास की वाङ्मय-विभूति की आविर्भाव-स्थली यही है। आद्य शंकराचार्य को ब्रह्मज्योति के दर्शन यहीं के ज्योतिर्मठ में हुए। प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य-प्रणयन उन्होंने हिमालय में ही किया। यहीं का कैलास साम्ब सदाशिव का नित्य निवास माना जाता है–

'परम रम्य गिरिबर कैलासू।
सदा जहाँ शिव-उमा निवासू।।'

(रामचरितमानस)

हिमालय की कन्दराओं और नदियों के संगम पर ही अधिकांश भारतीय मनीषा का प्रकटीकरण हुआ है, इसका उल्लेख ऋग्वेद में पौनः पुन्येन है–

'उपह्वरे च गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धियो विप्रा अजायत' (ऋ.सं. ८.६० २८)

लेकिन सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में हिमालय का सर्वाधिक गौरवगान महाकवि कालिदास ने किया है। वे हिमालय के विराट् स्वरूप और उदात्त सौन्दर्य का चित्रण प्रत्यक्षदर्शी के रूप में करने में अग्रणी रहे हैं। 'कुमारसम्भव' की नायिका भगवती पार्वती की हिमालय तपोभूमि रही है– इसलिए उसके प्रथम १७ पद्यों में हिमालय की महिमा का ही आगान है। उसके आद्य पद्य में इसे पृथ्वी का मानदण्ड और देवात्मा बतलाया गया है–

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
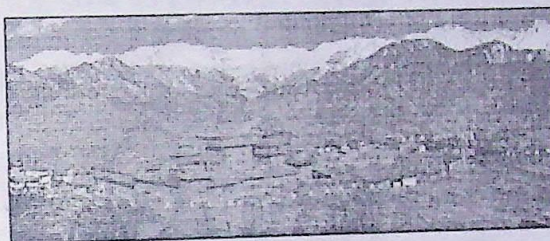
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

(–कुमारसम्भव १–१)

आगे के पद्यों में कहा गया है कि प्रजापति ने स्वयं हिमालय को पर्वतों का अधिपति बनाकर उसे यज्ञ-भाग का अधिकारी माना है। हिमालय में रहनेवाली विभिन्न मानव अथवा देव जातियों– सिद्धों, किरातों, विद्याधरों, किन्नरों, वनचरों इत्यादि के क्रियाकलापों का उन्मुक्त और आकर्षक वर्णन कवि ने किया है। विविध जातीय सहयोग और सामञ्जस्य की इससे अच्छी जानकारी मिलती है। हिमालय पर रात में चमकनेवाली वनस्पतियों का गुफाओं में भरता प्रकाश यदि महाकवि ने देखा है, तो वे उन प्रेमपत्रों से भी परिचित हैं, जिन्हें विद्याधरों की सुन्दरियों भोजपत्रों पर रंग-बिरंगी धातुओं के रस से लिखती रहती हैं। महाकवि के इन वणनों से स्पष्ट है कि उनके काल में हिमालय क्षेत्र के अधिकांश निवासी एक ही भारतीय सांस्कृतिक सूत्र में आबद्ध थे। हिमालय के मानसरोवर में स्थित उन दिव्य कमलों को, जिनके निचले अवशेषों को स्वयं सप्तर्षि-मण्डल तोड़ता रहता है, सूर्य की अवतरित रश्मियों से खिलते हुए भी महाकवि ने देखा था–

हिमालय का एक दृश्य

'सप्तर्षि हस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान् परिवर्तमानः।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः।।'

(कुमारसम्भव १.१६)

'कुमारसम्भव' के अतिरिक्त कविकुलगुरु ने मेघदूत में– यक्ष और उसकी प्रिया की आवासभूमि के रूप में– तथा रघुवंश में श्री हिमालय का आवर्जक वर्णन किया है। हिमालय के एक-एक पत्थर पर महाकवि को चन्द्रशेखर भगवान् शिव के चरण-चिह्न, अंकित देखते हैं, जिनके प्रति

सम्मान व्यक्त करने का निर्देश देना वे नहीं भूलते, क्योंकि उनके साक्षात्कार से ही व्यक्ति को परमपद मिल सकता है–

'तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुभौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनमः परीयाः।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।'

(पूर्वमेघ– ५६)

और शिव के निवास कैलास की अनन्त सुभ्रता प्रभु के राशीभूत मुक्त अट्टहास की ही तरह महाकवि को लगी–

'गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
श्रंगोच्छायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशिभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।।

(पूर्वमेघ– ६२)

हिमालय और उस पर स्थित वन्य-सम्पदा को तनिक भी क्षति पहुँचते ही महाकवि का ही मन नहीं, उनकी आराध्या, भगवती पार्वती का मन भी कचोट उठता है। कदाचित् एक जंगली हाथी ने अपने शरीर की खुजली मिटाने के लिए उसे देवदारु के तने पर रगड़ते हुए जब वृक्ष की थोड़ी-सी ही छाल छील दी, तो उस समय पार्वती वैसे ही शोकसन्तप्त हो उठीं, जैसे वे असुरों के अस्त्र-शस्त्र से आहत कुमार कार्त्तिकेय के शरीर को देखकर हुई थीं–

''कण्डूयमानेन कटं कदाचित्
वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच
सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः।।''

(रघुवंश २.३७)

संस्कृत की ही भाँति उसकी सभी पुत्रियों-भारत की अन्य भाषाओं ने भी हिमालय का गौरवगान उन्मुक्त रूप से किया है। हिमालय का नैसर्गिक, दैवी तथा मानवीय-त्रिविध सौन्दर्य स्वरूप इनमें अंकित है। बँगला कवि बिहारीलाल ने उसे योगसाधना में निरत योगी के रूप में देखा है, जो पृथिवी, आकाश, चन्द्रमा और नक्षत्र सभी को तुच्छ समझता है।

'....ओइ गिरि हिमालय, उथलि उठेछे येन अनन्त जलनिधि, ...पदे पृथ्वी, शिरे व्योम, तुच्छ तारा सूर्य सोम, सम्मुखे सागराम्बरा छड़िये रयेछे धरा, के योगेन्द्र व्योकेश योगेनिमग्न?'

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गुरुदेव रवि ठाकुर को 'भारत लक्ष्मी' में हिमालय **'अम्बरचुम्बित भाल हिमालय, शुभ्र तुषारकिरीटिनी'** तक सीमित है, लेकिन अन्य कविताओं में कभी वे उसके नैसर्गिक संगीत से उल्लसित हुए हैं, तो कभी वह उन्हें एक एकान्तवासी अध्येता तथा ऋषि के समान दिखा है–
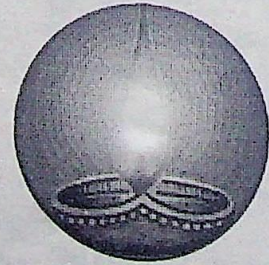
''हे निःस्तब्ध गिरिराज, अभ्रभेदी तोमार संगीत,
तरंगिया चलियाछे अनुदात्त, उदात्त, स्वरित।
प्रभातेर द्वार हते सन्ध्यार पश्चिमनीड पाने।
दुर्गम दुरूह पथे की जानि की वाणीर सन्धाने।''

तथा–

''आजि हेरितेछि आमि हे हिमाद्रि, गम्भीर निर्जने
पाठकेर मतो तुमि बसे आछ अचल आसने।''

कितने देश ढह गये, कितने नये बन गये, कितने युग बीते और कितने नये आये; लेकिन हिमालय की एकान्त अध्ययन-साधना समाप्त नहीं हुई–

''भाङ्गिल गाड़िल कत देश, गेल एल कत युग-आलोकेर
दृष्टिपथे एइ-ये सहस खोला पाता।''

हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को भी हिमालय योगी-सा ही दिखा है–

मैथिलीशरण गुप्त

''शैलराज सहस्त्र शीर्षोपम बड़ा है,
वरद विभु-सा अभय मुद्रा में खड़ा है।
सिद्ध योगी-सा समाधि निमग्न है यह
भूमि से उठ गगन से संलग्न है यह।''

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

हिमालय की इसी योगी मुद्रा का ही अभिनन्दन कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने भी किया है–

'युगों से योगियों के सार्थवाहों के
समुन्नत पग
भटकते फिर रहे अहरह, उसी
उपलब्धि के पीछे।
जिसे तुमने सँजोया शुभ्र शिवता के तुषारों से
युगों से सहज पुञ्जीभूत साधक की अचल मुद्रा।'

लेकिन हिमालय की गुरुता का सर्वाधिक प्रभावपूर्ण अंकन ''प्रसाद'' जी ने किया है, जिनकी कामायनी का महानायक मनु नवीन सृष्टि-रचना के पूर्व हिमालय के ही एक शिखर पर विचारमग्न मुद्रा में समासीन है–

''हिमगिरि के उत्तुं शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।।
नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।।'

जयशंकर प्रसाद

व्यञ्जना यहाँ यह है कि जो हिमालय हमें ऊपर से जड़ या स्थावर प्रतीत हो रहा है, वास्तव में अद्वैत चैतन्य का स्वरूप है और इसीलिए उसी के उन्नत शिखर से स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का आह्वान मुखर होते हुए भी प्रसाद जी ने सुना है–

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।

खरी खरी

– नागार्जुन

दूँगा अब न तुम्हें एक भी गाली ?
खाली है मेज
उठा के ले गये हो टेलीफोन की मशीन
खाली है बिजलीघर
उसके ले गये हो जेनरेटर
खाली हैं खम्भे
लपेट ले गये हो तार
खाली हैं घायल सिविल वान
खोल ले गये हो टायरवाले पहिये
खाली है अस्पताल
उठा के ले गये हो चारपाइयाँ, गद्दे, चादरें,
किया तुमने इस तरह बोमदीला खाली !
दूँगा अब न तुम्हें एक भी गाली !

('धर्मयुग' से साभार)

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

सम्पूर्ण संस्कृति के आविर्भाव और विस्तार में हिमालय की भूमिका सर्वोच्च है, जिसे निरूपित किया है प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के अपने इस बहु-प्रशंसित गीत में–

''हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
विमल वाणी ने वीणा ली कमल कोमल कर में सप्रीत।
सप्त स्वर सप्त सिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

भारत-भारती की वन्दना में महाप्राण 'निराला' ने भी हिमालय की आध्यात्मिक गरिमा का श्रद्धा से उल्लेख किया है–

''मुकुट शुभ्र हिम-तुषार, प्राण
प्रणव ओंकार।
ध्वनित दिशाएँ उदार, शतमुख
शतरव मुखरे।''

कविवर गोपाल शरण सिंह ने देश के प्रहरी हिमालय को साकार गौरव कहा है–

हिमालय! हिमशिखर! हिमप्राण! दिव्यता के तुम हो
अवतार।
उच्चता के तुम हो आदर्श, देश के गौरव हो साकार !!
खड़े हो प्रहरी-सदृश सगर्व, भव्य भारत के तुम निर्भीक,

आफिस : ४००७७०२, ४००७७०३, ४००७७०४
e-mail : lkopaper@sancharnet.in

राष्ट्रधर्म (मासिक)

'हिमालय-तिब्बत' विशेषांक

के प्रकाशन पर हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ

लखनऊ पेपर डिस्ट्रीब्यूटर्स

- जे.के. पेपर मिल
- सेन्ट्रल पल्प मिल्स लि०
- हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन लि०
- शारदा कोटेड
- सूर्या कोट्स लि०
- ग्लोबल बोर्ड्स लि०
- रामा पेपर मिल्स लि०
- बिन्दल पेपर मिल्स
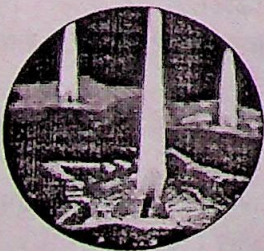
१०ए, कैपर रोड, लालबाग, लखनऊ - २२६००१

लिये हो युग-युग के स्मृति-चिह, विपुल वैभव के अमर प्रतीक।।'

राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने भी हिमालय के माध्यम से भारत के इतिहास को टटोला है। उनकी अतिचर्चित उस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

राष्ट्रकवि 'दिनकर'

'मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार दिव्य गौरव, विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल्
मेरी जननी के हिमकिरीट,
मेरे भारत के दिव्य भाल !'

सुकवि नरेश मेहता ने हिमालय के रूप में एक स्वर्गोत्सव की अनुभूति अंकित की है–

'हिम– एक पर्व है,
श्वेत फूलोंवाला एक स्वर्गोत्सव है।
आकाश ने/सृष्टि ने आरम्भ में/मन्दार फूलों की जो माला डाली थी/उस परिणय की/वह प्रथम गन्ध ही हिमालय है'

(महाप्रस्थान, स्वर्गपर्व, १२६)

कविवर उदयशंकर भट्ट ने प्राणों में और सम्पूर्ण पृथिवी की चमक में तथा उसकी उर्वरता में हिमालय का ही योगदान माना है–

सुमित्रानन्दन पन्त

'नगाधिराज के शिखर
चमक-चमक उठे,
सुधांशु पीत सिन्धु जल
लपक-लपक उठे।
कि प्राण में लहर उठे, चमक उठे धरा,
अनन्त शक्ति उर्वरा बने वसुन्धरा।'

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की तो जन्मभूमि ही हिमालय रही है। इसलिए उन्होंने अपने जीवन के कण-कण में उसकी प्रत्येक उपस्थिति अनुभव की है–

'मानदण्ड भू के अखण्ड हो,
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण।
मुझ अंचलवासी को तुमने
शैशव में आशा दी पावन।
नभ में नयनों को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।'
कब से शब्दों के शिखरों में,
तुम्हें चाहता करना चित्रित।'

नागार्जुन

प्रगतिशील कवि नागार्जुन ने भी हिमालय के जिन दृश्यों को देखा, उन्हें वे भूल नहीं पाये–

'अमल धवल गिरि के शिखरों पर बादल को घिरते देखा,
छोटे-छोटे मोती-जैसे अतिशय शीतल वारि कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कन्धों पर छोटी-बड़ी कई झीलों के
श्यामल शीतल अमल सलिल में हंसों को तिरते देखा है।'

गोपाल सिंह नेपाली

कविवर गोपाल सिंह नेपाली ने तो 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा' जैसी ओजपूर्ण कविता के माध्यम से देशवासियों को ललकारा।

लेकिन उर्दू में, नजीर बनारसी की हिमालय पर लिखी गयी लम्बी कविता का रंग सबसे जयादा चटख है। उसका शीर्षक है– 'वतन का शिवालय', जो ६२ के चीनी आक्रमण के समय लिखी गयी थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

'कलाओं का मन्दिर, अदब का शिवाला,
वतन का पुराना निगहबाँ हिमाला।
यह भारत का मस्तक है भारत का मस्तक,
किसी के झुकाये नहीं झुकनेवाला !
हिमालय की चट्टान बनकर लड़ेंगे,
हम एक-एक चप्पा की खातिर लड़ेंगे।
यह हमला है लहराती गंगा पे हमला
बचे जिस तरह भी, हिमालय बचाओ,
बचाओ वतन का शिवालय बचाओ।

नजीर बनारसी ने अपनी दूसरी कविता 'समय की पुकार' में भी देशवासियों को हिमालय बचाने के लिए आगाह किया है–

'इस वक्त गजल की बात न कर,
इस वक्त है माता खतरे में,
संसार के परबत का राजा है
अपना हिमालय खतरे में।
है सामना कितने खतरों का
है देश की सीमा खतरें में।
ऐ दोस्त ! वतन से घात न कर,
इस वक्त गजल की बात न कर।'

उर्दू कवि साहिर लुधियानवी ने भी इसी प्रकार का आहान किया है–

'वतन की आबरू खतरे में है, होशियार हो जाओ,
हमारे इन्तहाँ का वक्त हे, तैयार हो जाओ।
हमारी सरहदों पर खून बहता है जवानों का,
हुआ जाता है दिल छलनी हिमालय की चट्टानों का,
उठो रुख फेर दो दुश्मन की तोपों के दहानों का।'

इस प्रकार भारतमाता के शुभ्र ललाट हिमालय की गौरव-गरिमा का वर्णन इस देश की सभी भाषाओं के यशस्वी कवियों ने मुक्तकण्ठ से किया है।

□

– बी–१/४, विक्रान्त खण्ड, गोमतीनगर,
लखनऊ– २२६०१० (उ.प्र.)

गादेन मठ

गेलुकपा विश्वविद्यालय, तिब्बत के तीन प्रमुख मठों में से एक। इसे गादेन या गान्देन नामग्येलिङ् भी कहते हैं। यह त्गत्से प्रान्त में वाङ्बुर पर्वत के शिखर, जो ल्हासा के पोतला प्रासाद से ३६ कि.मी. दूर पूर्व-उत्तरपूर्व में ४३०० मीटर की ऊँचाई पर है, स्थित है। शेष दो हैं– सेरा मठ तथा द्रेपुङ्।

गादेन का तिब्बती या भोट भाषा में अर्थ है आह्लादपूर्ण और यह वह तुषित (स्वर्ग) है, जो बोधिसत्व मैत्रेय का निवास स्थान कहा जाता है। नामग्याल लिङ् का अर्थ है 'विजय मन्दिर'।

गेलुक सम्प्रदाय का यह मूल मठ १४०६ ई. में जे त्साङ्खपा, जो इस बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे, द्वारा स्थापित किया गया था। गान्देन त्रिपा इसका मठाधीश होता है। मत के प्रवर्त्तक का शव रजत-स्वर्ण मण्डित मठ के मुख्य गुम्बद के तले उनके शिष्यों द्वारा सुरक्षित (ममी की तरह) किया गया था। १६वीं सदी के प्रारम्भ में यहाँ लगभग ६००० भिक्षु रहते थे; परन्तु १८६० में यह संख्या ३३०० ही थी। १९५६ में यह संख्या लगभग २००० थी और अब मात्र लगभग १७० भिक्षु ही बचे हैं। शेष का चीनियों ने क्या किया, पता नहीं।

इस मठ के अन्तर्गत दो मूल मुख्य महाविद्यालय थे– ज्याङ्त्से और शार्त्से। इस मठ के तीन मुख्य स्थल हैं– १. साङ्ख्पा का गुम्बद २. त्सोकचेन सभागार और ३. न्यङ्गमचो खाङ् चैत्य। मुख्य चैत्यों में यहाँ लगभग दो दर्जन बड़ी-बड़ी बुद्ध-मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। विशालतम चैत्य में ३५०० भिक्षु बैठ सकते हैं। वर्त्तमान दलाई लामा (मूल नाम तेनजिन ग्यात्सो– जन्म १९३५ ई.) ने अपनी अन्तिम शैक्षणिक उपाधि १९५८ ई. में गान्देन मठ से ही प्राप्त की थी। उनका कहना है कि त्साङ्खपा से उन्हें अपने विशेष निकट के सम्बन्ध की अनुभूति होती है।
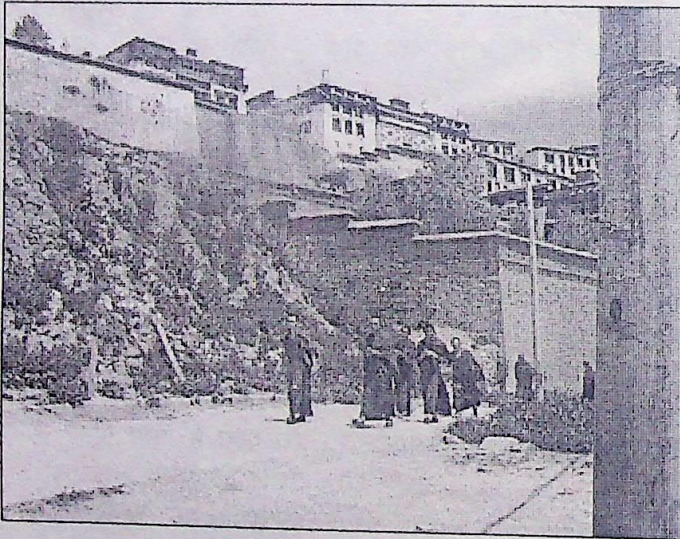
१९५९ ई. के विद्रोह के समय चीनियों ने इस प्राचीन मठ को विध्वस्त कर डाला। १९६६ में चीनी सेना के रेडगार्ड्स ने तोपों से इस पर भयंकर गोलाबारी की, तो भिक्षुओं ने अवशेषों को भी मिटा दिया। त्साङखपा के शव की 'ममी' का अधिकांश जल गया था; पर उनका कपाल व भस्म बोमी रिम्पोचे द्वारा सुरक्षित कर ली गयी थी। रिम्पोचे को ममी को आग में झोंकने के लिए बाध्य किया गया था। १९८० से इसका पुनर्निर्माण चालू है।

भारत में कर्नाटक के मुण्डगाड में स्थित तिब्बती विस्थापितों की भारत में सबसे बड़ी बस्ती में इसको पुनः स्थापित किया गया है। यह बस्ती १९६६ में भारत सरकार द्वारा दान में दी गयी भूमि पर बसायी गयी है। १९९६ में यहाँ १३००० लोग निवसित थे।

□
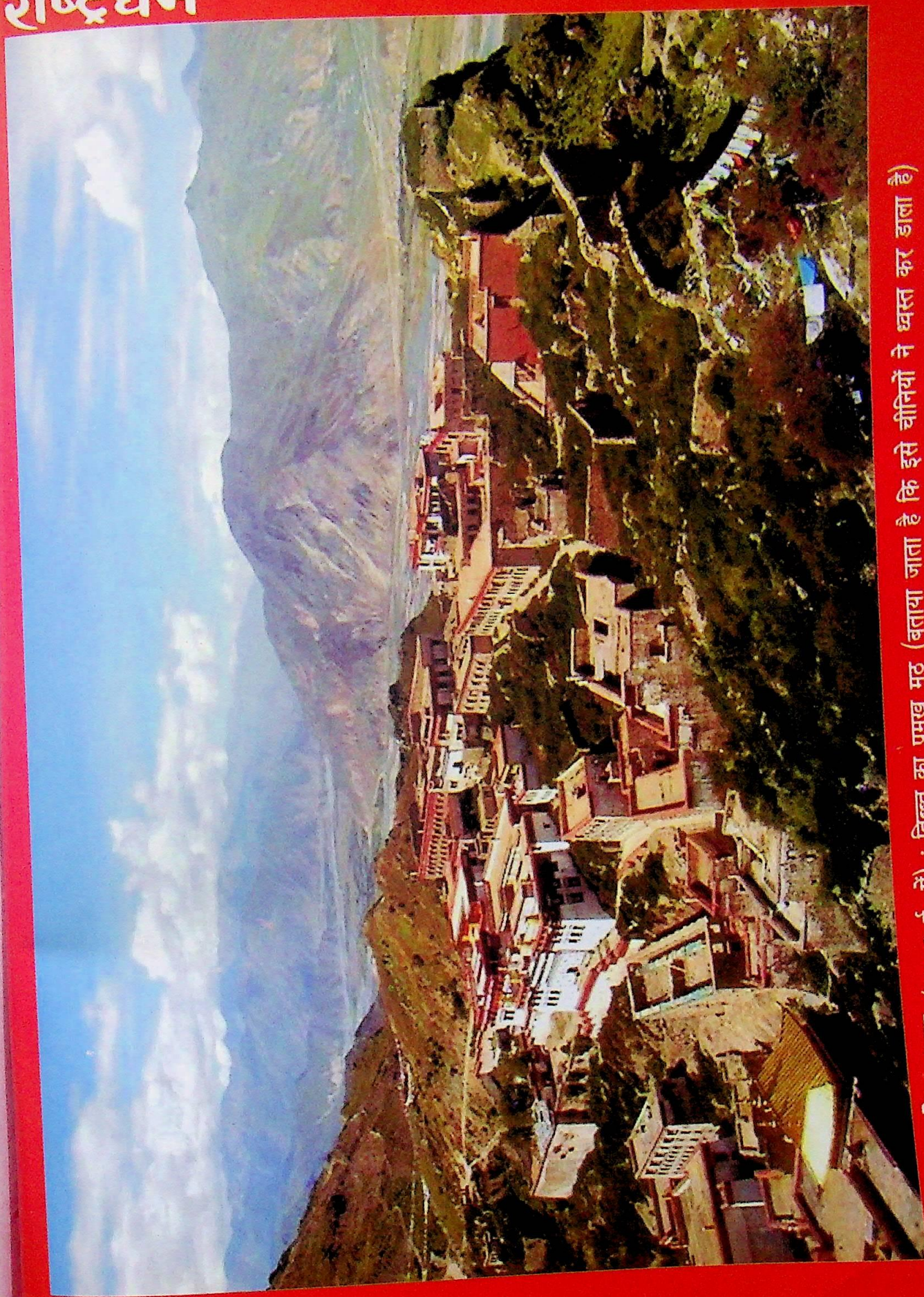
गान्देन मठ (१९५९ ई. में) : तिब्बत का प्रमुख मठ (बताया जाता है कि इसे चीनियों ने ध्वस्त कर डाला है)
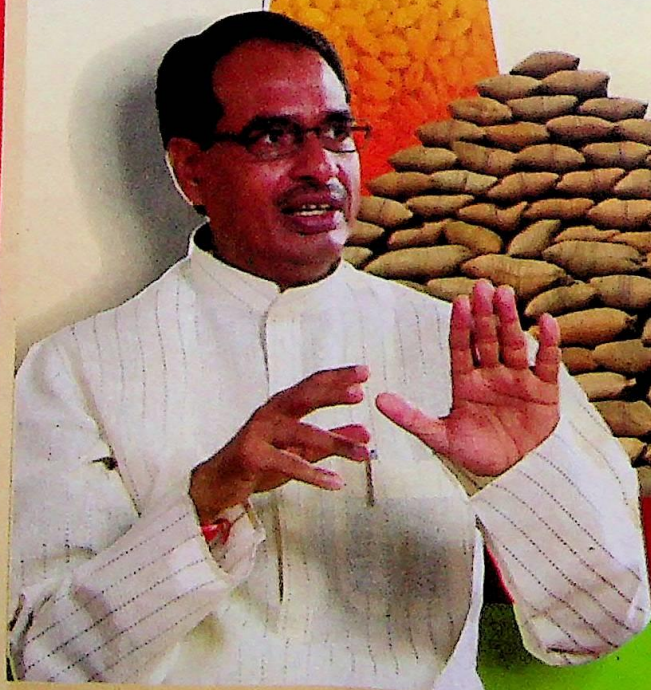
आग्नेय तीर्थ हिंगलाज

– सदाजीवत लाल चन्दू लाल

बलोचिस्तान (पाकिस्तान) में स्थित हिंगलाज तीर्थ देवी के ५१ शक्तिपीठों में से एक है। इसका महत्त्व इसलिए है कि यहाँ 'सती' का ब्रह्मरन्ध्र कटकर गिरा था। प्रस्तुत लेख में हिंगलाज माता की रोमाञ्चक यात्रा का वर्णन है। यह उस समय का है, जब कराची से हिंगलाज तक सड़क मार्ग नहीं था और ऊँटों पर यात्रा करनी पड़ती थी। वर्त्तमान में तीर्थ-स्थल तक पक्की सड़क है तथा वाहनों से एक दिन से भी कम समय में हिंगलाज पहुँचा जा सकता है।– सम्पादक

यह तीर्थ २५.३० अक्षांश उत्तर तथा ६५.३१ देशान्तर पूर्व के मध्य फैला हुआ है। सिन्धु नदी के मुहाने से ८० मील पश्चिम तथा अरब सागर (प्राचीन नाम 'रत्नाकर') से १२ मील उत्तर में यह स्थित है। पहाड़ पर एक अँधेरी गुफा में, गुफा-मन्दिर है। वहीं महामाया हिंगलाज देवी विराजती हैं। पाकिस्तान के मुसलमान भी देवी को 'नानी' और वहाँ की तीर्थ-यात्रा को 'नानी का हज' कहते हैं।

साधुवेला आश्रम, सक्खर

'तन्त्र-चूडामणि' और 'बृहन्नील तन्त्र' में यह तीर्थस्थान 'हिंगुला' तथा शिवचरित नामक तन्त्र-ग्रन्थ में भी 'हिंगुला' नाम से वर्णित है। उक्त तन्त्र ग्रन्थों के मत से हिंगलाज ५१ शक्तिपीठों में से एक पीठ है।

सती का शव कन्धे पर लादे हुए शिव इतस्ततः घूमते जब वहाँ पहुँचे, तो भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से सती के शव का छेदन किया था। हिंगलाज में सती का ब्रह्मरन्ध्र गिरा था, अतः इक्यावन शक्तिपीठों में से यह एक प्रमुख शक्तिपीठ है। कहा जाता है कि त्रेता में श्रीराम ने जब रावण का वध किया था, तो ब्रह्म-हत्या के पाप से वह यहाँ पर ही मुक्त हुए थे।

हिंगलाज मन्दिर

हिंगलाज में भैरव का नाम 'भीमलोचन भैरव' है।

नानी माँ का हज

कराची बन्दरगाह से उत्तर-पश्चिम में २४० कि.मी. दूर हिंगलाज देवी का स्थान है। बलूचिस्तान की लासबेला क्षेत्र की सम्माकतर तहसील में मकरान पर्वतमाला के बीच हिंगोल नदी के किनारे हिंगलाज शक्तिपीठ है।

जब पाकिस्तान का जन्म नहीं हुआ था और भारत की पश्चिमी सीमा अफगानिस्तान और ईरान थी, उस समय हिंगलाज तीर्थ हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ तो था ही, बलूचिस्तान के मुसलमान भी हिंगलादेवी की पूजा करते थे, उन्हें 'नानी' कहकर। मुसलमान भी लाल कपड़ा, अगरबत्ती-मोमबत्ती, इत्र-फुलेल और सिरनी चढ़ाते थे। हिंगलाज शक्तिपीठ हिन्दुओं और मुसलमानों का संयुक्त महातीर्थ था।
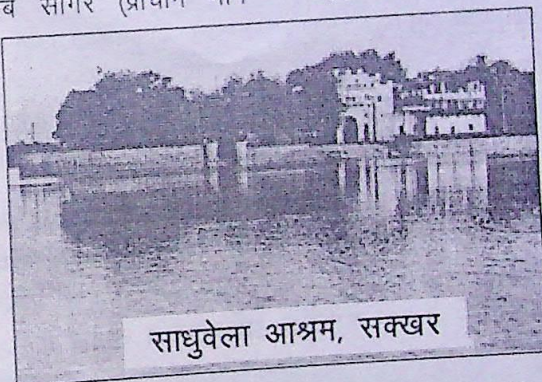
कराची से ऊँट की यात्रा चन्द्रकूप होकर २५ दिन में हिंगलाज पहुँचती है और लौटते समय चन्द्रकूप न जाने से ५ दिन की बचत हो जाती है। इस तरह ऊँट की गति के पैमाने से कराची से हिंगलाज तक जाने-आने में ४५ दिन लगते हैं, कोई-कोई एक महीना में भी आते-जाते रहे हैं। (अब कराची से हिंगलाज तक पक्की सड़क बन गयी है और एक दिन में यात्रा पूरी हो जाती है)

हिंगलाज यात्रा और देवी-दर्शन करानेवाला तीर्थ-पुरोहित या पण्डा छड़ीदार होता है। यह एकाधिकार नागनाथ के अखाड़ा के पास बसे हुए कुछ परिवारों को वंश-परम्परा से प्राप्त है।

कराची से छह सात मील चलकर 'हाव' नदी पड़ती

है। यहाँ से हिंगलाज की यात्रा प्रारम्भ होती है। यहीं पर शपथ-ग्रहण की क्रिया यात्रियों द्वारा सम्पन्न होती है, यहीं पर लौटने तक की अवधि तक के लिए संन्यास ग्रहण किया जाता है और यहीं पर छड़ी का पूजन होता है और यहीं पर रात में विश्राम कर प्रातःकाल 'हिंगलाज माता की जय' बोलकर मरुतीर्थ की यात्रा प्रारम्भ की जाती है। 'हाव' नदी के इस पार सिन्ध प्रदेश की सीमा समाप्त होती है और नदी पार करने पर बलूचिस्तान के लासबेला राज्य की सीमा प्रारम्भ हो जाती है।

चन्द्रकूप

इस यात्रा में ऊँट का बड़ा ही महत्त्व है। रेगिस्तान में ऊँट ही पथ-निदेशक होते हैं, कहाँ जाना है, कौन-सा रास्ता है, यह तो ऊँट वाले नहीं, ऊँट ही जानते हैं। हाँ; रात में यदि आसमान साफ रहा, तो ऊँटवाले सप्तर्षि और ध्रुव तारा की पहचान से पथ दिशा पहचानते हैं; किन्तु दिन में नहीं। और ऊँट दिन हो या रात हो, जहाँ उसे जाना है, जिधर पानी मिलने की सम्भावना रहती है, उधर का ही रास्ता वह पकड़ता है।

ऊँट वाले इतने ईमानदार, दयानतदार होते हैं कि अपनी जान को खतरे में डालकर यात्रियों की रक्षा करते हैं। सही सलामत नानी की हज तक ले जाना और वापस कराची पहुँचा देना वह अपना धर्म समझते हैं। सच पूछा जाये, तो यात्रियों को जीवन और मरण के रहस्य का बोध भगवती हिंगलाज की तीर्थ-यात्रा बहुत ही स्वाभाविक ढंग से करा देती है। इस क्षेत्र में वर्षा नाममात्र को होती है। यदि यहाँ आठ-दस बरस में पानी बरस जाये, तो खुशकिस्मती समझें।

चन्द्रकूप तीर्थ

बहुत ही बीभत्स और भयानक दृश्य है यहाँ का। चारों ओर मिट्टी की पहाड़ियों के बीच में एक पर्वत के शिखर से निकलता हुआ धुआँ। यही है अनवरत धुआँ उगलता हुआ चन्द्रकूप सरोवर जो धूम्रवाहन, या धूम्रमुख प्रेत की तरह भयानक, अति भयानक नजर आता है। यही है वह चन्द्रकूप, जहाँ सबके पापों का क्षय होता है और यदि लोगों में से किसी ने पाप छिपाने की कुचेष्टा की, तो चन्द्रकूप उसे अपने करालगाल में भरकर उसका क्षय कर देता है। किसी कापालिक की धूनी है चन्द्रकूप या भौम नरक है। यह देव तीर्थ है या करालमुख मृत्यु का द्वार है।

पहाड़ियों से घिरा हुआ ऊँचा पहाड़ ही 'चन्द्रकूप' है। भोर में ही यात्रीगण उस पहाड़ पर चढ़ते हैं। चढ़ाई कठिन नहीं है; लेकिन पैर फिसला करते हैं। वहाँ जाकर सब लोग चन्द्रकूप भगवान् की महिमा, उनके प्रत्यक्ष चमत्कार अपनी आँखों से देखते हैं। वहाँ जो धुआँ है, यह चन्द्रकूप से ही उठता है। चन्द्रकूप एक सरोवर है; लेकिन पानी नहीं है, सिर्फ बादल ही बादल हैं। सरोवर के अन्दर धधकती हुई आग मिट्टी को ऊपर उछालती है। बड़े-बड़े बुलबुले निरन्तर उठते रहते हैं, इतने बड़े कि अनाज भरनेवाले बड़े-बड़े टोकरे भी छोटे पड़ जाते है। चन्द्रकूप का कीचड़ आग से इतना उबलता है और खौलता है कि ऊपर उठकर फैल जाता है। ये जो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दिखती हैं, सबकी सब उसी दलदल की कीचड़ से बनी हैं। लाखों करोड़ो वर्षों से चन्द्रकूप भगवान् की यह लीला चली आ रही है।

पापों का उल्लेख

वहाँ जाकर यात्रीगण अपने किये हुए पापों को चिल्ला-चिल्लाकर कबूल करते हैं; अगर किसी ने पाप किया है और वहाँ जाकर वह अपने पाप को छिपाता है, तो तत्काल उठते हुए विशाल सरोवर से आग उठना बन्द हो जाती है। जो अपने पाप कबूल करते हैं, उनका नारियल गाँजा का भोग चन्द्रकूप बाबा तुरन्त स्वीकार करते हैं।

हिंगलाज देवी का विग्रह (मूर्त्ति)

हिंगोल नदी

चन्द्रकूप से चलकर पाँच दिनों तक चलते-चलते छठे दिन यात्रीगण सूर्यास्त के समय एक छोटे-से गाँव में पहुँचते हैं। यहाँ के मकान कँटीले झाड़-झंखाड़ों से नहीं; बल्कि लकड़ी के बने हुए होते हैं। गाय, मुर्गी, ऊँट, गधे आदि जानवर भी दिखने लगते हैं।

माई की गुफा तक पहुँचने का यह आखिरी पड़ाव है। अगले दिन सूर्योदय से पूर्व चलकर चार-पाँच घण्टे में अघोर (हिंगोल) नदी के किनारे पहुँचना पड़ता है। रात भर वहाँ रहकर बड़े भोर माई की ज्योति के दर्शन होते हैं।

हिंगोल नदी

उस दिन निराहार रहना पड़ता है। बाद में माई के दर्शन के बाद अन्न ग्रहण करने का विधान है।

रेत के समुद्र में चलते-चलते यात्री अघोर नदी के बालुकामय तट पर पहुँचते हैं, माँ हिंगलाज। अघोर नदी का एक किनारा पाषाणमय बहुत ऊँचा कगार का है। हिंगलाज महापीठ के पीठाधिपति अघोरी बाबा को दान-दक्षिणा देकर नदी के उस पार माई के महल को पारकर झरने के किनारे रात में फिर विश्राम करना पड़ता है।

कराची में नागनाथ के अखाड़े के लोग इन्हें अघोरी बाबा कहते हैं और इधर के लोग 'कोठरी के पीर' कहते हैं। इनमें योग बल की अद्‌भुत शक्तियाँ हैं, कहते हैं कि मुरदा आदमी को भी जिन्दा कर देते हैं। लासबेला राज्य से इन्हें हर महीना वृत्ति दी जाती है और यह हिंगलाज पीठ के श्रीमहन्त हैं।

दर्शन का विधान

भीगे कपड़ों से चलो। कपड़े निचोड़कर माता हिंगलाज के महल के अन्दर पहुँचो। छड़ीदार ने बताया कि यह महल

आदमी द्वारा निर्मित नहीं है, इसे यक्षों ने बनाया है। सचमुच या अमानवीय शिल्प था, वह एक निराली रहस्य नगरी थी। पहाड़ पिघलाकर वह महल बनाया गया था। संकीर्ण मार्ग से दाहिने-बायें मुड़ते हुए चल रहे थे। हवा नहीं, रोशनी नहीं, रंग-बिरंगे पत्थर लटके हुए थे। पिघले हुए पत्थरों की चारदीवारी थी, छत थी और नीचे भी रंगीन पत्थरों का फर्श था।

मुख्य मन्दिर पर्वत की कटाव में सात फीट ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है, जिसकी नाप २५x२५ फुट है। इस मन्दिर के पिछवाड़े में पर्वत की दीवार है और ऊपर भी पर्वत की प्राकृतिक छत है। मन्दिर के अग्रभाग में पत्थरों की बनी दीवार छत से जुड़ी हुई नहीं है, इसलिए मन्दिर में पर्याप्त वायु और प्रकाश रहता है। मन्दिर में प्रवेश हेतु थोड़ी चढ़ाई के उपरान्त बारह-तेरह सीढ़ियाँ हैं। आगे एक सँकरी गली प्रारम्भ होती है, जिसके दाहिने हाथ पर एक छत बनी हुई है। कमरा सम्भवतः पुजारी के रहने के काम आता है।
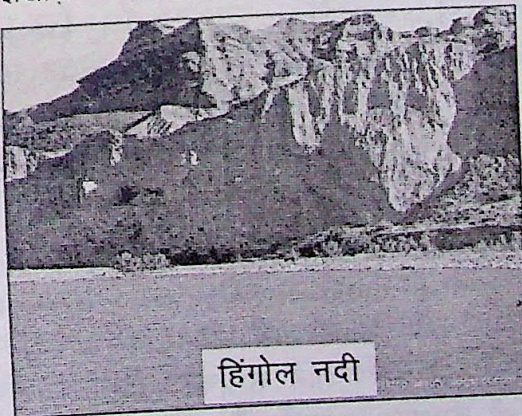
इस सँकरी गली को लाँघकर दर्शनार्थी मन्दिर में प्रवेश करते हैं। अन्दर मन्दिर का फर्श दो भागों में बँटा हुआ है। एक निचला हिस्सा, जिसके एक तरफ शिवलिंग स्थापित है, उसके पास दीपक जलते रहते हैं। दूसरा भाग लगभग चार फुट ऊँचा चबूतरा है। इसी चबूतरे पर हिंगलाज माता की मूर्त्ति है। मूर्त्ति के पास ही लकड़ी के कटघरे में एक छोटा अग्नि-कुण्ड बना हुआ है।

हिंगलाज मूर्त्ति आस्थान

मन्दिर के अन्दर चबूतरे पर कोने से डेढ़ फुट की ऊँचाई पर छोटी गुफा बनी है, जिसके पीछे और एक तरफ से पर्वत की दीवार है। उसके दूसरी तरफ अग्नि-कुण्ड है।

सामनेवाला भाग खुला है, जहाँ पर यात्री बैठकर पूजा करते हैं और सिर झुकाते हैं। इसी स्थान पर दीपक जलते रहते हैं, कुछ शंख भी यहाँ पर रखे हुए हैं। अगरबत्तियाँ जलाने हेतु अलग से स्थान बना हुआ है। वहाँ पर अग्नि जलाने का भी स्थान है। इस गुफा के पीछे पर्वत वाली दीवार, जिसकी मन्दिर की पीठ भी कहा जा सकता है, वहाँ पर माता की मूर्त्ति रखी हुई है। यह लगभग तीन फिट लम्बा व एक फीट चौड़ा, त्रिशूल जैसा पत्थर है। इसको गेरुए रंग से रँगा गया है। ऐसा भी कह सकते हैं कि इसकी आकृति मूसली जैसी है, यही हिंगलाज माता की मूर्त्ति है, इस पत्थर के बारे में कहा जाता है कि जमीन पर आसमान से दो पवित्र (मुकद्दस) पत्थर गिरे थे, एक पत्थर 'काबेअलाह' में स्थापित है और दूसरा पत्थर यह है। इस मूर्त्ति के नजदीक एक फीट से थोड़ा-सा कम गोल पत्थर रखा हुआ है, जिसको गेरू (सिन्दूर) लगाया हुआ है। इस पत्थर को 'सदा शेवा' (सदाशिव) कहते हैं।

बलोचिस्तान
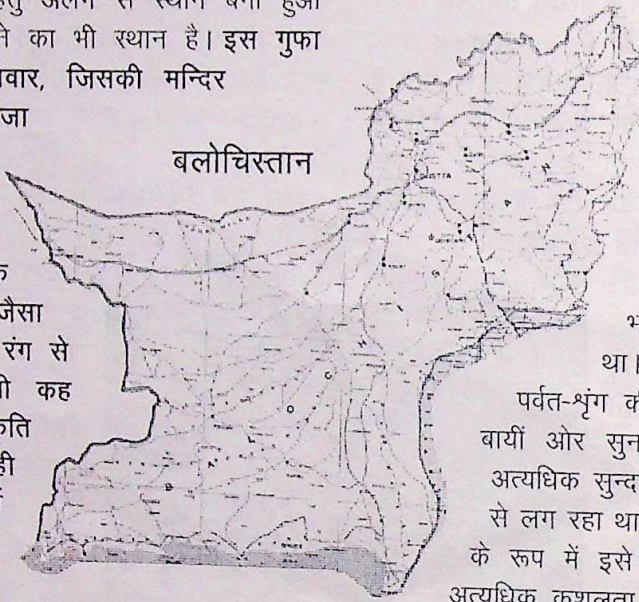
गेरू रंग के और भी दो पत्थर यहाँ पड़े हुए हैं, जो माता के सेवक हैं। इनमें से एक का नाम 'भैरूँ भीम' और दूसरे का नाम 'भैरूँलोचन' है।

शक्तिपीठ हिंगलाज के सामने नैसर्गिक सौन्दर्य का भव्य दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। सामने की ओर विशाल उत्तुंग पर्वत-शृंग की सुन्दरता मन मोह रही थी। बायीं ओर सुनहरा पर्वत प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सुन्दर लग रहा था। उसको देखने से लग रहा था मानो हिंगलाज माता के महल के रूप में इसे हजारों साल के परिश्रम से अत्यधिक कुशलता के साथ यक्षों ने बनाया हो। आकर्षक पहाड़ एक विशाल एवं भव्य महल का स्वरूप प्रकट कर रहा था। ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति ने सारी शक्ति, सौन्दर्य एवं सुरम्यता यहीं लुटा दी हो। □

कैलास-मानसरोवर का क्या होगा ?

– हृदयनारायण दीक्षित

शिव सर्वव्यापी हैं; लेकिन कैलासवासी हैं। इसी के पड़ोस में मानसरोवर का अजस्र अमृत-घट है। यहीं धरती आकाश से मिलने की अभीप्सा में उत्तुंग हिमशिखर की तरह उठती है। यहीं हिम जलद और हिम तरंग के हिम वातायन में शिव परम सत्य और परम सौन्दर्य होकर ताण्डव करते हैं। प्रतिपल, प्रतिक्षण नर्त्तन ही नर्त्तन है वहाँ। **यहाँ भूगोल की आँख में हिमालय की गोद है। इतिहास और संस्कृति के लेखे यह तिब्बत की धरती है। राजनीति में इस धरती पर चीन की लाल आँखें हैं; पर भारत का मन शिव की तीसरी आँख का आराधक है। यहीं इसी हिम-प्रवाह से ऋग्वेद के ऋषियों द्वारा स्तुति और अर्घ्य पानेवाली शतद्रु, सिन्धु आदि नदियाँ उगती हैं, वेगवती होती हैं और कल-कल नाद करती भारत के मन को आशीष देती हैं। शिव यहीं रमते हैं। भारत का मन यहाँ रमता है। यहाँ प्रकृति पार्वती होती है और विराट् पुरुष शिव होते हैं।** शिव पुराण में इसकी महिमा के गीत हैं– कैलास शिखरस्थं च पार्वती पतिमुत्तमम्। कैलास-मानसरोवर हमारे तीर्थ हैं, हमारी ऊर्ध्वगामी चेतना के शिखर हैं, लेकिन माओवादी चीन के कब्जे में हैं। भारत के लिए दुःखद स्थिति है। समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया ने ठीक कहा था "कौन कौम है, जो अपने बड़े देवी-देवताओं को परदेश में बसाया करती है। छोटे-मोटे को बसा भी दे; लेकिन बड़ों को, शिव और पार्वती को परदेश में बसाये, यह कभी हुआ नहीं ?"
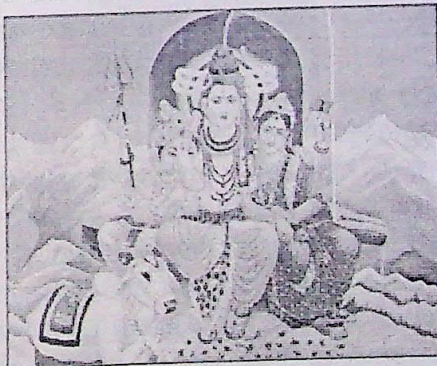
तिब्बत की रक्षा विश्व समुदाय की बैचेनी है। **कम्युनिस्ट विचारधारा में मनुष्य जीवन का भी कोई मूल्य नहीं होता। तिब्बत में कम्युनिस्ट चीन की लाल सेनाएँ हैं। एक जीवन्त संस्कृति, एक स्वाभिमानी इतिहास और एक विनम्र राष्ट्र की सरेआम हत्या हो रही है।** तिब्बत, धर्मगुरु दलाई लामा के निर्वासन (१०.३.१६५६) की वर्षगाँठ हर बरस १० मार्च को मनाता है। ४६वीं वर्षगाठ पर हो रहे शान्तिपूर्ण आयोजन को फौज ने कुचल दिया था। बौद्ध भिक्षुओं ने दमन के विरूद्ध ल्हासा में प्रदर्शन किया, अनेक भिक्षु मारे गये थे। निहत्थों पर फौजी गोलीबारी २१वीं सदी के सभ्य और लोकतान्त्रिक विश्व की लज्जाजनक घटना है। कम्युनिस्ट विचार और इनकी सरकारें विचार-अभिव्यक्ति और असहमति की आवाजें गोली से दबाती हैं। चीनी सरकारी हिंसा की निन्दा समूचे विश्व ने की थी; पर भारत की 'तिब्बत नीति' समझ के परे है।

भारत का मन आहत है। तिब्बत हमारा सगा भाई है। वैदिककालीन 'सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं' रुद्र-शिव का कैलास यहीं है। गीता के कृष्ण ने स्वयं को ही "ऊँचे पर्वतों में कैलास" बताया था। पूरे महाभारत में कैलास की छाया है। तिब्बती कैलास पुराण के अनुसार "लङ्ग्क् छो" (रावणहृद) का राजा बुद्ध की स्वर्ण मूर्त्ति कैलास में रखकर रस्सी से बाँधकर उड़ाना चाहता था। बुद्ध अपने ५०० शिष्यों सहित वायु-मार्ग से पहुँचे। नृत्य किया और उसे गच्चा दिया। भारतीय पुराण कथाओं में यही रावण की शिव-तपस्या के उल्लेख हैं। कैलास भारत के मन का अन्तरंग का प्यार है। **कालिदास के मेघदूत में क्रौंचरन्ध्र के बाद कैलास है। कालिदास ने यहाँ शिव का प्रतिदिन का अट्टहास एक जगह एक ही समय देखा। भौतिक विज्ञान की दृष्टि में कैलास की काया स्फटिक है। कैलास की ही तरह मानसरोवर भी भारत की श्रद्धा है। ऋषि दत्तात्रेय ने मानसरोवर में स्नान किया। कैलास में शिवदर्शन पाया। शिव से पूछा 'संसार में सबसे पवित्र स्थल कौन है ? शिव पार्वती ने बताया "कैलास मानसरोवर"। पुराण कथाओं के अनुसार ब्रह्मा ने अपने मानस से सरोवर बनाया। कैलास मानसरोवर हमारे तीर्थ हैं।** भस्मासुर भी यही भस्म हुआ। शिव और बुद्ध भारत-तिब्बती संस्कृति-दर्शन की प्रेरणा हैं। दलाई लामा ने कहा भी था "भारत गुरु है और तिब्बत शिष्य।" लेकिन चीन ने तिब्बत को परमाणु परीक्षण व नाभिकीय मिसाइल का अड्डा बनाया है। डॉ. अम्बेडकर ने ठीक कहा था कि, "यदि भारत ने तिब्बत को मान्यता दी होती, जैसी १६४६ में चीन को दी गयी थी, तो आज भारत चीन सीमा विवाद न होकर तिब्बत-चीन सीमा विवाद होता।"

चीन और भारत के मन एक जैसे नहीं। कभी थे भी नहीं। कभी हो भी नहीं सकते। पं. नेहरू में इतिहासबोध की कमी थी। चीन नखशिख साम्राज्यवादी। धर्म को अफीम बतानेवाले चीनी शासकों के साथ नेहरू ने 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारे लगाये। वही चीन चढ़ आया। पं.

नेहरू की नीति के चलते भारत की पराक्रमी सेना भी हारी। आज भी भारत की ६००० वर्ग मील भूमि पर उसका कब्जा है। तिब्बत उसके अवैध कब्जे में है। कैलास और मानसरोवर का मान-सम्मान असुरक्षित है। डॉ. लोहिया चाहते थे कि तिब्बत की सम्प्रभुता बनी रहे। उन्होंने कहा था, "अगर तिब्बत आजाद रहता है, तब हम अपने कैलास और मानसरोवर के इलाके, जो कभी हिन्दुस्तान के राजकीय हिस्से थे, तिब्बत की रखवाली में रख सकते हैं; लेकिन तिब्बत आजाद नहीं रहता, तब हिन्दुस्तान और चीन की सीमा रेखा मैकमोहन रेखा न होकर और ७०–८० मील उत्तर जाकर जहाँ पर कैलास मानसरोवर है, होती है।" लोहिया को इतिहास और संस्कृति की समझ थी, वे चीन की विस्तारवादी नीति से भी सुपरिचित थे। वे भारत के सत्ताधीशों की कमजोरी भी जानते थे। उन्होंने आगे कहा, "कुछ लोग कहेंगे कि यहाँ तो १५ अगस्त, १९४७ की सीमा की रक्षा नहीं कर पाते, आप तो मैकमोहन से ७०–८० मील दूर उत्तर जा रहे हो। इस पर मेरा छोटा-सा जवाब होगा– हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक लोग नहीं बैठे रहेंगे। हिन्दुस्तान की जनता कभी न कभी इन मामलों के ऊपर सोच विचार करके तय करेगी।"

तिब्बत एक परिपूर्ण राष्ट्र है। राष्ट्र का आधारभूत कारण संस्कृति होती है। कम्युनिस्ट हुकूमत के कारण ही तिब्बत की अपनी राष्ट्रीय अस्मिता खत्म नहीं होती। तिब्बत स्वतन्त्र देश रहा है। सन् ८२१ ई० के चीन-तिब्बत युद्ध में तिब्बत की जीत हुई थी। तिब्बत चीन का मुख्य शासक भी था। नयी दिल्ली में सम्पन्न (१९४७ ई.) एफ्रो-एशियायी देशों के सम्मेलन में तिब्बत ने एक देश के रूप में हिस्सा लिया था। अंग्रेज भारतीय शासकों की तुलना में ज्यादा समझदार थे। भारत में अंग्रेजीराज के वक्त तिब्बत में भारतीय मुद्रा ही चलती थी। भारत की फौज तिब्बत में थी। तिब्बत में भारत की डाक-तार सेवाएँ भी थीं। १९४९ में चीन पर कम्युनिस्टों का कब्जा हो गया। माओत्से तुंग ने कहा कि तिब्बत पर कब्जा किये बगैर चीन की आजादी अधूरी है। माओं ने २ वर्ष बाद ही १९५१ में तिब्बत पर धावा बोला। तिब्बत को कुचल दिया गया। चीन ने १९६२ में भारत पर भी हमला किया। भारत का कांग्रेसी नेतृत्व तभी से डरा और सहमा हुआ है।

भारत, तिब्बत को चीन का आन्तरिक मामला मानता है; लेकिन चीन अरुणाचल में हमारे प्रधानमन्त्री की यात्रा को भी आन्तरिक मामला नहीं मानता। भारतीय हुक्मरानों की प्राथमिकता व्यापार है। केन्द्र आर्थिक सुधारों को लेकर चीन से जारी व्यापार के आँकड़ों में फूलकर कुप्पा है। व्यापार राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय स्वाभिमान का विकल्प नहीं होता। चीन और भारत में बराबरी है। चीन आर्थिक महाशक्ति है, तो भारत भी। दोनों परमाणु-शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र हैं। चीन में कम्युनिस्ट तानाशाही है, भारत दुनिया का सबसे शालीन जनतन्त्र है। दुनिया के सभी राष्ट्र विदेश नीति के गठन में राष्ट्रसर्वोपरिता का सिद्धान्त ही चलाते हैं; लेकिन भारत 'व्यापार सर्वोपरिता' का सिद्धान्त चला रहा है। अंग्रेजों ने तिब्बत को भारत का 'प्रोटेक्टर' (पहरेदार-सुरक्षा कवच) बना रखा था। कांग्रेसी सरकार ने तिब्बत को हिंसक चीन के लिए छोड़ दिया है। आखिरकार संप्रग सरकार की तिब्बत नीति है क्या ? तिब्बत सिर्फ भूखण्ड नहीं है। यह एक जीवन्त संघर्षरत, प्राचीन संस्कृति है और भारतीय संस्कृति का विस्तार भी। पं. नेहरू और कम्युनिस्ट चीन की यारी से सत्यानाश की शुरुआत हुई। आज कांग्रेस और देशी कम्युनिस्टों की साझा विदेश नीति के चलते हिमालय असुरक्षित है। भारत भी असुरक्षा भाव में है। ऐसे में कैलास और मानसरोवर का क्या होगा ? भारतीय जनगणमन के लिये गहन सोच-विचार की चुनौती है। □

नेहरू व चाऊ एन लाई

– बी–१०६, ओ.सी.आर., पुराना विधायक निवास, लखनऊ– २२६००१ (उ.प्र.)

हम भूलते जा रहे हैं गिलगिट-बाल्टिस्तान के उपेक्षित क्षेत्र

– डॉ. महाराजकृष्ण भरत

सांस्कृतिक भारत के अभिन्न अंग तिब्बत की बात जब सामने आती है, तो जम्मू-कश्मीर राज्य में महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल के दौरान सेना में रहे जनरल जोरावर सिंह के अद्भुत शौर्य और पराक्रम का स्मरण हो आता है, जिन्होंने नवगठित जम्मू-कश्मीर राज्य के साथ लद्दाख क्षेत्र को भी मिलाया था; गिलगिट, बाल्टिस्तान जैसे उत्तरी क्षेत्रों पर विजय पायी थी। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों को विजित करते हुए यह वीर योद्धा, तब तक आगे बढ़ता रहा, जब तक इस में साँस थी। प्रतिकूल परिस्थितियों तथा आकस्मिक प्राकृतिक प्रकोप के कारण तिब्बत में इस रणबाँकुरे ने वीरगति प्राप्त की। आज भी तिब्बत में खण्डहर अवस्था में इनकी समाधि अतीत के गौरवशाली इतिहास की प्रतीक है; पर हम इस गरिमामय इतिहास को सँजो पाने में असफल रहे हैं। हम अखण्ड भारत से विखण्डित हो गये भूभाग को जोड़ने का दम नहीं भरते, केवल राष्ट्रीय क्षेत्रीय राजनीति में एक-दूसरे की जड़ें खोदने और अतीत में पाये वैभव को खोने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

शंकराचार्य मन्दिर (कश्मीर)

क्या भारत-विभाजन के बाद जब पाकिस्तान अस्तित्व में आया, तो हमने १९४७–४९ के दौरान जम्मू-कश्मीर राज्य का बृहद् भू-भाग नहीं खोया, जिस पर आज भी हमारा दावा है, जिसे हम भारत का अभिन्न अंग मानते हैं ? क्या पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (तथाकथित आजाद कश्मीर) तथा उत्तरी क्षेत्रों में लद्दाख प्रान्त के कुछ भाग गिलगिट, बाल्टिस्तान एवं हुन्ज़ा, नागर, पुनिमल, चालीस कोह, याहीन, इशाकोमन पाकिस्तान के अनधिकृत कब्जे में नहीं हैं ? क्या चीन को पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों का उल्लंघन करते हुए शक्सघम घाटी नहीं सौंपी ? क्या आज कोराकोरम दर्रे पर हमारा अधिकार है ? हमने अपना पूरा ध्यान कश्मीर घाटी की ओर लगाया है और उसे मुद्दे के रूप में कभी हम उछालते हैं और पाकिस्तान तो अकारण ही विश्व-मञ्च पर उछालता ही रहा है ? मुद्दा कश्मीर घाटी नहीं, जो भारतीय भूभाग का अभिन्न अंग है और रहेगा, मुद्दा और उससे भी बढ़कर जो मुख्य मुद्दा है, उसे उजागर करने की आवश्यकता है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर और उत्तरी क्षेत्रों में व्याप्त स्थिति

शारदा मन्दिर (पाक अधिकृत क्षेत्र)

पर सदन के दोनों पटलों पर विदेश मन्त्रालय द्वारा जो प्रतिवेदन २१ मार्च, १९९५ को प्रस्तुत किया गया था, उसमें स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि "हमारे लिए यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि जम्मू- कश्मीर के अन्य भाग में अर्थात् पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर तथा उत्तरी क्षेत्रों में क्या हो रहा है ?"

विदेश मामलों सम्बन्धी स्थायी समिति की दो बैठकें हुईं थीं, एक ४ जुलाई, १९९४ को और दूसरी २० जनवरी, १९९५ को। समिति के अध्यक्ष के नाते श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ३० जनवरी, १९९५ को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। १०वीं लोकसभा को इस चौथे प्रतिवेदन में समिति ने जहाँ विशेषज्ञों से पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर तथा उत्तरी क्षेत्रों में व्याप्त स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र की, वहीं कुछ मुख्य बिन्दुओं के लिए सिफारिश भी की। समिति ने यह नोट करते हुए चिन्ता व्यक्त की कि भारत 'कश्मीर' के मुद्दे को अब केवल कश्मीर घाटी तक ही सीमित मान रहा है। कश्मीर के पाक अधिकृत कश्मीर (पी.ओ.के.) और उत्तरी क्षेत्रों (एन.आर.) जैसे अन्य भागों की घटनाओं को पूरी तरह नजरअन्दाज कर दिया गया। समिति ने यह आशा की कि जब भी कभी यह मामले बहुपक्षीय मञ्च पर उठते हैं, तो भारत को अपनी बात जोरदार ढंग से उठानी चाहिए कि अगस्त, १९४७ में जिस समूचे भूभाग को भारत मान लिया गया था, जिसमें पाक-अधिकृत कश्मीर और बाल्टिस्तान व गिलगिट जैसे उत्तरी क्षेत्र भी शामिल हैं, भारत के अभिन्न अंग हैं, जिस पर पाकिस्तान ने अनधिकृत रूप से कब्जा जमाया है।

पाकिस्तान ने उत्तरी क्षेत्रों पर गैरकानूनी ढंग से आधिपत्य जमाया है, इस तथ्य की पुष्टि पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के उच्चतम न्यायालय ने भी की है।

विदेश मामलों सम्बन्धी स्थायी समिति ने अपने प्रतिवेदन में टिप्पणी/सिफारिश करते हुए उल्लेख किया है कि "पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के उच्चतम न्यायालय ने उत्तरी क्षेत्रों के दर्जे के बारे में पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध १४ सितम्बर, १९७४ को अपना निर्णय दिया था। पाक अधिकृत कश्मीर के उच्चतम

न्यायालय ने यह असाधारण दृष्टिकोण" अपनाते हुए कहा कि "एक ओर तो उत्तरी क्षेत्र मूल जम्मू-कश्मीर के अभिन्न अंग हैं, इसमें पाक अधिकृत कश्मीर का हिस्सा नहीं है जैसा कि १६७४ के ए.जे.के. अन्तरिम संविधान अधिनियम की धारा २ में परिभाषित किया गया है। इसका निहितार्थ यह होगा कि उत्तरी क्षेत्र पाकिस्तान के गैर-कानूनी कब्जे में है और वास्तव में भारत के सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर राज्य का एक हिस्सा है।"

जम्मू-कश्मीर के संविधान के अनुच्छेद ४ तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद–१, अनुसूची–१ में जम्मू-कश्मीर की प्रादेशिक सीमाओं को परिभाषित किया गया है। इसमें अगस्त, १६४७ की स्थिति के अनुसार महाराजा की डोमिनियन (जिसमें नियन्त्रण-रेखा के दूसरी ओर के वर्त्तमान क्षेत्र भी शामिल हैं) के रूप में परिभाषित किया गया है। जम्मू-कश्मीर की अखण्डता का अनेक बार उल्लंघन हुआ है। हम केवल संसद् मे प्रस्ताव पारित करते रहे, धरातल पर पाकिस्तान द्वारा फैलाये जा रहे दुष्प्रचार का हम मुँहतोड़ उत्तर नहीं दे पाये। २२ फरवरी, १६६४ को संसद् के दोनों सदनों ने यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया था कि जम्मू-कश्मीर का भूभाग भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा। कोई भी शक्ति उसे भारत से अलग नहीं कर सकती। भारत अपनी एकता, सम्प्रभुता एवं क्षेत्रीय अखण्डता को बनाये रखने के लिए पूरी तरह सशक्त है। यह माँग भी की गयी थी कि पाकिस्तान को जम्मू-कश्मीर के वे भारतीय भूभाग खाली करने होंगे, जिन पर उसने घुसपैठ अथवा आक्रमण द्वारा बलात् कब्जा कर रखा है।

बाहु दुर्ग (जम्मू)

लेह प्रासाद (लद्दाख)

भारत सहिष्णु देश है; सौहार्द एवं शान्ति का सन्देश फैलानेवाला देश है, पड़ोसी देशों से मित्रता का हाथ बढ़ाने के लिए आतुर रहता है; लेकिन इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि हम केवल प्रस्तावों और प्रतिवेदनों में ही भारत की सुरक्षा, सम्प्रभुता एवं एकता की बात करते रहें और धरातल पर अकर्मण्य रहें। आज यह बात उठाने की तो आवश्यकता है कि किस प्रकार उत्तरी क्षेत्र (बाल्टिस्तान व गिलगिट आदि) में मानव अधिकारों का हनन हो रहा है, जम्मू-कश्मीर की विधानसभा में २४ सीटों की व्यवस्था रखने के बावजूद ये क्षेत्र हमसे दूर हैं। इन क्षेत्रों में निरक्षता, बेराजगारी, आद्योगिक विकास एवं चिकित्सा सेवाओं की कमी इस कारण भी है कि पाकिस्तान को भी यह अहसास है कि ये क्षेत्र भारतीय भूभाग हैं।
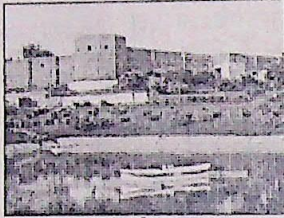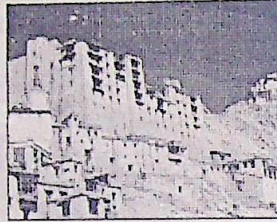
पाकिस्तान न केवल भारतीय भूभाग पर आतंकवादी घटनाओं को हवा दे रहा है; वरन् अन्तरराष्ट्रीय मञ्चों पर भी कश्मीर के मुद्दे को उछाल रहा है, जहाँ हमारे प्रयासों
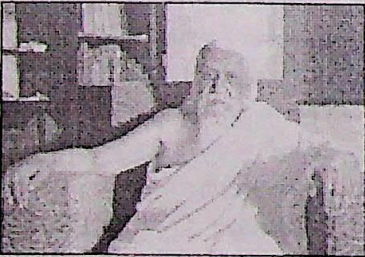
जम्मू-कश्मीर : कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

वर्त्तमान परिदृश्य

कुल क्षेत्रफल– २,२२,२३६ वर्ग कि.मी.।

पाक अधिकृत जम्मू-कश्मीर– ७८,११४ वर्ग कि.मी.।

भारत के पास– १,०१,३८७ वर्ग कि.मी. (४५.४ प्रतिशत)

पाक ने चीन को दिया– ५,१८० वर्ग कि.मी.

चीन-पाकिस्तान के कब्जे में– १,२०,८६६ वर्ग कि.मी. (५४.६ प्रतिशत)

चीन अधिकृत (१६६२ में)– ३७,५५५ वर्ग कि.मी.

जम्मू-कश्मीर में भाषा, भूगोल एवं परम्पराओं की दृष्टि से तीन क्षेत्र हैं– जम्मू, लद्दाख, कश्मीर।

लद्दाख– ५६,१३६ वर्ग कि.मी. (वर्त्तमान जम्मू-कश्मीर का ५८.३४ प्रतिशत), ६–१६ हजार फीट ऊँचाई, कुल गाँव २४२, आबादी २ लाख।

कश्मीर– १५,६४८ वर्ग कि.मी. (१५.०७ प्रतिशत भू-भाग), ५–७ हजार फीट ऊँचाई, कुल गाँव २०२६, आबादी ५८ लाख।

जम्मू– २६,२६३ वर्ग कि.मी. (२५.६६ प्रतिशत भू-भाग), १–६ हजार फीट ऊँचाई, गाँव ३६१४, आबादी ६२ लाख। कश्मीर के पास केवल १/४ भू-भाग हैं; परन्तु विधानसभा सीट– कश्मीर– ४७, जम्मू– ३६, लद्दाख– ४, १६४७ से जम्मू और लद्दाख के साथ भेद-भाव हो रहा है; क्योंकि सत्ता पर कश्मीर केन्द्रित दलों का ही कब्जा रहा है।

जम्मू और लद्दाख में कभी मुस्लिम– राज्य नहीं रहा।

कश्मीर में इस्लाम– १३२० ईस्वी में आया।

मुस्लिम राज्य (कश्मीर में)– १३३६–१८१६ ईस्वी

सिख (हिन्दू) राज्य (कश्मीर घाटी में)– १८१६–१८४६ ईस्वी

वर्त्तमान जम्मू-कश्मीर राज्य– १८४६ से, महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू में एक राज्य की स्थापना की। पंजाब में सिख सेनाओं की हार के बाद अमृतसर सन्धि के अनुसार उन्होंने अंग्रेजों से कश्मीर घाटी ली और पराक्रम के बल से राज्य का विस्तार लद्दाख, गिलगित, बाल्टिस्तान, तिब्बत तक किया, जिसके द्वारा वर्तमान जम्मू-कश्मीर राज्य का निर्माण हुआ। जम्मू-कश्मीर १६४७ से पूर्व भारत की ५६५ रियासतों में से सबसे बड़ी रियासत थी। डोगरा शासन सामान्यतः लोकप्रिय शासन था।

महाराजा गुलाब सिंह– १८४६–१८५५, **महाराजा रणवीर सिंह–** १८५५–१८८५, **महाराजा प्रताप सिंह–** १८८५–१६२५, **महाराजा हरिसिंह :** १६२६–१६४७ तक।

गिलगित-बाल्टिस्तान उत्तरी-क्षेत्र– महाराजा हरिसिंह ने चीन, रूस से आसन्न खतरों को ध्यान में रखकर मार्च १६३७ में गिलगित को पट्टे पर अंग्रेजों को दिया, जिसे उन्होंने १ अगस्त, १६४७ को महाराजा को वापस कर दिया। ब्रिगेडियर घनसारा सिंह को वहाँ का प्रशासक नियुक्त किया; परन्तु अंग्रेजों के षड्यन्त्र के फलस्वरूप, १८ अप्रैल, १६४८ को पाकिस्तान ने वहाँ अपना शासन कायम कर दिया। २००६ में पाकिस्तान ने गिलगित को अपना ५वाँ प्रान्त घोषित कर दिया। वहाँ चुनाव द्वारा विधानसभा का गठन, राज्यपाल की नियुक्ति भी की। गिलगित हम अपने मानचित्र में दिखाते हैं; परन्तु इस विषय पर भारत सरकार ने बेशर्मी से चुप्पी साध रखी है।

जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय

महाराजा हरिसिंह

महाराजा हरिसिंह ने भारत स्वतन्त्रता अधिनियम, १६४७ के द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करते हुए जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत में विलय २६ अक्टूबर, १६४७ को विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करके किया। २७ अक्टूबर, १६४७ को लॉर्ड माउण्टबैटन ने इस विलय-पत्र को स्वीकार कर लिया। २६ जनवरी, १६५० को भारत का संविधान लागू होने के साथ ही जम्मू-कश्मीर भारत राज्य का अविभाज्य अंग बन गया। □

से नहीं; वरन् अमेरिका की कोशिशों से वह स्वयं बेनकाब हो गया। जब अमेरिका की विदेश नीति को प्रभावित करनेवाले पाकिस्तान के आई.एस.आई. एजेण्ट फई को गिरफ्तार किया गया, तो पाकिस्तान के इन षड्यन्त्रों का विश्व-मञ्च पर रहस्योद्घाटन हुआ कि किस तरह से वह फई के माध्यम ये भारतीय भूभाग वाले जम्मू कश्मीर के बारे में दिग्भ्रमित करनेवाली सूचनाएँ स्थापित कर रहा था? पर हमने क्या किया ? मित्रता बढ़ायी; व्यापार के लिए मार्ग खोल दिये; घुसपैठ के लिए मार्ग प्रशस्त्र किये; पाक अधिकृत कश्मीर में भारत के विरुद्ध जंग लड़ने का प्रशिक्षण ले रहे कश्मीर के दिग्भ्रमित युवाओं की सीमापार से सुरक्षित वापसी की नीति बनायी। दोस्ती का हाथ बढ़ाया और उसने कारगिल युद्ध थोपकर रिश्तों में सेंध लगा दी।

हमने कभी आरपार की लड़ाई की चेतावनी दी थी, आज कवि 'दिनकर' के शब्दों में 'याचना नहीं अब रण होगा' को चरितार्थ करना होगा। यह रण अपनी वाक्पटुता से भी हो सकता है, वह विश्व-मञ्च पर पाकिस्तान के षड्यन्त्रों को उद्घाटित करने से भी। आज दुश्मन याचना से नहीं, सिंह की दहाड़ से समझेगा। दो टूक शब्दों में बात करनी होगी कि भारतीय भूमाग के उन क्षेत्रों से वह पीछे हट जाये। □

– पटोली ब्राह्मणा, मूठी, जम्मू

भारत-तिब्बत : प्राचीन सम्बन्ध एवं लामा धर्म

– प्रो. शैलेन्द्रनाथ कपूर

पुराकाल से ही तिब्बत एक स्वतन्त्र देश था, जो भारत एवं चीन के मध्य अपनी स्थिति के कारण सुरक्षात्मक दृष्टि से भारत के लिए वरदान था। चीन की विस्तारवादी नीति एवं भारतीय नेतृत्वकर्त्ताओं की अदूरदर्शिता के कारण आज इसे बलात् चीन ने अपना कथित स्वायत्तशासी प्रान्त बना लिया है। ऐतिहासिक स्रोतों से विदित होता है कि भारतीय मनीषा ने हिमालय की सीमाओं को पार कर तिब्बतवासियों के शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा. में अपने ज्ञान एवं स्नेह-रसधारा की वर्षा की।

आचार्य शान्तिरक्षित

तिब्बत का प्राचीन धर्म 'बान धर्म' था, जो अन्धविश्वासों से संयुक्त था। उनके अनुसार मानव आपत्तियों का कारण अशुभ आत्माएँ एवं शक्तियाँ थीं, जिन्हें जादू-मन्त्रों द्वारा अपने वश में किया जा सकता था। इस धर्म की जड़ें इतनी गहरी थीं कि बौद्ध धर्म के उपदेशों के प्रसार में तिब्बत में लगभग तीन शताब्दियों का समय लगा। बान धर्म के कतिपय अंशों को बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के साथ सम्मिलित करके भारतीय विद्वानों ने विशेषकर नालन्दा के विद्वानों ने तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रसार किया।

सातवीं शताब्दी ई. में तिब्बत में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना का श्रेय राजा 'स्रोङ्-त्सेन-गम्पो' को है। उस समय नेपाल में राजा अंशुवर्मन् तथा चीन में ताङ्-ताई-शुङ् का शासन था। तिब्बती गाथाओं के अनुसार अंशुवर्मन् की बेटी 'भृकुटी' का विवाह तिब्बती शासक के साथ हुआ था। यह राजकुमारी अपने साथ भगवान् बुद्ध की एक प्रतिमा नेपाल से तिब्बत ले गयी थी। स्रोङ्-त्सेन-गम्पो ने जोरवाङ् में एक विशाल बुद्ध मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें इस बुद्ध प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कराया। तत्कालीन चीनी शासक ने भी अपनी पुत्री 'वेन-चेङ्' का विवाह इस शक्तिशाली तिब्बती शासक से कराया। यह राजकुमारी भी अपने साथ भगवान् बुद्ध की एक प्रतिमा ले गयी थी, जो मूलतः भारत में मगध से पहले चीन व फिर तिब्बत लायी गयी थी। इस प्रतिमा की स्थापना भी जोरवाङ् में की गयी थी। 'स्रोङ्-त्सेन-गम्पो' ने अपने राज्य के एक विद्वान् मन्त्री 'थोन्मी सम्भोट' को सोलह सदस्यों के साथ भारतीय लिपि, स्वर-विज्ञान एवं व्याकरण के अध्ययन के लिए भारत के अनेक विद्या केन्द्रों में भेजा था। ये लोग कई वर्षों तक भारत में अध्ययन करने के उपरान्त तिब्बत लौटे। तिब्बत की अपनी स्वतन्त्रलिपि एवं व्याकरण की रचना का श्रेय थोन्मी सम्भोट को है। बौद्ध धर्म के अनेक संस्कृत ग्रन्थों का उसने तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। संस्कृत में सम्भोट का अर्थ 'अच्छा भोटिया' या 'तिब्बती' होता है। तिब्बती अपने देश को 'बोड' कहते हैं। इसी से सम्भवतः 'भोट' शब्द बना, जिसे भारतवासी तिब्बत के नाम से सम्बोधित करते हैं।

आचार्य पद्मसम्भव

तिब्बत से भारत आनेवाले ज्ञानपिपासु लोगों का क्रम चलता रहा। इसके साथ ही भारत एवं चीन से अनेक विद्वानों ने तिब्बत की यात्राएँ कीं एवं वहाँ बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रसार किया। राजनैतिक उथल-पुथल के साथ इसमें ह्रास एवं वृद्धि होते रहे। वस्तुतः तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रसार में आचार्य पद्मसम्भव, आचार्य शान्तिरक्षित, आचार्य कमलशील एवं आचार्य अतिश दीपंकर श्रीज्ञान के नाम अत्यन्त आदरणीय एवं उदाहरणीय हैं। ७४७ ई. में आचार्य शान्तिरक्षित के परामर्श पर तान्त्रिक विद्वान् पद्मसम्भव को तत्कालीन राजा द्वारा आमन्त्रित किया गया। उन्हें गुरु रिम्पोचे के नाम से विशेष प्रसिद्धि मिली। पद्मसम्भव का जन्म कश्मीर और अफगानिस्तान के सीमान्त क्षेत्र उदयन (उद्यान) में हुआ था। उनकी शिक्षा नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई थी। तिब्बत जाने से पूर्व उन्होंने तिब्बती बान धर्म का गहन अध्ययन किया। महायान बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के साथ उन्होंने तान्त्रिक तत्त्वों को समाहित किया।
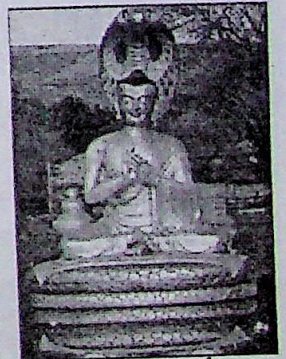
आचार्य नागार्जुन

अनेक देवताओं को तन्त्र के अधिष्ठाता देवताओं की पदवी देकर लामा धर्म के स्वरूप को प्रतिष्ठापित किया। प्राचीन बान धर्म के काले जादू को उन्होंने आन्तरिक शुद्धि से सम्बद्ध किया। तिब्बत के विशालतम प्राचीन बौद्ध-विहार का नाम 'सामये' विहार है। इस विहार में अनेक बौद्ध मन्दिर निर्मित हुए। ७४६ ई. में आचार्य शान्तिरक्षित ने इस विहार में एक विशाल पुस्तकालय का निर्माण कराया, जिसमें संस्कृत एवं तिब्बती भाषा में लिखी हुई पुस्तकों का विशाल संग्रह था। तेरह वर्षों तक आचार्य शान्तिरक्षित ने तिब्बत में साहित्यिक सम्पदा को समृद्ध करते हुए बौद्ध धर्म के तिब्बती रूप लामाधर्म का प्रचार किया।

नालन्दा विश्वविद्यालय

८१७ ई. से ८३६ ई. के मध्य तिब्बती शासक 'रापाचेन' ने बौद्धधर्म के प्रसार में सराहनीय योगदान दिया। उसके संरक्षण में पहली बार तिब्बत का इतिहास लिखा गया। उसके पुत्र ने युवावस्था में बौद्धधर्म ग्रहण किया था। उसके राज्य काल में भारत एवं तिब्बत के विद्वानों के एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया। भारत के तत्कालीन विद्वानों के नाम जिनमित्र, शीलेन्द्रबोधि, सुरेन्द्रबोधि, प्रज्ञावर्मन्, दानशील और बोधिमित्र मिलते हैं। तिब्बती विद्वानों में मुख्य थे– दपाल-ब्रट-सेग्स, ये-रम-स्दे, चोस- क्रिग्यास्मथसन। इन विद्वानों ने अनेक संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में परस्पर सहयोग से अनुवाद किया।

तिब्बत में १०३८ ई. में विक्रमशिला बौद्ध विहार के आचार्य अतिश दीपंकर श्रीज्ञान गये थे। उन्होंने भिक्षुओं के ब्रह्मचर्य जीवन पर बल देते हुए सभी प्रकार के चमत्कारों का निषेध किया। उनकी शिक्षाएँ योगाचार परम्परा पर आधारित थीं। उनका दृष्टिकोण महायान एवं हीनयान सम्प्रदायों के प्रति उदारतापूर्ण था। तिब्बत में उन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ। तिब्बत की चिकित्सा-प्रणाली भारतीय आयुर्वेदिक पद्धति पर आधारित है। तिब्बती तन्त्र-पद्धति में बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ तान्त्रिक प्रतिमाएँ जैसे 'हलाहल अवलोकितेश्वर' एवं 'नीलकण्ठ अवलोकितेश्वर' शिव की कल्पना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। पेरिस में मूजे गीभे संग्रहालय में संगृहीत अवलोकितेश्वर एवं कीर्त्तिगर्भ के चित्रों में अजन्ता कला-शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कालान्तर में तिब्बत के प्राचीन इतिहास को 'बु-स्तोन' (१२६०–१३६४ ई.) नामक विद्वान् ने 'कञ्जूर' और 'तञ्जूर' नामक दो ग्रन्थों में संगृहीत किया। ये असाधारण विशाल
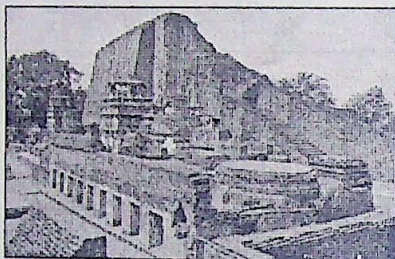
ग्रन्थ हैं। 'कन्जूर' में भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है, जबकि 'तन्जूर' में बौद्धधर्म के विद्वानों द्वारा समय-समय पर भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धार्मिक उपदेशों की तर्कपूर्ण व्याख्या की गयी है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में चिकित्सा-शास्त्र, खगोल विज्ञान, व्याकरण, तर्क, काव्य-शास्त्र आदि का भी विवरण है।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

कालान्तर में तिब्बती बौद्धधर्म अनेक सम्प्रदायों में विभक्त हुआ। इनमें एक सम्प्रदाय के लोग लाल टोपी धारण करते हैं। वे आचार्य पद्मसम्भव को अपने मत का प्रवर्त्तक एवं गुरु मानते हैं। वे दैवी एवं आसुरी दोनों शक्तियों में विश्वास करते हैं। दूसरा सम्प्रदाय कागयूप सम्प्रदाय कहलाता है। इसकी स्थापना मारपा नामक तिब्बती ने की थी। उसने नालन्दा के भारतीय तान्त्रिक नरोपा से शिक्षा प्राप्त की थी। बौद्ध धर्म के ध्यान सम्प्रदाय से उसका तादात्म्य है। तीसरा शास्क्य मत नागार्जुन के माध्यमिक दर्शन से प्रभावित था। चौथा भगदम्पा मत अतिश की शिक्षाओं पर आधारित था। सोंगखपा नामक भिक्षु ने इसे संगठित किया। इसके अनुयायी पीली टोपी धारण करते हैं। लामा का वर्चस्व बढ़ा! तिब्बत में इसे पुरोहित राजा के रूप में स्वीकार किया गया। पहला लामा पुरोहित शासक सोंगखपा का भतीजा 'गेदेन-दब' था।
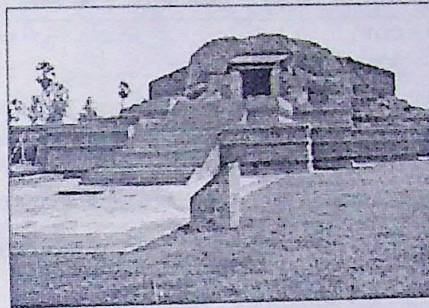
वस्तुतः १२०६ ई. में छिंगिस् खाँ (चंगेज खाँ) ने तिब्बत को मंगोलों के अधीन कर लिया। उसके पौत्र कुबलाई खाँ को तिब्बती लामाओं ने बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लेने में सफलता प्राप्त की। इससे तिब्बत में बौद्धधर्म को राज-प्रतिष्ठा का सम्बल मिला। अनेक बौद्ध ग्रन्थों का मंगोलियाई भाषा में अनुवाद किया गया। १६५० ई. में मंगोलियाई प्रधान गुसरी खाँ ने 'दलाई' अर्थात् 'समुद्र' की पदवी के साथ इसे सार्वभौम बनाया। सामान्य रूप से दलाई लामा के लिए तिब्बती शब्द

'ग्याल-वा-रिन-पो-चे' है। इसका शाब्दिक अर्थ 'मूल्यवान् आभा-सम्पन्न रत्न' है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि तिब्बत-भारत सम्बन्ध भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं की प्रेरणा से विकसित होता रहा। अनेक विपरीत परिस्थितियों में भी इसकी आभा मलिन नहीं हुई। सम्पूर्ण तिब्बत का क्षेत्र आज अपने पूर्व सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की बाट जोह रहा है। ◻

– 'सुरेन्द्रालय', ए–३५४, इन्दिरा नगर,
लखनऊ– २२६०१६ (उ.प्र.)

हिमालय की गोद में बसा लघु तिब्बत: लद्दाख

– प्रो. चमनलाल सप्रू

कवि कुलगुरु कालिदास ने हिमालय को नगाधिराज, देवातात्मा और पृथ्वी का मानदण्ड सत्य ही कहा है, जो धरतीमाता के वक्षःस्थल पर मानदण्ड के समान युगों से विराजमान है। कश्मीर भूमि के शीर्ष पर लद्दाख नामक भूखण्ड है, जिसकी राजधानी लेह कहलाती है। कश्मीर राज्य का पूरा वैधानिक नाम है– 'रियासत जम्मू-व-कश्मीर तिब्बत हा' (ریاست جموں کشمیر تبت ہا) 'तिब्बत हा' का अर्थ है छोटा तिब्बत। फारसी में 'हा' का अर्थ है 'लघु'। कश्मीर सरकार के उर्दू लिपि में मुद्रित स्टाम्प पेपर पर उपर्युक्त नाम ही लिखा होता है। लद्दाख के निवासी बौद्ध मतावलम्बी हैं और परम पावन दलाई लामा जी को अपना सर्वोच्च धर्मगुरु मानते हैं। यहाँ आपको प्रसिद्ध बौद्ध मठ, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'गुम्पा' कहते हैं, मिलेंगे। प्रमुख गोम्पा का नाम हेमिस गुम्पा है। यहाँ का वार्षिक मेला विश्वविख्यात है। बड़ी संख्या में इस अवसर पर विदेशी पर्यटक आते हैं।
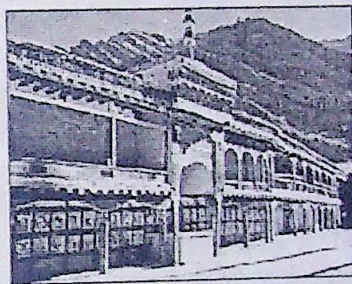
हेमिस गुम्पा

महाराजा गुलाब सिंह द्वारा वर्त्तमान जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना करने से पूर्व लद्दाख एक स्वतन्त्र प्रदेश था। आज भी लेह के पास शे स्थित स्टोक राजमहल में राजपरिवार के वंशज रहते हैं। स्व. राजा कुनजङ् नामग्याल दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद श्रीनगर आकर हमारे परिवार में ठहराये गये और वहीं रहकर सेण्टजोजेफ कॉलिज से कॉलिज की शिक्षा प्राप्त की। उनकी पत्नी रानी पार्वती देवी लेह से निर्वाचित सांसद थीं।

पं. श्रीधर कौल

पण्डित श्रीधर कौल द्वारा लद्दाख के पुनरुद्धार का अभियान

शिक्षा की दृष्टि से पूरा लद्दाख अत्यन्त पिछड़ा था। १९४७ से पहले एक-आध हाईस्कूल के सिवाय दूर-दूर क्षेत्रों तक केवल प्राइमरी और मिडिल स्कूल ही थे। **प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री पण्डित श्रीधर कौल (डूलू) को सरकार की ओर से पूरे लद्दाख मण्डल का स्कूल इन्स्पेक्टर बनाकर भेज दिया गया। भगवान् बुद्ध के अनुयायियों को हर प्रकार से पिछड़ा पाकर सबसे पहले वे स्वयं बौद्ध मत में दीक्षित हुए। उसके बाद दूर-दूर क्षेत्रों में स्वयं जाकर आधुनिक शिक्षा का विस्तार किया। उनकी कुप्रथाओं को सर्वप्रथम दूर करने का प्रयास किया। लद्दाख के बौद्ध परिवारों में सबसे बड़ा बेटा धर्म संघ को अर्पित करने की प्रथा है। इस प्रकार लड़कियों की संख्या अनुपात से अधिक होने के कारण उनकी शादी मुस्लिम लद्दाखियों के साथ की जाती थी। इस कुप्रथा का पण्डित जी ने खुलकर विरोध किया।**

१९४७ में पाकिस्तानी कबाइलियों के आक्रमण पर लद्दाख को बचाने के लिए पण्डित जी ने लद्दाखी मिलीशिया का गठन कर लेह को बचाया। इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा सरकार ने की। तत्कालीन गृह सचिव का पत्र दिनांक १. ७.१९४८ इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है।

तत्पश्चात् प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू को स्वयं लेह (लद्दाख) की सुरक्षा हेतु विस्तृत नोट पेश किया। उसमें वर्णित अनेक मुद्दों के साथ-साथ देश से लद्दाख को जोड़नेवाली वैकल्पिक सड़क के निर्माण हेतु मनाली से मार्ग का सुझाव दिया। पारम्परिक मार्ग कारगिल से होकर जानेवाला पाकिस्तानी हमले का शिकार हो सकता है। ऐसा बाद में हुआ भी।

शान्ति स्तूप

लद्दाख को जम्मू-कश्मीर राज्य में शामिल करने के बाद महाराजा गुलाब सिंह के महाबली सेनापति जनरल जोरावर सिंह ने तिब्बत पर आक्रमण करने की योजना बनायी। अपनी शक्तिशाली सेना के सहारे वह कैलास पर्वत और पावन मानसरोवर झील तक पहुँचा। इस प्रकार हम देखते हैं कि **लद्दाख क्षेत्र सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व पूर्ण भूखण्ड है। इसके पूर्वी क्षेत्र में चीन ने घुसपैठ कर एक बड़े क्षेत्र पर कब्जा जमाया है। इस घुसपैठ पर जब संसद में चर्चा हुई, तो तत्कालीन प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा, वहाँ तो घास का एक तिनका तक नहीं उगता, अतः चिन्तित होने की बात नहीं है। झट से उनकी ही पार्टी के सांसद महावीर त्यागी ने बताया– मेरे सिर**

पर एक बाल भी नहीं उगता (वह गञ्जे थे), तो क्या मैं उसे काटकर किसी को दे दूँगा ?

इधर पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर के १६४७ में कब्जाये हुए भूखण्ड में से भी काफी सारा क्षेत्र चीन को दिया है। चीन ने यहाँ भी सामरिक सड़क का निर्माण किया है और चीनी सिपाही अब पाक-अधिकृत कश्मीर में खुले तौर पर घूमते नजर आ रहे हैं।

लद्दाख को अब आधुनिकीकरण की डगर पर लाने में हमारी सेना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जो लद्दाख वृक्षविहीन और हरियाली विहीन था, उसमें सेना ने वैज्ञानिक पद्धति से कायाकल्प कर दिया।

स्टोक (लेह) के राजा व रानी

संसार की सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित लेह का हवाई अड्डा पर्यटकों को दिल्ली, चण्डीगढ़ और जम्मू से सीधे वायुयान उतारने की सुविधा प्रदान करता है।
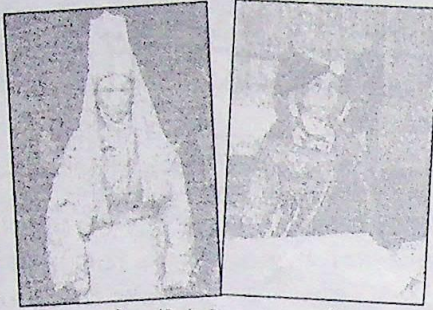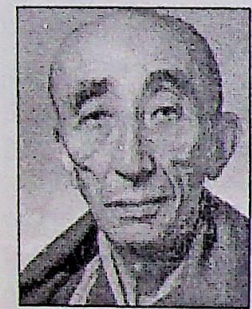
कुशक बकुला

लद्दाख में जब एक नदी की धारा को श्री तरुण विजय ने जाना कि यह तो सिन्धु नदी है, तो उनके सुझावों व तत्कालीन गृहमन्त्री और उपप्रधान मन्त्री श्री लाल कृष्ण आडवाणी के सत्प्रयत्नों से लेह के पास सिन्धु नदी के तट पर प्रतिवर्ष जून मास में "सिन्धु दर्शन" मेला आयोजित करना राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सियाचिन नामक संसार के सबसे ऊँचे हिमानी पर पाकिस्तान की घुसपैठ को रोकने और आगे बढ़ने के अवरोध स्वरूप मोर्चा सामरिक दृष्टि से अत्यन्त कठिन, पर अद्भुत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सैनिक मोर्चा है। यहाँ हेलीकॉप्टरों से ही रसद, फौजी साज-सामान उतारा जाता है। पैदल यह चीजें यहाँ पहुँचना कठिन है।

लेह में हमारी सेना द्वारा स्थापित हाल आफ फेस (Hall of Fame) नामक संग्रहालय देखने योग्य है। इसे देखकर देशभक्ति की भावना दोगुनी होती है और हमारे वीर जवानों (जो प्रतिकूल परिस्थितियों में हिमालय की गोद में बसे देश के लाड़ले भगवान् बुद्ध के अनुयायियों की भूमि की सुरक्षा में तैनात हैं) पर स्वतः गर्व होता है।

हेमिस गुम्पा यहाँ का प्रसिद्ध बौद्ध मठ है। यहाँ पर लगनेवाला वार्षिक मेला देखने योग्य है।

पण्डित श्रीधर कौल की प्रेरणा से केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित बौद्ध अध्ययन का केन्द्रीय विद्यापीठ, यहाँ की पारम्परिक संस्कृति, साहित्य, भाषा, चिकित्सा-पद्धति आदि क्षेत्रों में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस संस्थान के लिए संस्थापक प्राचार्य (प्रिंसिपल) के रूप में पण्डित श्रीधर कौल ने लेखक के नाम की संस्तुति की थी। दुर्भाग्य से वयोवृद्ध पिता श्रीनगर में रुग्न शय्या पर अपने अन्तिम दिन गिन रहे थे। अतः उनको छोड़कर सुदूर लेह जाना उसके लिए सम्भव न हो सका था। □
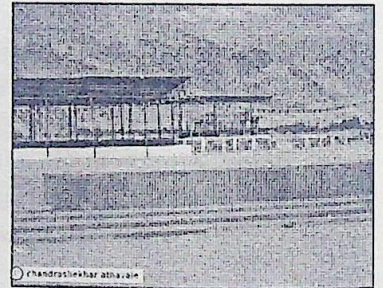
सिन्धु-दर्शन घाट

– १३-बी/इ-३, शताब्दी विहार, सेक्टर-५२, नोएडा-२०१३०७

चीन-पाकिस्तान मैत्री हमारी सुरक्षा को सबसे बड़ा संकट

– श्याम कुमारी

भारत की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा संकट है चीन और पाकिस्तान की शैतानी मित्रता। चीन अपने अन्तरराष्ट्रीय समझौतों की अवहेलना करके पाकिस्तान को अणु बम और प्रक्षेपास्त्र बनाने की विधि तथा आवश्यक उपकरण देता रहा और अमरीका इसे अनदेखा करता रहा और **पाकिस्तान की सभी सरकारें चीन के साथ मैत्री करके भारत का संकट बढ़ाती रहीं। उन्होंने चीन को जिस प्रकार की सुविधाएँ दी हैं, उनके कारण एक दिन चीन पाकिस्तान के लिए संकट बन सकता है। हो सकता है कि चीन भारत से संग्राम करने के पूर्व या पश्चात् पाकिस्तान को ही हड़प ले।**

पाकिस्तान और चीन के इस भीषण गठबन्धन का सबसे बड़ा प्रमाण है पाकिस्तान का ग्वादर बन्दरगाह। इस बन्दरगाह के द्वारा पहली बार चीन को अरब सागर में एक सामरिक महत्त्व का जलसेना-अड्डा मिल गया है। चीन श्रीलंका में हंबनटोटा बन्दरगाह बनाने के लिए समझौता कर चुका है और बांगलादेश के चटगाँव बन्दरगाह के लिए सहायता दे रहा है। वह मालदीव में भी बन्दरगाह बनाने में रुचि ले रहा है। यह सब हिन्द महासागर में भारत के परम्परागत क्षेत्र को सीमित करने का प्रयास ही नहीं, वरन् भारत को एक चुनौती, एक खतरा है। २००७ के आरम्भ में जनरल मुशर्रफ ने ग्वादर बन्दरगाह के विस्तार की योजना का उद्घाटन किया। उन्होंने इसे एक 'ऐतिहासिक अवसर' बताया। उन्होंने यह भी घोषित किया, "शीघ्र ही ग्वादर में हमारे चीनी भाई एक आधुनिक हवाई अड्डा बनायेंगे।" इस अवसर पर चीन के सूचना मन्त्री ली शेंगलिन भी उपस्थित थे। चीनी इञ्जीनियर ग्वादर में एक नौसेना अड्डा बना रहे थे। ग्वादर ईरान के समीप है।

चीन भारत को घेरने के लिए कई शिकञ्जे तैयार कर रहा है– प्रथम शिकञ्जा है पश्चिमी चीन से कराकोरम पार करके ग्वादर तक का गलियारा। ग्वादर होरमुज जलडमरू-मध्य के मुहाने पर स्थित है। होरमुज जलडमरू-मध्य में से होकर संसार का ४० प्रतिशत तेल जाता है। दूसरा शिकञ्जा यूनान से बंगाल की खाड़ी तक का गलियारा है, जो रेल, सड़क और नदियों द्वारा बर्मा के कियोकिपु और तलावा में चीन द्वारा निर्मित बन्दरगाहों तक फैला है। इरावदी गलियारे से चीनी सेनाओं का प्रभाव-क्षेत्र मलक्का जलडमरू-मध्य तक आ गया है। नेहरू जी ने १९५० के दशक में बड़ी उदारता दिखाकर कोको द्वीप बर्मा को दे दिये थे। बर्मा ने उन्हें चीन को ठेके पर दे दिया। साथ ही नेहरू जी ने अदूरदर्शिता दिखाते हुए कबाव घाटी की १८,००० वर्ग किलोमीटर भूमि भी बर्मा को दे दी थी। अब चीनियों ने कोको द्वीप में अपने जासूसी के यन्त्र लगा दिये हैं।

चीन का तीसरा गलियारा, तिब्बत से भारत की उत्तरी सीमा तक है। चीन ने ६.२ अरब डॉलर लगाकर गोरमु से ल्हासा तक एक रेलवे लाइन बनायी है, जिससे उसकी भारत के प्रति आक्रमण की शक्ति बहुत बढ़ गयी है। इस रेलवे के द्वारा चीन कुछ ही समय में भारी सैन्य दल लाकर भारत पर आक्रमण कर सकता है। इस रेल के द्वारा चीन अपने अणु प्रक्षेपास्त्र तिब्बत ला सकता है। चीन अपनी इस रेलवे लाइन को चुम्बी घाटी में भारत की सीमा तक लाने की सोच रहा है, जहाँ एक ओर सिक्किम, भूटान और तिब्बत की सीमाएँ मिलती हैं तथा दूसरी ओर अरुणाचल, बर्मा तथा तिब्बत की सीमाएँ मिलती हैं। वह नेपाल में काठमाण्डू तक रेल बनाने की योजना भी बना रहा है, जिससे नेपाल आर्थिक रूप से उसके ऊपर निर्भर हो जाये। **पूर्व-पश्चिम गलियारे की इस योजना के अन्तर्गत चीन भारत की सीमा पर हवाई अड्डे बनाता जा रहा है। अब उसने तिब्बत के दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर नगारी में संसार का सबसे ऊँचा हवाई अड्डा बनाने की योजना बनायी है। इस स्थान की जनसंख्या केवल ६६,००० है। स्पष्ट ही यह सामरिक उद्देश्य से बनाया जायेगा। यह हवाई अड्डा अक्साई चिन क्षेत्र में चीन की सामरिक शक्ति को बढ़ा देगा।**

चीन बार-बार 'मोतियों की एक माला' का उल्लेख करता है। 'मोतियों की एक माला' का यह उल्लेख सबसे पहले पैंटागोन के एक सुरक्षा ठेकेदार बूज आलेन हैमिल्टन ने किया था। इसके अनुसार **चीन अपने द्वारा निर्मित इन बन्दरगाहों में, जो पाकिस्तान से श्रीलंका, बांग्लादेश और बर्मा तक फैले हैं, अपने जासूसी यन्त्र लगा देगा।** अब चीन

सेशेल्स द्वीप समूह में भी रुचि लेने लगा है, जिसे कुछ माह पूर्व ह्यू जिंताओ ने 'हिन्द महासागर का एक चमकता हुआ मोती' कहा था। ग्वादर बंदरगाह इस 'माला' का सबसे महत्त्वपूर्ण मनका है। बरसों से चीन भारत को घेरने के लिए बन्दरगाहों की यह शृंखला बना रहा है। यह बन्दरगाह काराकोरम मार्ग के लिये भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। अब ग्वादर–दलबंदिन योजना के अन्तर्गत चीन रावलपिण्डी तक रेल बनायेगा। बेइजिंग ने एक योजना बनानी आरम्भ कर दी है, जिसके अन्तर्गत पाकिस्तान से खुंजेरब दर्रे में होकर काशगर तक कराकोरम सड़क के समानान्तर रेल बनेगी।

पहले ग्वादर मछियारों का एक गाँव था, जहाँ मुशर्रफ के अनुसार "धूल और रेत के अतिरिक्त कुछ नहीं था।" चीन की सबसे बड़ी अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी सूचना एजेंसी के अनुसार "ग्वादर चीन की सबसे बड़ी फसल है।" चीन का इस बन्दरगाह पर बहुत नियन्त्रण है। चीन इस योजना को इतना महत्त्व देता है कि बिलोचिस्तान में फैली अराजकता और चार चीनी इंजीनियरों की हत्या के बाद भी चीन ने अपना कार्य चालू रखा। शंघाई के बन्दरगाह से काशगर जितनी दूर है, ग्वादर उससे आधी दूरी पर है। चीन ग्वादर से अपने जिनजियांग प्रान्त तक गैस लाइन बनाने की योजना बना रहा है। चीन ग्वादर से खाड़ी के देशों और अफ्रीका से तेल लाना चाहता है, जिससे तेल लाने की कीमत और आने का समय भी कम हो जायेंगे और चीन की तेल के विषय में अमरीका के ऊपर निर्भरता भी कम हो जाये। ग्वादर हिन्द महासागर तथा खाड़ी के देशों तक चीन की शक्ति का विस्तार करेगा। चीन ने ईरान और बर्मा के साथ ऊर्जा-समझौते कर लिये हैं।

भारत ने १९७१ के युद्ध में पाकिस्तानी बन्दरगाहों की नाकाबन्दी कर दी थी। २००० तक पाकिस्तान ने ग्वादर तथा ओरमारा के मध्य में एक छोटा-सा नौसेना-अड्डा बनाया था। तीन ओर से पर्वतमालाओं से घिरे ग्वादर बन्दरगाह के बनने के बाद भारत के लिए १९७१ के समान नाकाबन्दी करना सम्भव नहीं होगा।

पाकिस्तान इस बन्दरगाह के द्वारा भारत की शक्ति को चुनौती दे रहा है। इससे कुछ माह पूर्व अमरीका ने अफगानिस्तान को स्वतन्त्र कराने के लिए पाकिस्तान के हवाई-अड्डों का उपयोग किया था। चीन ने पाकिस्तान से समझौता कर लिया है कि उसे ग्वादर के उपयोग के लिए "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न अधिकार" (सॉवरेन राइट्स) दिये जायेंगे। इस बन्दरगाह को चलाने का ठेका सिंगापुर की पी. एस.ए. इण्टरनेशनल को दिया गया, जिसका बेइजिंग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ग्वादर में नौ-सेना अड्डे के अतिरिक्त एक आधुनिक वायुसेना अड्डा, एक सैनिक गैरीसन, चीन द्वारा निर्मित एक विशाल तेल-रिफाइनरी तथा तेल भाण्डार भी
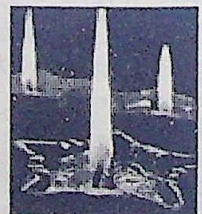
होगा। चीन ने ग्वादर में एक बेतार श्रवण अड्डा बना दिया है। ग्वादर चीन का एक प्रमुख नौ–सेना अड्डा बन गया है। कुछ वर्षों में वहाँ चीनी पनडुब्बियाँ आने लगेंगी। चीन ग्वादर से भारत और अमरीका की नौ–सेना की गतिविधियों पर निगाह रख सकेगा; किन्तु बिलोचिस्तान में बढ़ रही विद्रोही गतिविधियों से इस बन्दरगाह के अस्तित्व को संकट हो सकता है, इस कारण मुशर्रफ ने विद्रोहियों को चेतावनी दी थी कि अगर वे तोड़–फोड़ करेंगे, तो उनका अस्तित्व ही समाप्त कर दिया जायेगा। पाकिस्तान ने चीन के साथ एक ऊर्जा गलियारा (एनर्जी कोरिडोर) बनाने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। ऐसा ही एक समझौता (मैमोरैंडम ऑफ अण्डरस्टैंडिंग) चीन ने बर्मा के साथ किया है, जिसके तहत चीन के व्यापारी संस्थान राखिने प्रान्त की राजधानी में एक बड़ा बन्दरगाह बना रहे हैं। **इतिहास गवाह है कि चीन जिन योजनाओं को आरम्भ में व्यावसायिक कहता है, वे बाद में सामरिक हो जाती हैं। चीन ने कराकोरम राजमार्ग का पाकिस्तान को अणु बम तथा प्रक्षेपास्त्र देने के लिए उपयोग किया। श्रीलंका में हंबनटोटा नामक स्थान पर चीन द्वारा ४७५,०००,००० डॉलर की लागत से जो बन्दरगाह बनाया जा रहा है, वह तो स्पष्ट ही सामरिक उपयोग के लिए है।**

भारत को हिन्द महासागर में अपना प्रभुत्व सुरक्षित रखना होगा, अन्यथा एशिया पर चीन का वर्चस्व हो जायेगा। पाकिस्तान तो चीन का प्रभुत्व चाहता ही है। भारत चीन के सामने झुकता जाता है, इससे चीन के हौसले बढ़ते ही जा रहे हैं। स्पष्ट ही भारत को ग्वादर के चीन द्वारा सामरिक उपयोग का विरोध करना ही चाहिए, अन्यथा हमें अरब महासागर और बंगाल की खाड़ी में चीनी नौ-सेना का सामना करना पड़ेगा।

मई २००७ में अमरीका के राज्य विभाग की एक संस्था कांग्रेशनल रिसर्च सर्विस ने ६५ पृष्ठ की एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के अनुसार **२०१० तक चीन की पनडुब्बियों की संख्या अमरीका की पनडुब्बियों से लगभग दुगुनी होगी तथा सन् २०१५ तक चीन का समुद्री बेड़ा सम्भवतः अमरीका के समुद्री बेड़े से अधिक बड़ा हो जायेगा। चीन समुद्री सैन्य शक्ति को इतना महत्त्व देता है कि चीनी दूरदर्शन इंगलैंड की रानी एलिजाबेथ प्रथम के काल में नौसेना के विकास के कार्यक्रम दिखाता है। नौसेना विशारदों का मत है कि चीन प्रशान्त महासागर में अमरीका के वर्चस्व को चुनौती देना चाहता है।**

दशकों से भारत और चीन की सीमा से सम्बन्धित विवादों को मिटाने के लिए दोनों देशों के प्रतिनिधि बार-बार वार्त्ता कर रहे हैं। दोनों देशों के मध्य इस प्रकार की वार्त्ताएँ विगत कई दशकों से समय-समय पर होती रही हैं। इन वार्त्ताओं से किसी समस्या का समाधान नहीं हुआ हैं; क्योंकि इन वार्त्ताओं में चीन इस नियम का पालन कर रहा है कि वार्त्ता का उद्देश्य विवाद को हल करना नहीं; वरन् विपक्षी को उलझाये रखना है। इसका लक्ष्य है एक ओर भारत से मैत्री का बहाना करना तथा दूसरी ओर अपनी सैन्य-शक्ति का विस्तार करके भारत को डराना। चीन का उद्देश्य स्पष्ट है कि भारत के जिन क्षेत्रों को उसने अपना लिया है, उन पर उसके अधिकार को भारत से मनवाना और बदले में जिन भारतीय क्षेत्रों पर वह झूठा दावा करता है, उस दावे को वापस ले लेना। चीन और भारत संसार के एकमात्र देश हैं जिनकी ४,२५७ किलोमीटर की सीमाएँ विवादास्पद हैं। चीन समय-समय पर अरुणाचल प्रदेश और तवांग पर अपना दावा करता रहता है। **भारत ने जिस प्रकार तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व स्वीकार किया, वह एक भयंकर और लज्जाजनक भूल थी। भारत एक बार चीन से हारा अवश्य था; किन्तु भारत को अपने भय पर विजय पानी होगी और तिब्बत के पक्ष में आवाज उठानी होगी, अन्यथा चीन के दावे बढ़ते ही जायेंगे।**

चीन हमारा सीमा-विवाद इसलिए भी हल नहीं करना चाहता कि विवाद की स्थिति में भारतीय सेनाओं पर दबाव रहेगा। दूसरे वह असम के प्रवेशद्वार तवांग को हड़पना चाहता है। कुछ समय पूर्व रक्षा मन्त्री एण्टोनी सीमा प्रान्तों के दौरे पर गये, तो चीन द्वारा भारत की सीमा तक बनाई हुई सड़कें देखकर स्तब्ध हो गये। उन्हें होश आया कि हम कितने बेखबर एवं लापरवाह रहे। □

– श्री अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी

कुँ. अजय सिंह फैन्स एसोसिएशन, उन्नाव

पवित्र नदी गंगा

गंगा एक पवित्र प्रवाह है- मात्र जल का ही नहीं- आस्थाओं का, जीवन मूल्यों का और सदा नीरा भारतीय संस्कृति का। गंगा हिमालय से निकला कोई ग्लेशियर मात्र नहीं है- उसका स्वर्ग से धरा पर अवतरण हुआ है। वह तो महान राजा भगीरथ और उनकी तीन पीढ़ियों की तपस्या का सुफल है- प्रसाद है। गंगा जहाँ पर उतरी थी- वही स्थान गंगोत्री (गंगा+उतरी) कहा जाता है। हिमवान की गोद से निकल कर गंगा सागर तक की यात्रा करती हैं। लगभग २५०० किलोमीटर के इस यात्रा मार्ग में लगभग २२५ कस्बे नगर और महानगर पाये जाते हैं। गंगा ने जिस स्थल को भी स्पर्श किया- वही तीर्थ बन गया। ज्ञान, संस्कृति और संतों के सर्वाधिक आश्रम आज भी गंगा तटों पर पाये जाते हैं। उद्योग धंधे, नगर और कृषि की दृष्टि से भी गंगा का मैदान बहुत समृद्ध है। गंगा माँ भारत की प्राणधारा हैं।

यदि आप भविष्य में कुछ नेक कार्य करना चाहते हैं, तो आइये-बनिये कुँवर अजय सिंह फैन्स एसोसिएशन के सदस्य और करिये कुछ नेक कार्य।

कुँवर अजय सिंह फैन्स एसोसिएशन के प्रमुख उद्देश्य एवं जनोपयोगी कार्य

• निर्धन कन्याओं के विवाह में सार्वजनिक विवाह संस्कार आयोजन करके पूर्ण एवं आंशिक सहयोग करना। • निर्धन विद्यार्थियों को आर्थिक स्थिति के अनुसार शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था उपलब्ध कराना। • निर्धन व्यक्तियों के इलाज की तत्काल उचित व्यवस्था उपलब्ध कराना। • निर्धन व्यक्ति के मरणोपरान्त अन्तिम संस्कार की व्यवस्था उपलब्ध कराना। • विकलांगों व मूक बधिरों हेतु शिक्षा अभियान चलाकर शिक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराना। • वृद्ध व निःसहाय व्यक्तियों को जीवन यापन सामग्री व दवायें उपलब्ध कराना।

सौजन्य से

डॉ. हरिवंशराय बच्चन महाविद्यालय उन्नाव

(M.A., MSc., MBA, MCA, M.Com)

एम. फिल. व पी-एच.डी. हेतु सम्पर्क करें।

कुँवर अजय सिंह विधि महाविद्यालय, उन्नाव

L.L.B., L.L.M. हेतु सम्पर्क करें।

फोन : 0515 : 2840513, 2840514, 2840515

मो. 9721253369, 8953155288

प्रमुख समाजसेवी

कुँवर अजय सिंह

चीन की घुसपैठ जारी अरुणाचल बचायें

– पी. थंगन (भूतपूर्व मुख्यमन्त्री, अरुणाचल प्रदेश)

(अरुणाचल की समस्या के विषय में अरुणाचल के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री पी. थंगन ने एक लेख लिखा था। यह एक अरुणाचलवासी की हृदयविदारक तथा नेत्र खोलनेवाली पुकार है; किन्तु भारत सरकार तो कान में तेल डालकर बैठी है। हम श्री पी. थंगन का यह लेख प्रस्तुत कर रहे हैं।– सम्पादक)

"मैं चाहता हूँ कि मैंने अरुणाचल के स्थान पर कश्मीर में जन्म लिया होता। इसका कारण यह नहीं है कि मैं अपने राज्य से प्रेम नहीं करता। वास्तव में इसके प्रति मेरे प्रेम की कोई सीमा ही नहीं है। यह देश के किसी भी भाग के समान चित्रोपम है। मेरी शिकायत है कि इसके प्रति संकट को कोई, विशेषतया मीडिया (समाचारपत्र तथा दूरदर्शन आदि), गम्भीरता से नहीं लेता। जिस भी क्षण पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर के विषय में अपना मुँह खोलता है, पूरे देश में हंगामा मच जाता है। कम-से-कम अभी तक तो ऐसा ही हुआ है।

"हमारे पड़ोस में चीनी नागदैत्य (ड्रैगन) है। वह जब भी, जैसे भी चाहता है, अपने पंख फैलाने लगता है। हम चिन्तित होते हैं, हम पुकारते हैं 'यह अनुचित है।' किन्तु एक भी शब्द कहीं प्रकाशित नहीं होता, कहीं कुछ प्रसारित नहीं होता।

"अधुनातम घटना स्वतः स्पष्ट है। ३१ जनवरी, २००८ को प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह अरुणाचल प्रदेश गये। राज्य के अपने दौरे के समय यह समुचित ही था कि उन्होंने कहा कि अरुणाचल प्रदेश 'उगते सूर्य की हमारी भूमि' है। एक सप्ताह बाद चीन ने आपत्ति की। वह अरुणाचल को अपने देश का अंग मानता है। मैंने चीनी प्रतिक्रिया की भर्त्सना करते हुए एक बयान दिया; किन्तु हमारे समाचारपत्रों तथा दूरदर्शन के समाचार चैनलों ने उसकी पूरी उपेक्षा कर दी।

"मैं एक भूतपूर्व मुख्यमन्त्री तथा केन्द्रीय मन्त्री रह चुका हूँ और संसद् में अरुणाचल का प्रतिनिधित्व करने के बाद मैं अनुभव करता हूँ कि मेरी प्रतिष्ठा ऐसी है कि मेरी बात सुनी जाये, उस पर ध्यान दिया जाये।...

"...अभी तो मैं क्रुद्ध हूँ कि मेरे देशभक्ति से पूर्ण उद्गारों को अनदेखा कर दिया गया। मैंने सदैव से ही माना है कि चीन का मेरे राज्य पर, जो भारत का भाग है, कोई दावा नहीं है। ऐतिहासिक प्रमाण मेरी इस मान्यता की पुष्टि करते हैं।

"मैं बहुत खुश हूँ कि केन्द्रीय सरकार ने इस विषय में एक सुस्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया है। लोकसभा में सरकार द्वारा दिया गया एक लिखित उत्तर स्वतः स्पष्ट है : 'चीन ने सरकार के साथ प्रधानमन्त्री की अरुणाचल यात्रा के विषय को उठाया है। चीनी पक्ष को यह बता दिया गया है कि अरुणाचल भारत का एक भाग है। चीन भारत तथा चीन के बीच की अन्तरराष्ट्रीय सीमा पर विवाद करता है और गैर कानूनी ढंग से अरुणाचल राज्य में भारत की लगभग ६०,००० वर्ग किलोमीटर भूमि पर दावा करता है। भारत और चीन के विशेष प्रतिनिधि एक ऐसे सीमा-समझौते के विषय में विचार-विमर्श कर रहे हैं जो न्यायोचित, तर्कसंगत तथा दोनों पक्षों को स्वीकार होगा और अप्रैल २००५ को जो समझौता हुआ था, उसके निर्देशक सिद्धान्तों और राजनैतिक पैरामीटर पर आधारित होगा।'

"मैं अपने एक अप्रकाशित बयान का उद्धरण दे रहा हूँ, जो मैंने प्रधानमन्त्री की अरुणाचल यात्रा के तुरन्त बाद दिया था : 'बस; बहुत हो गया। चीनियों का भारत के आन्तरिक मामलों में, विशेषतया अरुणाचल के सन्दर्भ में, किये गये हस्तक्षेप का, पूरा-पूरा विरोध होना चाहिए। प्रधानमन्त्री को देश के किसी भी भाग में जाने का पूरा-पूरा अधिकार है। चीन को ऐसे विषयों में अपनी गन्दी नाक घुसाने का कोई अधिकार नहीं है। सारी दुनिया को ज्ञात है कि वे अपने वादों से मुकर जाते हैं। वे अविश्वसनीय तथा कायर हैं।'

"मैंने इंगित किया है कि २००५ के समझौते में एक धारा यह है : 'सीमा-समझौता हो जाने पर दोनों पक्ष अपनी सीमा-प्रान्तीय बसी हुई जनता के हितों की रक्षा करेंगे।' स्पष्टतया चीनी इसका पालन नहीं करना चाहते।

"यदि चीन ऐसे समझौते की, जिस पर केवल तीन वर्ष पूर्व हस्ताक्षर हुए थे, ऐसी अवज्ञा कर सकते हैं, तो इसमें
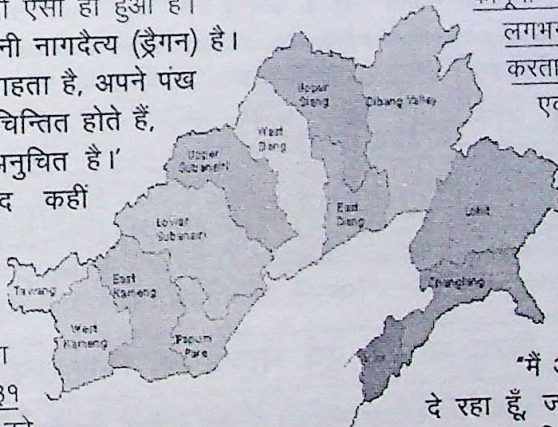
आश्चर्य की कोई बात नहीं कि, विशेषतया तवांग घाटी को निगलने के लिए अपनी उत्सुकता में, वे सन् २००० में हुए समझौते को भूलने का बहाना करते हैं।

"किन्तु यह इतिहास का एक भाग है कि ३ जुलाई १६१४ को ब्रिटिश विदेश सचिव सर हेनरी मैकमोहन ने और तिब्बत की सरकार के प्रतिनिधि लोंचेन शास्त्रा ने शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। उन्होंने मैकमोहन रेखा को स्वीकार किया था, जिसके अनुसार तवांग, सरकारी रूप से दोनों देशों के बीच की सरकारों से स्वीकृत सीमा के रूप में ब्रिटिश भारत को मिलता है। मैकमोहन सीमा को तिब्बत और भारत के बीच की सीमा के रूप में दिखानेवाला नक्शा भारत के सर्वे विभाग ने सन् १६३७ में प्रकाशित किया था। १६४४ में ब्रिटिश सरकार ने उस क्षेत्र में अपना शासन स्थापित किया, जो स्वतन्त्र भारत का एक अंग बन गया। १६४७ में शिमला में चीन के प्रतिनिधि भी थे। उन्होंने इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये थे; किन्तु उसका अनुमोदन नहीं किया था।

सर हेनरी मैक्मोहन

"चीन की समस्या है कि उसने कभी तिब्बत को स्वीकार नहीं किया। इसका दोष हमें किस प्रकार दिया जा सकता है ? और कुछ भी हो, चीन इस वास्तविकता को अनदेखा कैसे कर सकता है कि तवांग के निवासी अन्य अरुणाचलवासियों की तरह अपने को भारत का एक अविभाज्य अंग मानते हैं ?

"महाभारत में अरुणाचल प्रदेश का उल्लेख है। इसके कुछ भाग अहोम राज्य का अंग थे, यह बुरांजिस (अहोम् ऐतिहासिक अभिलेखों) से भी सिद्ध हो जाता है। अहोम् शासकों ने १२२८ से १८२६ तक राज्य किया था। उनका साम्राज्य 'आसाम' (अब असम) और उनके नागरिक 'आसामीज' या 'एक्सोमिया' कहलाते थे।

"अरुणाचल में बहुत-से स्थानीय सरदार थे। मैं स्वयं भी एक ऐसे परिवार का वंशज हूँ। तवांग के भी अपने सरदार थे। मैं फिर से अपने अप्रकाशित बयान से उद्धृत करना चाहूँगा, 'इतिहास के अनुसार सदियों तक अरुणाचल प्रदेश में बहुत से स्वतन्त्र स्थानीय राजा और परिषदें थीं। ब्रिटिश चढ़ाई के पूर्व वे सर्वसत्ता-सम्पन्न थे और स्वतन्त्रता के बाद वे भारत का अविभाज्य अंग बन गये। अब समय हो गया है कि हम चीन के टर्राने पर रोक लगायें। वे न केवल धोखेबाजी की और भारत सरकार को धमकाने की चेष्टा कर रहे हैं, वरन् वे अरुणाचल की जनता को भ्रमित करने की ओर

चीन को बेनकाब करना जरूरी

– प्रो. श्यामनाथ मिश्र

अमरीका की कांग्रेसनल रिसर्च सर्विस की कुछ समय पूर्व छपी एक स्वतन्त्र रिपोर्ट में कहा गया है कि अमरीका-चीन सम्बन्धों में तिब्बत सबसे संवेदनशील मुद्दा है; क्योंकि चीन पूरी कोशिश करता है कि दलाई लामा को विश्व के नेताओं से नहीं मिलने दिया जाये। वर्ष १९८९ में नोबल पुरस्कार तथा २००६ में अमरीका कांग्रेस के स्वर्णपदक से सम्मानित दलाई लामा से अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा फरवरी २०१० तथा जुलाई २०११ में सद्भावपूर्ण वार्त्ता कर चुके हैं। चीन सरकार दलाई लामा को अलगाववादी मानती है; क्योंकि उसके अनुसार वे तिब्बत को चीन से स्वतन्त्र कराने की लड़ाई लड़ रहे हैं तथा तिब्बतियों को भड़का रहे हैं। इस प्रकार **चीन की सरकार, जो तिब्बत पर अवैध कब्जा किये हुए है, तिब्बती आन्दोलनकारियों के ऊपर क्रूरतापूर्ण अत्याचार कर रही है। अभी भी तिब्बत में आत्मबलिदान का क्रम जारी है। चीनी दमन के शिकार तिब्बती आत्मदाह एवं आत्महत्या के जरिये अपने जीवन का तिब्बत के लिए बलिदान कर रहे हैं। यह बहुत ही दुःखद स्थिति है।** तिब्बतियों के चीनी दमन तथा चीन द्वारा तिब्बत के इतिहास को विकृत करने के प्रयास को रोकना ही होगा।

अभी नयी सरकार को चीन के साथ रचनात्मक वार्त्ता करनी है, जबकि चीन की सरकार मामले को उलझाये रखना चाहती है। **चीन को बेनकाब करना जरूरी है। चीन की सरकार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर तिब्बत के सम्बन्ध में अफवाहें गढ़ने और अफवाहें फैलाने में लगी है। वह धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) स्थित तिब्बत की निर्वासित सरकार को ही वार्त्ता की राह में रुकावट बता रही है, जबकि तिब्बत सरकार बार-बार कह रही है कि वह चीन के साथ सार्थक संवाद के लिए हर जगह और हर समय तैयार है। चीन सरकार तिब्बतियों में निहित लोकतान्त्रिक मूल्यों से भयभीत है।**

चीन की साम्राज्यवादी सरकार अपने सभी पड़ोसी देशों को आतंकित-पीड़ित किये हुए है। अन्तरराष्ट्रीय कानून, मानवाधिकार तथा शान्ति, अहिंसा, न्याय और समानता की उपेक्षा करना उसका स्वभाव है। विश्व जनमत की उपेक्षा करते हुए वह तिब्बत में कर्मापा, पञ्चेन लामा आदि परम्परागत आध्यात्मिक पदों को कलंकित एवं विवादग्रस्त करने लगी है। तिब्बत में सांस्कृतिक-आध्यात्मिक स्थलों एवं वस्तुओं का चीन द्वारा विनाश जारी है। चीन की सरकार तिब्बत में पर्यावरण को तहस-नहस कर रही है। तिब्बत में पर्यावरण पर संकट वस्तुतः समस्त विश्व के लिए संकट है।□

– पत्रकार एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खेतड़ी (राज.)

इस प्रकार अरुणाचल को अस्थिर करने की कोशिश कर रहे हैं। विशेषतया हम अरुणाचलवासियों को हमें हानि पहुँचाने की उनकी योजनाओं के विषय में सचेत होना चाहिए। वे लोगों के मनों में भ्रम उत्पन्न करके हमारे युवकों को अलगाववादी और आतंकवादी बनने के लिए उकसा रहे हैं। हमें सावधान रहने की आवश्यकता है। हमें अब और सहन नहीं करना चाहिए।

"वर्तमान स्थिति यह है कि चीनी बारम्बार छापे मार रहे हैं। उन्होंने तिब्बत और अरुणाचल के मध्य में प्रथमकोटि की अवसंरचना का (इन्फ्रास्ट्रक्चर का), मुख्यतया सड़कों का विकास किया है। उनका सड़कों का जाल हमारे से अच्छा है। इस तथ्य को रक्षामन्त्री ए.के. एण्टोनी तथा सेनाध्यक्ष दीपक कपूर (अब सेवा-निवृत्त– सं.) ने भी स्वीकार किया है। **यह कहना आवश्यक है कि अरुणाचल के निवासी अन्ततम तक देशभक्त हैं। चाहे गान्धी जी कभी राज्य में नहीं आये; किन्तु अरुणाचल में वे अति सम्मानित व्यक्ति हैं। ऐसे ही जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गान्धी तथा राजीव गान्धी भी सम्मानित हैं।**

"मैं दो प्रस्ताव करता हूँ : (१) हमें बड़े पैमाने पर विकास कार्य आरम्भ करने चाहिए। बहुत उच्चकोटि का इन्फ्रास्ट्रक्चर बनाया जाये, और (२) अधिक आवश्यक है कि अरुणाचल में और सारे देश में चीनियों के इरादों के विषय में एक जानकारी अभियान आरम्भ होना चाहिए। यह एक जन-आन्दोलन हो। यह पूर्णतया आवश्यक है कि देशवासियों को देश के एक अञ्चल में घिर आये संकट से परिचित कराया जाये, चाहे वह अञ्चल कितना ही दूर क्यों न हो। उन्हें किसी भी आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

"हमारी सेना उत्तम कार्य कर रही है। उनके कर्तव्य सुनिश्चित हैं। हम भी चीनी प्रचार और उनकी धोखा धड़ी का खण्डन करके अपना योगदान दे सकते हैं।

"पूर्ण नम्रता के साथ मैं सोचता हूँ कि अपने विशद अनुभव के कारण मैं ये सुझाव देने की योग्यता रखता हूँ। सन् १९७२ से ही मैं उस क्षेत्र में कांग्रेस के एक सदस्य के रूप में राजनीतिक रूप से सक्रिय रहा हूँ, जिससे मेरे क्षेत्र में देशभक्ति का उत्साह बढ़ा है। एक स्थानीय काउंसिलर से बढ़कर मैं राज्य के मुख्यमन्त्री तथा केन्द्रीय मन्त्री के पद तक पहुँचा हूँ। मुझे १९८७ में अरुणाचल के एक अलग राज्य के रूप में निर्माण के विषय में अपने विनम्र योगदान का सदा स्मरण रहा है। राष्ट्र-निर्माण के कार्य के लिए यह आवश्यक है कि जब हम आर्थिक विकास के लिए हर सम्भव प्रयास करें, उसी के साथ हम अपनी सीमाओं पर भी एक दृष्टि रखें।" □

– ईटा नगर (अरुणाचल प्रदेश)

तावाङ् या तवाङ् मठ

अरुणाचल प्रदेश में स्थित तवाङ् मठ भारत के बौद्ध मठों में सबसे विशाल है। इसकी स्थापना मेराक लामा लाड्रे ग्यारत्तो द्वारा १६८०–८१ शती में पाँचवें दलाई लामा की इच्छानुसार की गयी थी। १६६७ में इसका नवीकरण चौदहवें दलाई लामा (वर्त्तमान परम पावन दलाई लामा जी) द्वारा किया गया। यह तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुगम्पा पन्थ से है, जिसमें १७ गोम्पा (विद्यापीठ) हैं और भिक्षुओं की संख्या ४५० है। इसके परिसर में ६५ आवासीय तथा १० अन्य भवन हैं। यह तिब्बत की राजधानी ल्हासा के ड्रेपुङ् मठ से सम्बद्ध है; ब्रिटिश शासन-काल में यह सम्बद्धता जारी रही। यह तिब्बत की सीमा के एकदम समीप तिब्बत से निकलने वाली तवाङ् चू नदी की घाटी में स्थित है। मठ त्रितलीय है और १४० मीटर क्षेत्र में है, जिसकी चहारदीवारी ६१० मी. लम्बी है।
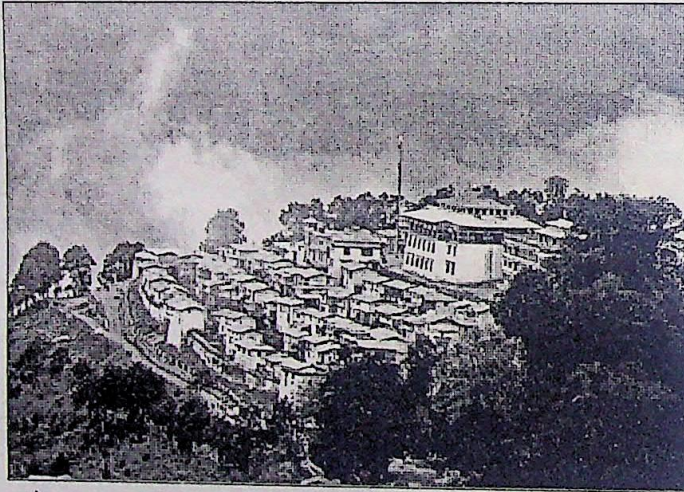
महायान सम्प्रदाय का एशिया में सबसे बड़ा मठ है तवाङ्, जिसे तिब्बती भाषा में 'गाल्देन नांग्ये ल्हात्से' कहते हैं– अर्थ है 'निर्मल रात्रि में दिव्य स्वर्ग।'

यह जिला मुख्यालय में १०,००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इसमें सात सौ भिक्षु रह सकते हैं। इसे ल्हासा के बाहर विश्व का विशालतम मठ माना जाता है। इसमें त्रितलीय पारखङ् पुस्तकालय है, जहाँ ४०० वर्ष प्राचीन 'कञ्जूर' धर्मग्रन्थों के संग्रह सहित अनेकानेक अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। अन्य संग्रहों में सूत्रों के अतिरिक्त तङ्ग्यम्, सुङ्भुम् तथा प्राचीन ग्रन्थ हैं। कुछ स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। पर्व-समारोहों में सबसे महत्त्वपूर्ण समारोह बुद्ध पूर्णिमा (वैशाख पूर्णिमा) की रात्रि में नृत्यादि के साथ मनाया जाता है।

शाक्यमुनि बुद्ध की आठ मीटर ऊँची प्रतिमा तवाङ् गोम्पा में स्थित है।

क्षेत्र के सत्रह गोम्पाओं तथा कुछ साध्वी आवासों का नियन्त्रण इस मठ के अधीन है।

इस मठ की स्थापना की कथा भी बड़ी रोचक है। मेराग (या मेराक) लामा यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि अपना इच्छित मठ किस स्थान पर स्थापित करें। एक दिन जब वह एक गुफा में दैवी निर्देश प्राप्ति हेतु प्रार्थनारत थे, तो गुफा से बाहर आने पर उनका अश्व गायब था। जब वे उसे ढूँढ रहे थे, तो वह एक ऊँची पहाड़ी की चोटी पर खड़ा दिखायी पड़ा। इसे उन्होंने दैवी संकेत और आशीर्वाद मानकर उसी स्थल पर इस विशाल मठ का निर्माण आसपास के ग्रामवासी स्वयंसेवकों के सहयोग से कराया और नाम रखा तावाङ् या तवाङ्। तिब्बती भाषा में इस नाम की व्याख्या है ता = अश्व, वाङ् = चयनित अर्थात् 'अश्व चयनित' और इस प्रकार मेराक लामा ने अपने उस अश्व को इस मठ के नाम के साथ ही अमर कर दिया। □

तवाङ् मठ (अरुणाचल प्रदेश)

ग्रामीण विकास विभाग, मध्यप्रदेश
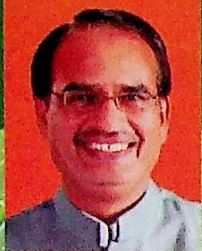
लाभान्वित जिले

धार, झाबुआ, बड़वानी
अलीराजपुर, श्योपुर, मण्डला,
डिण्डोरी, शहडोल,
और अनुपपुर

आदिवासी बहुल नौ जिलों के 2.83 लाख
परिवारों के जीवन में सार्थक बदलाव।
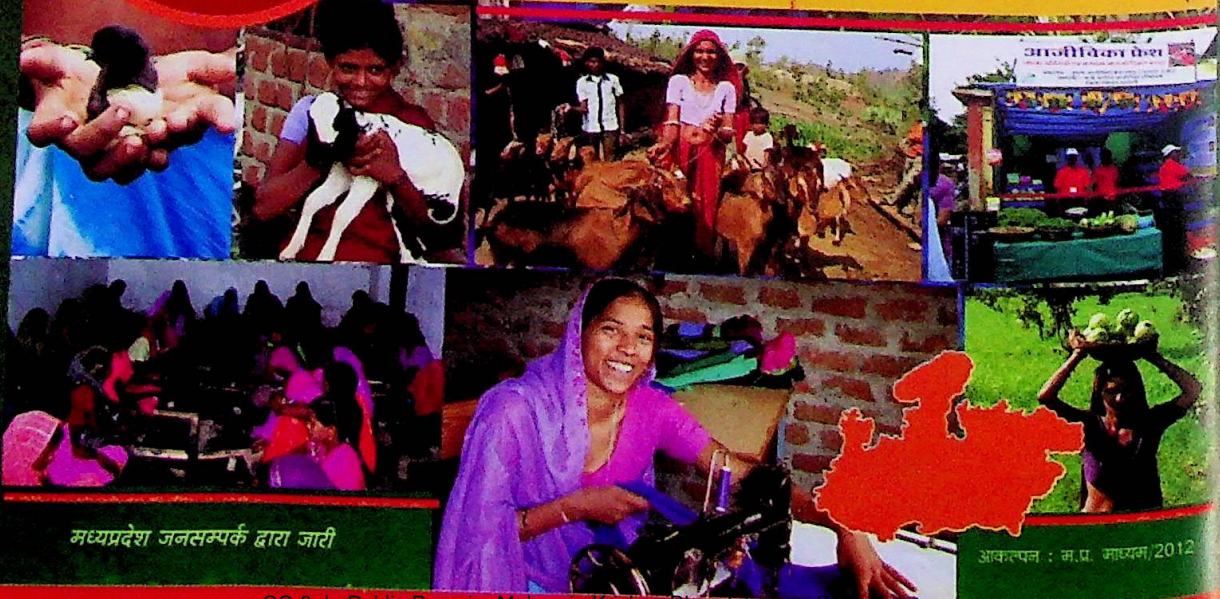
हिन्दुआ सूर्य, सिसोदिया कुलभूषण श्री ५ पृथ्वीनारायण शाह

— देवदत्त

पृष्ठभूमि— राजस्थान के मेवाड़ में सूर्यवंशी सिसोदिया कुल ने अवध से गुजरात के सूर्यराष्ट्र, सौराष्ट्र और वहाँ से बाप्पा रावल के युग में चित्तौड़ आकर शासन प्रारम्भ किया था। सन् १३०३ में रतन सिंह रावल की सिंहली पत्नी पद्मिनी के रूप की बड़ी ख्याति हुई और कामान्ध होकर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर हमला किया था। पराजय निश्चित जानकर पद्मिनी तो जौहर करके सती हो गयी थी। पुरुषों ने केसरिया कर लिया था और वंश-रक्षा के लिए समर सिंह ने सबसे छोटे पुत्र रावल कुम्भकर्ण को गुप्त दरवाजे से भगा दिया था और वे कुछ राजपूतों के साथ छिपते-छिपाते गोरखा पहुँच गये।

पृथ्वीनारायण शाह

उस समय वर्त्तमान भारत, नेपाल और तिब्बत की सीमाओं का अस्तित्व नहीं था। सेना और संस्कृति के धरातल पर ही समस्याओं का समाधान होता था। नेपाल था अवश्य; क्योंकि विदेह जनक के पूर्वज निमि द्वारा पालित राज्य को नेपाल कहा जाता था। रावल कुम्भकर्ण केवल घोड़ा और तलवार लिये उस दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचे, तो पहले शक्ति-सञ्चय और फिर राज्य-विस्तार करते रहे।

माना जाता है कि उन्होंने पहले रिडी और फिर भीरकोट को अपना केन्द्र बनाया था। आगे हरिहर सिंह और अजय सिंह ने स्वतन्त्र राज्य बनाये थे। तत्कालीन मुगल सूबेदार से उन्होंने खाँ की उपाधि भी प्राप्त की थी। मुगलों का सामना करने में असमर्थ होने के कारण इन्होंने उनसे मित्रता रखी थी, पर अपने राज्यों में गोवध पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। इनमें अजय सिंह की शाखा के कुलमण्डन ने दिल्ली के बादशाह से शाह उपाधि प्राप्त की थी और इसके बाद इस कुल के सभी लोग शाह उपाधि का प्रयोग करने लगे थे। कुलमण्डन शाह के पुत्र यशोब्रह्म शाह लमजुङ् राज्य में दत्तक (गोद) आये और इनके छोटे पुत्र द्रव्य शाह ने गोरखा विजय कर गोरखा को अपनी राजधानी बनाया। सीसोदिया वंश की यही शाखा प्रसिद्ध हुई।

इनकी मृत्यु के पश्चात् राम शाह राजा हुए। इनके पहले पूर्णेन्दु शाह और छत्र शाह अल्पकाल के राजा थे। राम शाह ने उदयपुर के महाराणा से सम्पर्क करके वंशावली प्रमाणित करायी थी। इनके पश्चात् डम्बर शाह, कृष्ण शाह, रुद्र शाह, पृथ्वीपति शाह, नरभूपाल शाह राजा हुए।

राजा नरभूपाल शाह द्रव्य शाह की दसवीं पीढ़ी में थे। इन्हीं की मँझली रानी कौसल्या के गर्भ से सन् १७२२ में पृथ्वीनारायण शाह का जन्म हुआ था। उनका लालन-पालन बड़ी महारानी चन्द्रप्रभा के द्वारा हुआ था। तब गोरखा राज्य की सीमा वर्त्तमान तिब्बत तक थी। हिमालय का विस्तृत भाग गोरखा राज्य में था। पृथ्वीपति शाह के युग में ही सेना का आधुनिकीकरण हो चुका था।

महारानी चन्द्रप्रभा संन्यासिनी की तरह जीवन व्यतीत करती थीं। उन्होंने पृथ्वीनारायण को शस्त्र और शास्त्र में प्रवीण करने के लिए कठोर प्रबन्ध किया था। कहा जाता है कि एक बार जब वे गायों का निरीक्षण करने गये थे, तो उन्हें योगीराज गोरखनाथ के दर्शन हुए और उन्होंने कुछ भोजन माँगा था। दही देने पर योगिराज ने दही मुँह में रखा और फिर निकाल कर देने पर पृथ्वी नारायण से खाया नहीं गया और जूठा दही पैरों पर गिर पड़ा। इस पर गोरखनाथ ने कहा कि यदि तुम प्रसाद ग्रहण कर लेते, तो चक्रवर्त्ती राजा होते, पर अब तुम्हारे पैर जहाँ तक पहुँचेंगे, वहाँ तक तुम्हारी विजय होगी। यह कथा सेना के मनोबल को बढ़ाने के लिए बहुत काम की सिद्ध हुई थी।

> **मेरा साना ढुषले आर्ज्याको मुलुक होइन।**
> **सबै जात को फूलबारी हो, सबै लाइ चेतना भया।।**
> (श्री ५ बड़ा महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण शाह की पुस्तक 'दिव्य उपदेश' से)
>
> **भावार्थ—** मेरा छोटा-सा क्षेत्र आर्य राष्ट्र बन जाय। यह सभी जातियों, वर्णों की फुलवारी हो। सभी चेतना-सम्पन्न बनें।

युवक होने पर पृथ्वीनारायण का प्रथम विवाह मकवानपुर के राजा हेमकर्ण की पुत्री से हुआ था, पर खटपट हो जाने के कारण दुलहिन बिना विदा कराये ही बारात लौट आयी। कुछ समय बाद उनका विवाह काशी के अहिमान सिंह राजपूत की कन्या के साथ सम्पन्न

हुआ था। मकवानपुर जाते समय उनके मन में प्रथम बार हिमाली अधिराज्य के एकीकरण का विचार उत्पन्न हुआ। पिता का आदेश प्राप्त कर युवराज पृथ्वीनारायण ने हिमालय की उपत्यका का भ्रमण किया। ललितपुर में विष्णु मल्ल के पाहुने रहे; भक्तपुर में युवराज वीर नरसिंह के साथ मैत्री सम्बन्ध जोड़ा, कान्तिपुर जाकर जय प्रकाश मल्ल से दोस्ती की और नुआ कोट के रास्ते गोरखा लौटे थे।

सन् १७४२ में नरभूपाल शाह की मृत्यु के बाद राजा बनने पर तिब्बत का शेष भारतवर्ष से व्यापारिक नकेल पकड़ने के लिए नुआ कोट पर अधिकार कर लिया था।

> "निमिना पालितं राज्यं नेपालमिति विश्रुतम्।
> हिन्दु राष्ट्र समुद्धर्त्ता पृथ्वी नरायणः स्मृतः।।"
> — पण्डित सोमनाथ घिमिरे
>
> (राजा निमि के शासनाधीन राज्य को नेपाल कहा जाता है। इस हिन्दू-राष्ट्र का उद्धार करनेवाले पृथ्वी नारायण शाह के नाम से जाने जाते हैं।)

शस्त्र और शास्त्र की दृष्टि से वे काशी की ओर देखते थे। उस समय नेपाल अधिराज्य की सीमाएँ सीवान (बिहार) तक थीं। गोरखपुर में गोरखनाथ उनका श्रद्धा-केन्द्र था। काशी में ही उनका शस्त्र-पूर्ति का केन्द्र था। वहीं से बारूदी बन्दूकों को चलाने का प्रशिक्षण देने के लिए मुसलमान बन्दूकची गोरखा ले गये थे। कूटनीतिक सन्धि करके लमजुङ् से समझौता कर लिया था कि पूर्व की ओर बढ़ने पर लमजुङ् तटस्थ रहेगा। सन् १७४४ में काठमाण्डो उपत्यका के तीनों मल्ल राजा आपस में कट-मर रहे थे और ईसाई पादरी बलपूर्वक अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। विशाल लिच्छवी राज्य भंग हो चुका था। कणालनदी से अभिसिञ्चित २० राज्य तथा गण्डकी नदी से अभिसिञ्चित २४ राज्य उपहास के पात्र थे।

पृथ्वीनारायण ने भक्तपुर से मेल करके नुआ कोट जीत लिया और कान्तिपुर की ओर मुड़े। कीर्तिपुर के युद्ध में प्राणों को जोखिम में डालकर विजय प्राप्त की और तिब्बत से बंगाल तक के व्यापारिक मार्ग पर अधिकार कर लिया।

मकवानपुर के राजा दिग्बन्धन सेन को मार्ग में बाधा मानकर पृथ्वीनारायण ने उस पर अधिकार कर लिया। दिग्बन्धन सेन ने बंगाल के नवाब मीर कासिम की मदद ली। नवाब के तीस हजार सैनिकों ने आर्मीनियन सेनापति के नेतृत्व में चढ़ाई कर दी; पर नवाब की करारी हार हुई और दिग्बन्धन सेन ने आत्मसमर्पण कर दिया।

तनहू के राजा त्रिविक्रम सेन से पृथ्वीनारायण ने अनाक्रमण सन्धि की थी; पर त्रिविक्रम सेन ने विश्वासघात करके गोरखा पर हमला कर दिया। पृथ्वीनारायण वहाँ नहीं थे, पर गोरखा की सेना ने शूर प्रताप शाह के नेतृत्व में चौबीस राज्यों की संयुक्त सेना को पराजित कर दिया।

अब पृथ्वीनारायण शाह को लगा बीस और चौबीस

राज्यों को एक अधिराज्य में लाये बिना अधिराज्य में धर्मराज्य की स्थापना असम्भव है। काठमाण्डो उपत्यका के कान्तिपुर, भक्तपुर और ललितपुर के राजाओं के परस्पर संघर्ष ने अराजकता पैदा कर दी थी। इसका लाभ बंगाल के अंग्रेज उठा रहे थे। ईसाई पादरियों की घुसपैठ प्रबल हो गयी थी। पृथ्वी नारायण ने सर्वप्रथम कीर्त्तिपुर सन् १७६७ में साम, दाम, दण्ड, भेद का प्रयोग कर जीत लिया। कान्तिपुर के जयप्रकाश मल्ल ने अंग्रेजों से सहायता माँगी। कैप्टन किमलॉक के नेतृत्व में पटना से ब्रिटिश सेना ने हमला किया; पर इतनी बुरी तरह पराजित हुई कि अंग्रेज नेस्तनाबूद होने के पहले ही घेरा उठाकर भाग गये। ललितपुर में अंग्रेज हाकिम रेम्मोल्ड को मुँह की खानी पड़ी। अब पृथ्वी नारायण ने जयप्रकाश मल्ल को आत्म-समर्पण का सन्देश भेजा। मना करने पर सन् १७६८ में इन्द्रयात्रा के दिन गोरखा सेना तीन ओर से काठमाण्डो में घुसी। नरदेवी के पश्चिम द्वार से स्वयं पृथ्वीनारायण, अन्य द्वारों से उनके भाई सेना का नेतृत्व कर रहे थे। केवल दक्षिण द्वार खुला था। जयप्रकाश मल्ल उसी द्वार से भागकर शरण लेने ललितपुर पहुँचे। पृथ्वीनारायण का राज्याभिषेक हुआ और वे सिंहासनारूढ़ हुए। उन्होंने आदेश दिया– "उत्सव चलता रहे।"

गोरखनाथ जी

आर्थिक नाकाबन्दी समाप्त हो गयी। व्यापार और बाजार में समृद्धि छा गयी। राजा ने नया विरुद धारण किया– "स्वस्तिश्री गिरिराज-चक्र-चूडामणि नारायणेत्यादि विविध-विरुदावली-विराजमान-मानोन्नत महेन्द्रमाला– परम नेपाल प्रताप-भास्कर ओजस्वी राजन्य-परम गौरवमय तेजस्वी त्रिभुवन प्रजातन्त्र श्रीपद परम–उज्ज्वल नेपाल तारा ॐ रामपट्ट परम ज्योतिर्मय सुविख्यात त्रिशक्तिपट्ट परम सुप्रसिद्ध प्रबल गोरखा दक्षिणबाहु परमाधिपति ५ श्रीमन्महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण शाहदेवानां अतिरथी परम सेनाधिपति सदा समर विजयिताम्।"...

पशुपतिनाथ मन्दिर

पृथ्वीनारायण ने तत्काल प्रभाव से पादरियों को विदा कर दिया। गो-ब्राह्मण हितकारी का व्रत लिया और महामात्य महाराष्ट्रीय ब्राह्मण श्री हर्ष पन्त को दूत बनाकर ललितपुर भेजा। वहाँ के सरदारों ने आत्मसमर्पण का निर्णय लिया। राजा तेजनर सिंह और जयप्रकाश मल्ल भक्तपुर भागे। विना रक्तपात के ललितपुर पर अधिकार हो गया।

पृथ्वीनारायण ने भक्तपुर से जयप्रकाश मल्ल को लौटा देने को कहा। राजा रणजीत मल्ल ने अंग्रेजों से मदद माँगी। उधर जयप्रकाश मल्ल ने आश्रयदाता के विरुद्ध षड्यन्त्र प्रारम्भ किया। भयंकर युद्ध के बाद पृथ्वी नारायण विजयी हुए। राजाओं की इच्छानुसार पृथ्वीनारायण ने रणजीत मल्ल को काशीवास की व्यवस्था कर दी। घायल जयप्रकाश मल्ल पशुपति क्षेत्र चले गये। तेजनर सिंह का कारावास में ही देहान्त हो गया था।

भारतवर्ष की स्थिति, बंगाल की नवाबी और मुगलों के अत्याचारों को देखकर पृथ्वीनारायण ने अंग्रेजों से समझौता ही उचित समझा। इसी कारण उन्हें जगन्नाथपुरी और रामेश्वरम् के धामों में श्रद्धा-समर्पण का अवसर मिला। बिहार में सीवान के आगे सोनपुर के हरिहर-क्षेत्र तक का क्षेत्र नेपाल के प्रभाव में था। हरिहर-क्षेत्र का मन्दिर नेपाली स्थापत्य का नमूना है। पृथ्वीनारायण ने मकवानपुर के रकमी वार्त्ताकार दीनानाथ उपाध्याय को सन्धि के लिए गंगापार पटना भेजा। उन्होंने अंग्रेजों को अपना बकाया १५ हजार रुपये कर देकर सन्धि करने में सफलता पायी। परसा से लेकर महोत्तरी अञ्चल का विशाल समतल क्षेत्र भी हिमाली हिन्दू अधिराज्य का अंग बन गया। गोहत्या पर प्रतिबन्ध होने के कारण हरिहर क्षेत्र का गाय-बैलों का मेला आज भी विश्व का सबसे बड़ा मेला है।

इस तरह तिब्बत से लेकर तिरहुत (तीरभुक्ति) तक विशाल हिमाली हिन्दू अधिराज्य की स्थापना करने में श्री ५ बड़ा महाराजाधिराज सफल रहे। पश्चिम गढ़वाल और कुमायूँ तक और पूर्व में निमि तथा विदेह जनक की पुण्यभूमि मिथिला और असम की सीमा तक फैले हिमाली हिन्दू अधिराज्य का विस्तार और गो-ब्राह्मण प्रतिपाल्मक का विरुद्ध उन्हें शोभित हुआ। हिन्दुत्व के प्रसार की दृष्टि से वे द्वितीय शिवाजी थे। लामा तन्त्रयान के पूर्व तिब्बत राजा स्रोङ्चेन गम्पो का विवाह नेपाल की राजकुमारी भृकुटी से हुआ था और भृकुटी सर्वप्रथम अक्षोभ बुद्ध की मूर्त्ति और बुद्धमत के विद्वानों को साथ लेकर तिब्बत गयी थी। अतः पारिवारिक सम्बन्ध के कारण उधर बढ़ने का प्रश्न नहीं था।
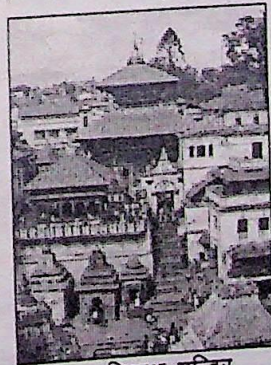
पृथ्वीनारायण हिमालय-परिवार में व्यावसायिक सम्बन्ध के प्रवर्त्तक थे। स्वयं शिवोपासक थे; पर वे वैष्णव, शाक्त, सूर्य, गणपति आदि सभी सम्प्रदायों के संरक्षक थे। सभी का सम्मान करते थे।

उन्होंने सीसोदिया कुल की न्याय-परम्परा को अक्षुण्ण रखा था। गोरखा में राजा राम शाह के युग के "न्याय हराए गोरखा जानू" के विरुद को भुलाया नहीं था। पण्डित क्षेमराज केशव शरण के अनुसार न्यायप्रियता की दृष्टि से प्रजा उनकी तुलना अतिशयोक्तिपूर्वक, अयोध्या के राजा रामचन्द्र से करती थी।

हिमाली हिन्दू अधिराज्य को परिपुष्ट करने के क्रम में ही वे अनुआ कोट गये थे। वहीं वे अस्वस्थ हुए और सन् १७७४ में ५२ वर्ष की आयु में शरीर त्याग किया। उनकी जलायी हुई ज्योति गुरु गोरखनाथ की कृपा से पीढ़ियों तक जलती रही। □

– श्री अरविन्द आश्रम, पुदुच्चेरी–६०५००२

ब्रह्मपुत्र नद पर चीन के बाँध भारत चुप

– ब्रह्मा चेलानी

पड़ोसियों से दोस्ती की खातिर भारत हदें लाँघता गया है, फिर भी आज वह समस्या खड़ी करनेवाले पड़ोसियों से घिरा हुआ है। भूमि के मुद्दे पर भारत की उदारता की काफी चर्चा हुई है। भारत १९५४ में तिब्बत पर ब्रिटिश वंशागत अपरदेशीय अधिकार को तिलाञ्जलि दे चुका है। १९६५ के युद्ध के बाद पाकिस्तान को सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हाजी पीर वापस कर चुका है।

बहुत कम लोगों को यह पता है कि पड़ोसियों के प्रति जल संकट से जूझ रहे भारत की उदारता भूभाग लौटाने तक ही नहीं; बल्कि नदियों का पानी लुटाने तक विस्तारित है।

हाजी पीर का दर्रा

जल-कूटनीति में भारत की शिकस्त इस बात से सिद्ध हो जाती है कि **चीन से बहकर भारत आनेवाली नदियों के सम्बन्ध में बीजिंग दिल्ली को ८० फीसदी जल देना तो दूर, जल समझौते की अवधारणा तक से इनकार कर रहा है। विपुल जलधाराओं से लैस चीन एशिया के जल संसाधनों पर पकड़ मजबूत रखने की मंशा से भारतीय हितों को चुनौती दे रहा है। वैसे तो अफगानिस्तान से लेकर वियतनाम तक अनेक देश तिब्बत से निकलनेवाली नदियों का जल प्राप्त करते हैं; किन्तु भारत की तिब्बती पानी पर निर्भरता इन सभी देशों से अधिक है। संयुक्त राष्ट्र के हालिया आँकड़ों के अनुसार तिब्बती हिमालयी क्षेत्र से बहनेवाली करीब एक दर्जन नदियों से भारत को अपनी आपूर्त्ति का एक-तिहाई जल मिलता है।** यानी साल में करीब १,६११ क्यूबिक किलोलीटर जल भारत को मिलता है। तिब्बत से बहकर भारत आनेवाली तमाम नदियों में ब्रह्मपुत्र सबसे बड़ी है। भारत में आने से पहले यह नदी हिमालय के ग्लेशियरों से होती हुई पश्चिम से पूरब की ओर बहती है। बर्फ और पिघले हुए ग्लेशियर का पानी इस नदी को इतना विशाल बनाता है। भारत में प्रवेश के समय ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत की दक्षिण सीमा के करीब से हिमालयी ढलानों पर करीब २२०० किलोमीटर बहते हुए हिमालय की बेहद उर्वर गाद अपने साथ लाती है। ब्रह्मपुत्र के पानी में घुली-मिली इस पोषक गाद के कारण ही असम के मैदानी इलाकों और बांग्लादेश के पूर्वी हिस्से की जमीन फिर से उर्वरा शक्ति से भर जाती है। हर साल ब्रह्मपुत्र में आनेवाली बाढ़ से ये पोषक तत्त्व पूर्वोत्तर भारत और बांग्लादेश के मैदानों में दूर-दूर तक समा जाते हैं और इस प्राकृतिक तालाब की अवस्था में किसान धान की भरपूर पैदावार लेते है। इसके अलावा यहाँ मछली पालन भी बड़े पैमाने पर किया जाता है। ब्रह्मपुत्र अन्य हिमालयी नदियों से पोषक तत्त्व हासिल करता है। चीन में ब्रह्मपुत्र पर बाँध बनाने के कारण भारत और बांग्लादेश के किसान प्रकृति के इस अनमोल उपहार से वञ्चित रह जायेंगे। **ब्रह्मपुत्र नदी की अधिकांश पोषक गाद प्राकृतिक रूप से बहकर भारत और बांग्लादेश आने के बजाये बाँधों में रुक जायेगी। ठीक उसी तरह जैसे थ्री गार्जेस बाँध याग्जे नदी की गाद को थाम लेता है और यह जलकुण्डों में जमा हो जाती है। चीन में ब्रह्मपुत्र और अन्य नदियों पर जल-विद्युत् परियोजनाओं के निर्माण में सूखे मौसम में भारत में आनेवाले पानी की मात्रा कम हो जायेगी। इसके अलावा चीन को अपनी मर्जी से भारत में पानी छोड़ने या रोकने का औजार भी मिल जायेगा।** एक प्रभावशाली चीनी शिक्षाविद् ने मुझे बताया था कि तिब्बती नदियों का रुख मोड़ने का फैसला लेते समय चीनी नीति निर्माताओं के सामने दो ही विकल्प हैं। एक तो चीन की उत्तरी आबादी की प्यास बुझाना तथा दूसरा भारत तथा अन्य देशों को नाराज न करना और इन विकल्पों में से चुनाव कोई मुश्किल नहीं है। **सीधा-सा तथ्य यह है कि जब राष्ट्रीय हितों का सवाल आता है, तो चीन अन्य देशों के असन्तोष और नाराजगी की जरा भी परवाह नहीं करता। इसकी नीतियाँ राष्ट्रीय हित साधने के लिए बनी हैं न कि दूसरे देशों का अनुमोदन करने या फिर उनकी नाराजगी दूर करने के लिए। भारत को भी अपने हितों की रक्षा करनी चाहिए।** □
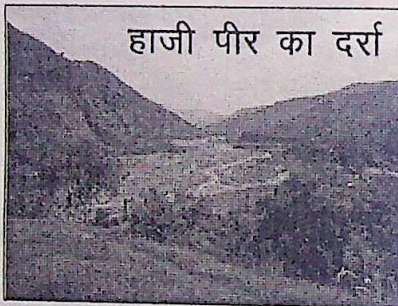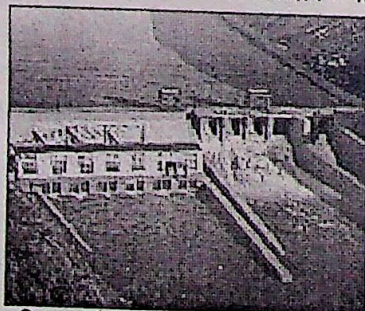
तिब्बत में ब्रह्मपुत्र पर गान्नू बाँध

('जनसंघ टुडे' से साभार)

और नेहरू जी चीनी अजगर को सन्तुष्ट करने में लगे रहे

– कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

(सन् १९६२ में चीन द्वारा भारत के लद्दाख क्षेत्र में अचानक किये गये आक्रमण से अनेक राष्ट्र नेता उद्वेलित हो उठे थे। जाने-माने चिन्तक, लेखक व राज्यपाल जैसे पदों को सुशोभित करनेवाले श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी ने भारतीय विद्या भवन की 'भारती' व 'भवन्स जर्नल' पत्रिकाओं के दिसम्बर, १९६२ के अंक में 'कुलपति का पत्र' स्तम्भ में अपने हृदय की पीड़ा को व्यक्त किया था।– सम्पादक)

'हमारी प्रिय मातृभूमि के इतिहास में यह गुरु-गम्भीर घड़ी है, ऐसी घड़ी जो हमारे साहस, संकल्प और श्रद्धा की कसौटी होगी। ८ सितम्बर, १९६२ को हमें एक ऐसे खतरे का सामना करना पड़ा, जो दिनोंदिन अपने सम्पूर्ण, वास्तविक रूप में प्रकट होता जा रहा है।

एक विदेशी सेना ने हमारी पवित्र भूमि के एक भाग पर अतिक्रमण किया है।

एक असंदिग्ध और क्रूर शत्रु ने हमारी शान्ति और प्रगति की योजनाओं को भंग करने का प्रयास किया है; हमारी स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्रीय संस्थानों के लिए उसने एक खतरा पैदा किया है; समूचे एशिया के लिए यह एक खतरा है।

हमारा राष्ट्रीय अस्तित्व, जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण और वे सभी नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक मूल्य, जिनके प्रति हम श्रद्धा रखते हैं, आज संकट में हैं।

हमें युद्ध की भयानक दावाग्नि से निकलकर विजयी होना है। यह आपस में एक-दूसरे पर अभियोग लगाने का समय नहीं। सभी विवाद ताख पर रख देने चाहिए। साथ ही हमें वस्तुस्थिति को समझना और उनका सामना करना है, न कि सत्तारूढ़ व्यक्तियों द्वारा जैसा समझाया जाये, वैसा ही मान लेना!

हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी कई नीतियाँ दोषपूर्ण रही हैं। रूस के प्रति हमारी दयनीय श्रद्धा आज मिथ्या सिद्ध हो चुकी है। हमारे व्यवहार से नेपाल रुष्ट हुआ है और इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के प्रति हम बहुधा अनुदार रहे हैं।

हमारे सामने जो कार्य है, उसे पूरा करने में हम अच्छी तरह कामयाब नहीं सिद्ध हुए– उसकी गम्भीरता तथा विशालता को हमारे कुछ नेता आज तक समझ ही नहीं पाये। हम अपने ही रचे एक कृत्रिम वातावरण में रहते आये हैं, अपनी सच्चाई और स्वयंतुष्टि से प्रभावित अपने ही वाग्वैभव में मदहोश से रहे हैं।

वास्तविकता ने उसका बदला लिया है।

नेफा के एक हिस्से पर चीनियों ने कब्जा कर लिया है और लद्दाख में वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं।

इस सैनिक-संकट के समय, जिसकी हमारे कई हितैषी मित्रों ने चेतावनी दी थी; किन्तु हमारे सत्ताधीशों ने जिसको पूरा महत्त्व नहीं दिया, हम आज संख्या और शस्त्रों में कमजोर पाये गये हैं और साफ शब्दों में कहा जाये, तो पूर्णतः अप्रस्तुत एवं असज्ज भी।

फिर भी हमारी नीतियों, वचनों और आशाओं के मलवे से एक ऐसे राष्ट्र का उत्थान हुआ है, जो अपूर्व रीति से सुदृढ़ एवं संगठित है। **शेक्सपियर की इस उक्ति कि 'कर्मरहित थोथे शब्दों से किसी का उद्धार नहीं होता' की सत्यता को आज हम समझ रहे हैं।**

इसी मलवे से आज यह भी हमारी समझ में आ रहा है कि संरक्षणात्मक शक्ति के लिए औद्योगिक प्रगति तो आवश्यक है; पर संरक्षणात्मक शक्ति के विकास के विना यह प्रगति किसी काम की नहीं।

इसी मलवे से आज हमें यह प्रतीति भी हुई है कि एकता ही राष्ट्र की प्राणशक्ति है, कि जब राष्ट्रीय अस्तित्व खतरे में हो, तो प्रादेशिक सीमाओं का कोई अर्थ नहीं, यहाँ तक कि सैनिक प्रयास को परिमित करनेवाले मौलिक अधिकारों का भी मूल्य इतना नहीं रहता।

तिब्बत का निगला जाना देखते रहे

प्रधानमन्त्री नेहरू जी ने संसद् में आश्वासन दिया था कि भारत संकल्प लेता है कि वह चीन से अपनी इञ्च-इञ्च भूमि वापस लेकर ही रहेगा; किन्तु दब्बू सरकार इस आश्वासन को पूरा नहीं कर पायी।

"पञ्चशील और भाई-भाई वाद के जादुई प्रभाव में हम पण्डित नेहरू के शब्दों में, स्वयं हमारे ही रचे एक

अवास्तविक वातावरण में रहे। विस्तारवादी चीन के साथ हम सनातन मैत्री की दुहाई देते रहे। चीनी अजगर को सन्तुष्ट करने के लिए हम उसके द्वारा तिब्बत का निगला जाना भी शान्ति से देखते रहे। डा. एस. राधाकृष्णन् के शब्दों में, 'हमारे अत्यधिक विश्वास और असावधानी' के कारण ही अक्तूबर, १९६२ में हमें हमारी उत्तरी सीमा पर सैनिक संकट का सामना करना पड़ा।

इस समय हमारी हजारों वर्गमील भूमि चीन के कब्जे में है। आक्रमणकारी को हटाने के लिए हमारे पास कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं। चीन के साथ हम कूटनीतिक व्यवहार अब भी इसी आशा में बनाये रखे हैं कि शायद वह अपना रवैया बदले। यह वैसा ही है, जैसे नाग पञ्चमी के दिन साँपों को इस आशा से दूध पिलाना कि वे हमें काटेंगे नहीं।

नागा-विध्वंस ने अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी जो भी प्रतिष्ठा एक सम्भावी शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में थी, उसे नष्ट कर दिया है। अफ्रीकी-एशियन राष्ट्रों ने प्रधानमन्त्री शास्त्री के इस सुझाव को भी स्वीकार नहीं किया कि चीन के पास एटम बम विस्फोट करने की उसकी नीति के विरुद्ध विरोध-प्रस्ताव भेजा जाये।

चीन हमारे सिर पर सवार है और तब भी हम तैवान को मान्यता नहीं देते। इसराइल के साथ अरब राष्ट्रों के झगड़े में हम अरबों का पक्ष लेते हैं। अरबों के कई मित्र देशों ने भी इसराइल को मान्यता दी है; परन्तु हम ऐसा नहीं करते। मलयेशिया, जो कामनवेल्थ में एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्र है और जिसने चीन के आक्रमण के समय हमारा साथ दिया था, आज चीन द्वारा समर्थित इण्डोनेशिया से आक्रान्त है, फिर भी उसकी सहायता के लिए हमने कुछ नहीं किया।

पिछले सत्रह वर्षों में हमारी विदेश-नीति भयंकर रूप से असफल रही है। तटस्थ राष्ट्रों में हमारी स्थिति ऐसी हो गयी है कि दगाबाज चीन के हमसे भी अधिक मित्र हो गये हैं। यदि अमेरिका हमें बड़े पैमाने पर सहायता नहीं देता, तो हम कहीं के नहीं रहते। तब भी इस उपकार को हम खुले आम स्वीकार नहीं करते; क्योंकि यह भय हमें है कि ऐसा करने से हम उन मित्रों का स्नेह न खो दें, जिन्होंने न तो पहले कभी हमारी मदद की और न आगे करनेवाले हैं।

अन्य राष्ट्रों के झगड़े में तटस्थ रहने की नीति तो फिर भी समझ में आ सकती है; लेकिन जब हम स्वयं आक्रान्त हैं, तब हम तटस्थ कैसे रह सकते हैं ? हमें तटस्थतावाद की नहीं; बल्कि अपनी भूमि और आजादी की रक्षा करनी है।

इस स्थिति का मूल कारण हमारे नेताओं में कल्पना और शक्ति की कमी है। उन्होंने एक भी नीति ऐसी नहीं अपनायी, जिसमें हमारी जनता में जोश पैदा होता और वह अपने भेदभाव भुला देती। □

शान्ति और करुणा की भूमि तिब्बत : तब और अब

श्रीप्रकाश

(श्री श्रीप्रकाश जी एक प्रख्यात विचारक, चिन्तनशील लेखक, श्रेष्ठ राजनयज्ञ तथा कुशल प्रशासक थे। वे पाकिस्तान में (तब राजधानी कराची थी) भारत के प्रथम उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) थे। बाद में मद्रास के राज्यपाल रहे। वे 'भारत रत्न' डॉ. भगवान दास जी के सुपुत्र थे। तिब्बत पर चीन के बलात् आधिपत्य को चुनौती देनेवाला उनका यह लेख 'धर्मयुग' (साप्ताहिक), जो अब बन्द हो चुका है, में प्रकाशित हुआ था।– सम्पादक)

तिब्बत का प्रश्न भारत के लिए सदा से ही बड़े महत्त्व का रहा है। जिस समय देश-देश की भौगोलिक सीमाओं की तरफ ध्यान कम दिया जाता था और सांस्कृतिक समता का ही विचार किया जाता था, तब एक प्रकार से आधुनिक भारत मय नवनिर्मित पाकिस्तान के सिंहल (सीलोन), नेपाल, भूटान, सिक्किम, ब्रह्मदेश (बर्मा) तिब्बत और सम्भवतः अन्य पूर्वी देश भी एक ही भूखण्ड के समझे जाते थे ओर समझे भी जा सकते थे; क्योंकि इनके लौकिक और आध्यात्मिक आचार-विचार प्रायः एक से थे। ऐतिहासिक कारणों से इन सबका भिन्न-भिन्न देशों में विभाजन हुआ और भारत ऐसा विस्तृत देश तो छोटे-छोटे और परस्पर विरोधी प्रदेशों में विभक्त हो गया; पर सांस्कृतिक एकता बराबर बनी थी।

इस कारण सारे उप-महाद्वीप को एक सूत्र में पिरोने की अभिलाषा भी विचारवानों के मन में बनी रही, चाहे वे शस्त्र के प्रयोगी सम्राट् हों अथवा विचारों के प्रचारक शंकराचार्य जैसे आध्यात्मिक आचार्य या बुद्ध जैसे धर्म के प्रवर्त्तक हों।

चाऊ इन लाई

सुरक्षित प्रदेश पर चीनियों का मनमाना अधिकार

एक प्रकार से हिमालय भारत की उत्तरी सीमा के रूप में सदा से ही रहा है। इसके उत्तर में प्रकृति ने तिब्बत का विस्तृत मैदान स्थापित किया और यह भारत और सुदूर उत्तर के चीन आदि देशों के बीच मध्यस्थ का स्थान ग्रहण किये हुए था। हमारे लिए उसका ऐसा बना रहना बड़ा ही सन्तोषप्रद रहा। तिब्बत के लोग बौद्धधर्म के अनुयायी रहे हैं और मानसरोवर ऐसा आर्यों का पवित्र तीर्थ भी आज उन्हीं के प्रदेश में मौजूद है। तिब्बत अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदा सुरक्षित भी रहा है। यद्यपि चीन उसके ऊपर अपना आधिपत्य समझता रहा; पर हर दृष्टि से तिब्बत को स्वतन्त्र ही समझना चाहिए। १९०५ ई. में लार्ड कर्जन के जमाने में रूस के भय और आशंकित हस्तक्षेप के कारण कुछ छेड़छाड़ भी हुई थी। अंग्रेजी सेना ल्हासा तक पहुँची; पर अन्त में जो सन्धि हुई, उससे तिब्बत का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होते हुए भी, तिब्बत की स्वतन्त्रता प्रमाणित ही रही।

विशाल चीन देश जब नये विचार के नेताओं के हाथ में आया, तब बृहत्काय होते हुए भी उसे और भी विस्तृत होने की आकांक्षा हुई और अवश्य ही तिब्बत ऐसे देश की तरफ उसका पहले ध्यान गया तथा हमारे नेताओं ने विविध परिस्थितियों पर विचार कर तिब्बत पर उसका पूर्ण अधिकार मान लिया। पीछे चीन ने अपना प्रभुत्व भीषण रूप से दर्शाया और वहाँ के दलाई लामा को भागकर भारत में आश्रय लेना पड़ा।

चीन ने पूरी तरह से नाना प्रकार के अनाचारों द्वारा अपना प्रभुत्व तिब्बत पर स्थापित किया और अधिकाधिक विस्तार की लालसा से उसने भारत की सीमा स्थित प्रदेशों को भी निगलना आरम्भ किया। इस पर भारत तथा चीन का खासा युद्ध आरम्भ हुआ। यद्यपि इस समय उसमें कुछ विराम है; पर आशंका यही है कि इस प्रकार के आक्रमण की पुनरावृत्ति हो सकती है।

चीन द्वारा तिब्बत के आचार-विचारों पर आघात

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या तिब्बत की स्वतन्त्रता हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा की प्राथमिक आवश्यकता है ? और यदि है, तो हमें इस सम्बन्ध में क्या करना चाहिए और हम क्या कर सकते हैं। सच्ची बात तो यह है कि प्रत्येक देश को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है और तिब्बत भी हर दृष्टि से एक देश विशेष है। उसका व्यक्तित्व है, उसकी संस्कृति है, उसका इतिहास है, उसकी परम्परा है और संसार की लौकिक

और आध्यात्मिक उन्नति में उसका विशेष अनुदान भी कितने ही दिनों से रहा है। यह दुःख की बात है कि वह आज स्वतन्त्र नहीं है। वह चीन के अधीन है और चीन के अत्याचारों का शिकार हो रहा है। उसके आचार–विचारों पर आघात किया जा रहा है। उसे आधुनिक चीन की प्रथा का अनुयायी बनाने के लिए भीषण रूप से बल प्रयोग हो रहा है।

१९५४ के समझौते के कारण जिसमें, तिब्बत के ऊपर हमने चीन का आधिपत्य स्वीकार किया था, हम अपने को विवश पाते हैं। दलाई लामा और तिब्बत के अन्य नर-नारियों को आश्रय देने के कारण हम चीन के रोष के भाजन भी हो गये हैं। अवश्य ही हम चाहते हैं कि तिब्बत स्वतन्त्र रहे। यद्यपि मनुष्य के सभी कार्यों में कुछ स्वार्थ लगा ही रहता है।

दलाई लामा जवाहरलाल नेहरू

हम तिब्बत की स्वतन्त्रता का केवल अपने हित की दृष्टि से ही नहीं, सिद्धान्तः भी समर्थन करते हैं। हम यही चाहते हैं कि वह स्वतन्त्र रहे और अपनी पुरातन प्रथा का पालन करते हुए समुचित रूप से उन्नत और विकसित होता रहे।

तिब्बत की स्वतन्त्रता हर दृष्टि से हमारे लिए हितकर है। उसका और हमारा अनन्त काल से सम्पर्क रहा है। यह सम्पर्क हम बनाये रखना चाहते हैं। साथ ही उसकी स्वतन्त्रता और मैत्री से हम सुदूर उत्तर के देशों के लोभ की दृष्टि से अपने को सुरक्षित समझ सकेंगे। तिब्बत के चीन का अंग हो जाने के कारण चीन हमारी सीमा पर आ गया है और इसके कारण जो खतरा हमको है, वह तो हाल की घटनाओं से स्पष्ट ही हो गया है।
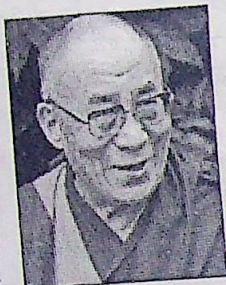
पर मैं स्वयं यह कहने को तैयार नहीं हूँ कि किसी देश की स्वतन्त्रता हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा की प्राथमिक आवयकता है। **स्वतन्त्रता देवी की उपासना स्वतन्त्रता के ही लिए करनी चाहिए। हमको सभी देशों को स्वतन्त्र रहने की अभिलाषा रखनी चाहिए और उन्हें ऐसा देखकर प्रसन्न भी होना चाहिए।**

हमें यह हिसाब नहीं ही लगाना चाहिए कि इस स्वतन्त्रता से हमारे हित की रक्षा होती है या नहीं। तिब्बत से यदि हमें भय भी हो जाये, तथापि हमें तिब्बत को स्वतन्त्र ही देखने की इच्छा रखनी चाहिए। अवश्य ही स्वतन्त्र तिब्बत और स्वतन्त्र भारत परस्पर का समुचित समझौता कर शान्ति और सुख से रहेंगे।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि स्वतन्त्र तिब्बत से हमें हर प्रकार की सहायता की अपेक्षा है और हो सकती है; पर हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उसकी स्वतन्त्रता हमारी प्राथमिक आवश्यकता है, यह मैं कहने को नहीं तैयार हूँ, न ऐसे भाव को हृदय में रखना चाहता हूँ। इसका अर्थ तो यह होगा कि हम अन्य देशों की स्वतन्त्रता की अभिलाषा अपने हित की दृष्टि से ही करते हैं। ऐसे विचारों से तो अपनी दुर्बलता ही सिद्ध होती है और हम अपने को दूसरे की सहायता पर आश्रित मानने लगते हैं, यह ठीक नहीं है।

किसी देश के चारों तरफ रहनेवाले यदि विरोधी भी हों, तो उस देश को अपने आन्तरिक बल से अपने को सुरक्षित रखना ही होता है। यदि तिब्बत अभाग्यवश स्वतन्त्र न भी हो, तो हमको ऐसा विचार नहीं करना चाहिए कि उसकी स्वतन्त्रता हमारी सुरक्षा की प्राथमिक आवश्यकता है और यदि वह स्वतन्त्र न हुआ, तो हम असहाय हो जायेंगे। **हम चाहते हैं कि तिब्बत स्वतन्त्र हो। हम उसे स्वतन्त्र होने में समुचित रूप से सहायक होने की भी इच्छा रखते हैं; पर हम अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के स्वयं उत्तरदायी हैं और अपने देश की स्वतन्त्रता और एकता के लिए हम सदा प्रयत्नशील रहेंगे। साथ ही साथ दूसरे देश भी स्वतन्त्र रहें, इसकी हम सदा कामना करेंगे; क्योंकि हम स्वतन्त्रता को मूल्यवान् वस्तु मानते हैं।** □

('धर्मयुग', २४ फरवरी, १९६३)
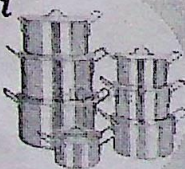
तमिल साहित्यकारों का हिमालय-वर्णन

– र. शौरिराजन

संस्कृत के समान प्राचीन विकसित भाषा है तमिल, जो द्रमिल, द्रमिड, द्रविड, तमिल नामों से जानी जाती है। संस्कृत की पूर्ववर्ती लोकवाणी प्राकृत की तरह तमिल की जनबोली भी लोक-वाङ्मय से सम्पन्न पायी जाती है। आगे चलकर संस्कृत का व्याघाती प्रभाव और संस्कार पाकर तमिल परिमार्जित, परिनिष्ठित स्वरूप पा गयी, जो प्रमुखतः साहित्यिक माध्यम के रूप में उभरने लगी। इसी में लोकसाहित्य की रचनाएँ (पद्यमय) रची गयीं वाचिक परम्परा के सहारे, जो कालान्तर में संकलित लक्ष्य साहित्य के रूप में प्रशस्त हुई।

बदरीनाथ

विकास-क्रम में लक्ष्य साहित्य के आधार पर अनुशासन की दृष्टि से लक्षण ग्रन्थों की रचनाएँ होने लगीं। अब तमिल में उपलक्ष्य प्राचीनतम (ई.पू. छठी शती) लक्षणग्रन्थ हैं ताल्काप्पियम्', जो 'प्राचीन काप्पिय जातिवाची शब्द की तद्भव संज्ञा है। इसके रचयिता का नाम कृति के आधार पर है तॉलकाप्पियर' (प्राचीन काप्पिय जातीय)। इस लक्षण ग्रन्थ में १६०४ पद्य हैं, जो अक्षर, शब्द और अर्थ के विवेचक हैं, तीन अधिकारों (अध्यायों) से विभाजित हैं, अन्तिम अध्याय अर्थाधिकार में तमिल जातीय जनसमुदाय के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन-संस्कारों, रीति-प्रथाओं का विवेचन किया गया है।
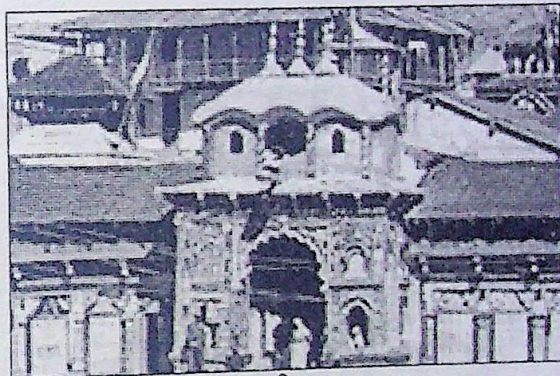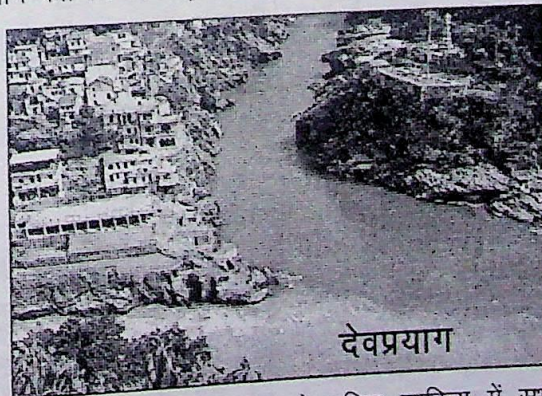
देवप्रयाग

इस प्राक्तन लक्ष्यग्रन्थ में, जो संस्कृत के लक्षण (व्याकरण) ग्रन्थों से प्रभावित है, भारतीय भू-क्षेत्रों को पाँच प्रदेशों में बाँटा गया है, वे हैं– पर्वत प्रदेश (कुरिंचि निलम्), वन प्रदेश (घुललै निलम्), कृषि प्रदेश (मरुत निलम्), सागर तीर प्रदेश (नेयतल निलम्), मरुप्रदेश (पालै निलम्)। उक्त लक्षण-ग्रन्थ तॉल्काप्पियम् की पर्वत प्रदेश सूचक पद्य पंक्ति है– "चेयोन् मेय मैवरै उलकम्" (स्कन्द देव द्वारा परिपालित पर्वत प्रदेश और वहाँ की जनता) आगे के वर्णन में कहा गया है, "यहाँ का अनुकूल मौसम शरत् और हेमन्त ऋतुएँ, यहाँ के निवासियों के वर्गीय (जातीय) नाम हैं– पोरुप्पन्, वेर्पन्, चिलप्पन्, कुरवन्, कानवन् (पुरुष), कुरत्ती, कोटिच्ची, चिलम्पी, पोरुप्पी (स्त्री)। इधर के प्रमुख प्राणी हैं तोता, मोर, बाघ, रीछ, हाथी, शेर। चन्दन, साल, सागौन, अगरु, अशोक, नाग, बाँस आदि वृक्षों की अधिकता है। पर्व-त्योहारों पर झूम-झूमकर गाना, नाचना, अधिष्ठाता देवता (नगाधिराज हिमालय) से आविष्ट होकर उछलते-कूदते हितवाणी बताना, तलहटियों पर खेती-बारी, बागवानी करना, मधु फल-फूल इकट्ठा करना पर्वत प्रदेश के निवासियों के कार्यकलाप हैं।......"

ग्रन्थकार के समकालीन विद्वान् व्याख्याता परम्पनार ने कहा है, "इस ग्रन्थ में पर्वत प्रदेश का लक्षण-वर्णन उत्तरापथ के हिमालय पर्वत को प्रतीक मानकर किया गया है।"

ऋग्वेद काल से ही उत्तरापथ और दक्षिणापथ के मध्य सौहार्द-सहयोग-सम्पर्क आर्यों-द्रवि. के द्वारा होते रहे। दक्षिण भारत के विन्ध्याचल, सह्याद्रि, नीलगिरि, मलय पर्वत, वेंकट गिरि, कुर्ग पर्वत, अरावली आदि का नाम निर्देश सम्भवतः हिमालय परिचय के बाद हुआ होगा। ई.पूर्व शतियों के तमिल साहित्य में सभी पर्वतों को 'हिमालय के अंश' बताया गया है।

उक्त लक्षणग्रन्थ के बाद पाये जाते हैं संकलित साहित्य, जो संघसाहित्य के नाम से प्रशस्त हैं। ई. पूर्व शतियों में लोकवाङ्मय के रूप में तमिल समाज में प्रचलित छोटे-बड़े ३५०० पद्यों का संकलन-सम्पादन ई. दूसरी शती में साहित्य

सुधी विद्वानों के समवेत प्रयास से किया गया। ये आठ पद्य संकलनों और दस लघु प्रबन्ध-पद्यों का समाहार है। ये पद्य ४२० कवियों, ३० कवयित्रियों के द्वारा गाये गये हैं। इन संघ साहित्य ग्रन्थों में 'इमयम्' (हिमालय) का वर्णन पाया जाता है।

प्रमुख संघ साहित्य ग्रन्थ 'पुरना नूरु' में, जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, नैतिक विषयों और मानवमूल्यों पर १५७ व्यक्तियों द्वारा रचित चार सौ पद्यों का संकलन है, 'इमयम्' (हिमालय) का वर्णन ६ पद्यों में मिलता है। प्रथम वर्णन–

चेर नरेश चेरेलादन् पर मुडिनागरायर नामक कवि के प्रशस्ति गीत में वर्णित है, "पृथ्वी आदि पञ्चभूतों के समान शक्ति-सम्पन्न हे चेर नरेश ! तुमने महाभारत युद्ध में पाण्डव और कौरव सेनाओं को प्रभूत भोजन पदार्थ भेजकर उपकार किया। तपस्वी ऋषि-मुनियों के यज्ञकुण्डों से प्रज्वलित आहवनीयादि अग्नि की ज्वाला से शोभायमान स्वर्णिम शिखरों वाले गिरिराज हिमालय पर्वत के समान दृढ़-गम्भीर व्यक्तित्व तुमने पाया है। तुम हिमालय के समान यशस्वी बने रहो !" (पद्य सं.–२)

बहुयागशालाओं के यजमान पाण्डिय राजा मुतुकुडुमि पेरुवलुति पर कवि कारि किलार के रचित प्रशस्ति गीत में वर्णित है– उत्तर दिशा में प्रगाढ़ प्रहरी के समान प्रतिष्ठित हिममण्डित, रजतशोभित नगाधिराज तुम्हारे साम्राज्य की उत्तरी सीमा है, दक्षिण सीमा कन्याकुमारी नदी। पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ सागर हैं, हिमालय की तरह तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग और पाताल लोकों में भी फैली है। (पद्य सं.–६)

तिरुवल्लुवर मूर्त्ति

चोल नरेश किलिल बलवन् का अभिनन्दन करते हुए चारण कवि आलत्तूर किकार की लम्बी कविता में (२३ पंक्तियाँ) हिमालय-वर्णन है– "सम्पन्न परिवार का घुमन्तू चारण कवि हूँ। मुझ जैसे बन्दीजनों का जीवन तुम्हारी दानशीलता के कारण सुखी, सम्मान्य और संतृप्त हुआ है। आदर्श नरेश ! महापुरुषों के आशीर्वाद से तुम हिमालय के शिखरों पर बरसनेवाले बादलो के जल बिन्दुओं के समान अमृतमय जीवन जी रहे हो ! तुम युगों तक चिरञ्जीवी रहो। (पद्य सं.–३४)

दानी, वीर सामन्त, कृषकवर्गीय महानायक आय् आण्डिरन की प्रशस्ति गाते हुए चारण कवि मुडयोशियार ने कहा, "उत्तर दिशा में महिमामण्डित, गगनचुम्बी, देवतात्मा हिमालय और दक्षिण में हे दानवीर ! तुम्हारा आयकुल वंश न होते, तो यह भारत भूखण्ड दीन-हीन हो जायेगा। ऐसे महान् वीर महानायक का वन्दन अभिनन्दन मुझे सर्वप्रथम करना चाहिए। ऐसा न करनेवाले मेरे मन–मस्तिष्क भ्रष्ट हो जाये, मेरे कान बधिर हो जायें और इतर दाताओं की स्तुति कर चुकी मेरी जिह्वा काट दी जाये।" (पद्य सं.–१३२)

इसी प्रकार आगे के १६६, २१४, ३६६वें पद्यों में "उन्नत शिखरों पर जमे मेघमण्डल द्वारा वर्षा वर्णित है– बरसाने वाले बाँस वृक्षों से मण्डित हिमालय के साथ दृढ़, चिर जीवन जीते रहो !" "स्वर्णिम शिखरो से सुशोभित, गजराशि के आश्रय हिमालय से हाथ लाकर हमारा सम्मान करो, चेर नरेश !"

प्रायः संघ साहित्य (संकलन ग्रन्थों) में हिमालय का वर्णन नायक की गरिमा, वीरता, सम्पन्नता, सुकीर्त्ति के उपमेय उदाहरण के रूप में किया गया है।

दूसरे प्रसिद्ध संकलनग्रन्थ अकनानूरु में (आन्तरिक संवेदनों पर गाये गये चार सौ पद्यों का संकलन) एक हिमालय-प्रसंग है–

कवि मायूलनार ने इमयवरम्पन (हिमालय विजयी) नेडुंचेरलातन् की प्रशस्ति में गाया है, "विजय भेरी बजाकर घोषित करनेवाले विजयी वीर श्रेष्ठ नरेश चेरलातन् ने समुद्र मार्ग से आये आक्रमक शत्रुओं को (कडम्बों को) पराजित कर भगा दिया, हिमालय स्थलों के शासकों पर दिग्विजयी उस चेर नरेश ने चढ़ाई की, उन्हें हराया और अपने अधीन बना लिया। इस विजय के साक्ष्य स्वरूप हिमालय की हिमावृत शिला पर अपना राजचिह्न धनुष-बाण को अंकित कराया। पराजित हिमालयी राजाओं से प्राप्त प्रभूत स्वर्ण-रजत रत्नादि धनराशि लेकर अपनी राजधानी मान्तै नगरी में विजयोल्लास के साथ प्रवेश किया। (पद्य सं.–१२८)

नट्रिणै भी चतुश्शती प्रशस्ति ग्रन्थ है। उसमें हिमालय-वर्णन के साथ प्रेयसी की विरह वेदना पर गीत रचा है मदुरै नलवेललैयार नायक कवि ने। प्रसंग है, प्रेयसी अपने प्रियतम से विवाह कर लेने सन्नद्ध थी। प्रेमी ने मान लिया; किन्तु दाम्पत्य-जीवन को सुखी-सन्तुष्ट रखने के लिए धनार्जन करने सुदूर नगर में चला गया। वापस लौटकर परिणय कर लेने का बचन दे गया। प्रेमिका-प्रेमी के वियोग से विह्वल होती जा रही थी, उसने अपनी सहेली से कहा, "सखि ! वह देखो, दिवाकर अपना तपन छोड़कर पश्चिम दिशा में पहाड़ी की तलहटी में जाकर छिप गया है। सारस पक्षी दल गगन में उड़ता चला जा रहा है। दिन-भर मुकुल रही चमेलियाँ साँझ पड़ते ही खिलकर महक रही हैं। यह सन्ध्या वेला मुझ विरहिणी को बहुत सताती है। आज तो प्रेमी से बिछुड़कर तड़पती मुझ विरहिणी से यह सन्ध्या-निशि वेला सही नहीं जायेगी। जैसे कि देवताओं की लीला स्थली हिमालय की तलहटी से निकल आती गंगा की बेगवती धारा की तरह मेरी विरह वेदना भी आर-पार को तोड़ती हुई बह
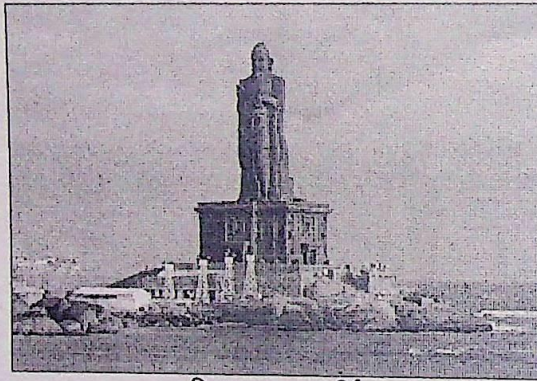
जाये, तो मैं कैसे जीवित रह सकूँ ?

इस प्रकार संघ साहित्य के कवियों ने हिमालय का दृष्टान्त वीरता, गम्भीरता, उदारता के प्रसंगों मे ही नहीं, प्रेमी, विरही, कामातुर और मिलन सुखी प्रसंगों में भी दर्शाया है।

संघ साहित्य के बाद तिरुक्कुरल् आदि नीति ग्रन्थों की रचना हुई (ई. तीसरी से छठी शती तक)। साथ ही नीति, धर्म और शीलों के आधार पर विरचित काव्यों की भी रचना की गयी, शिलप्पतिकारम्, मणि मेखलै, पेरुकथै, जीवक चिन्तामणि, कुण्डलकेशी आदि।

तीसरी-चौथी शतियों ई. में विरचित शिलप्पतिकारम् (रचयिता इलंको अडिकल्) मणिमेखलै (चीत्तलै चात्तनार) में हिमालय का वर्णन अधिक प्रसंगों में पाया जाता है। शिलप्पतिकारम् में– हिमालय को वडमलै (उत्तर का पर्वत), पेरिययम् (महान् हिमालय), पोन्निमयम् (स्वर्णिम हिमालय), इमयम् तैवयालवरै (देवतात्मा हिमालय), विष्णवर् वरवु (देवताओं का पर्वत), गंगैइमयम् (गंगावतारक हिमालय) वियन्येर, इमयम् (अद्भुत प्रख्यात हिमालय), ओंगिय इमयम् (महोन्नत हिमालय), बडपेरिमयम् (उत्तर का महानतम पर्वत) पोर्कोट्टिमयम् (स्वर्णिम शिखरों वाला हिमालय) मुडियन्नर् मूवरुम, कान्तोम्पुम् दैव वडपेरिमयम् (चेर, चोल, पाण्डिय राजाओं से परिपालित देवतात्मा उत्तरी हिमालय) आदि शब्दों से वर्णित किया गया है। इसी प्रकार इतर महाकाव्यों में भी पाया जाता है।

सुब्रह्ममण्यम् भारती

कल्कि कृष्णमूर्त्ति

शिलप्पतिकारम् महाकाव्य के अन्त में यह विवरण है– काव्य नायिका कण्णकी सती देवी हो जाती है। उसके लिए स्मारक मन्दिर बनाया था चेर नरेश चेंकुट्टुवन ने। साथ ही हिमालय से खड़ी शिला लाकर, उससे कण्णकी की विग्रहमूर्त्ति बनवाकर मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया। इस सन्दर्भ में देवन्ती नामक तपस्विनी ने चेर नरेश से कहा, "राजन् ! दक्षिण के तीनों चक्रवर्त्ती नरेशों द्वारा विजित एवं संरक्षित उत्तरी प्रहरी सीमा हिमालय में कण्णकी का जन्म हुआ। पावन सलिला जीव नदी गंगा में नहाकर वह बड़ी हुई। सुकुमारी पुण्य शीला कण्णकी चोल देश के सम्पन्न, वणिकपुत्र कोवलन की पत्नी बनकर वहाँ जाकर बसी। तदन्तर पति-पत्नी पाण्डिय राजधानी मदुरै में जाकर रहने लगे। वहाँ झूठे आरोप पर कोवलन को पाण्डिय राजा नेडुंचेलिय ने मृत्युदण्ड दिया। तदनुसार कोवलन का शिरच्छेद किया गया। पति को ढूँढ़ती हुई आयी कण्णकी ने मृत पति को देखा, विलाप करती हुई पाण्डिय नरेश के समक्ष जाकर जुहार की, तो राजा सत्य जानकर अपराध बोध से तड़पकर तत्काल प्राण त्याग कर गया। कण्णकी मदुरै नगर को अपने पातिव्रत्य-अग्नि से जलाकर, चेर देश के पर्वत शिखर पर जाकर प्राण त्याग कर सती देवी हो गयी। ऐसी पुण्यशालिनी सती देवी की मैं प्रिय सखी रही हूँ।"

इसके बाद इतिहास-पुराणों पर आधारित लोकप्रिय काव्यों की बारी आती है। प्रमुख हैं बारहवीं शती का कम्बरामायणम्, सत्रहवीं शती का विलनपुत्तरार भारतम्, पुकलेन्दी का नलवेण्पा (१३वीं शती), पेरिय पुराणम् (११वीं शती), नैडत कावियम् (नैषध काव्य–१७वीं शती) आदि ग्रन्थों में यथाप्रसंग हिमालय का वर्णन किया गया।

ई. ५ से १३वीं शती तक शैव-वैष्णव भक्ति साहित्य ग्रन्थों की रचना हुई और परिव्याप्त लोकप्रियता, भक्तों का समादर उन्हें मिला। द्वादश तिरुमुरै, जो २६ शैव भक्त-सन्त कवियों द्वारा विरचित हजारों पद्यों के संकलित बारह शैवधर्म के ग्रन्थ, नालायिर दिव्य प्रबन्धम् (चतुर-सदस्य भक्ति पुञ्ज पद्यों का संकलन, जो बारह वैष्णवसन्त कवि आलवारों द्वारा विरचित है।) इन सब धर्मग्रन्थों में शिव-भक्ति एवं विष्णु-भक्ति के प्रसंगों पर हिमालय के सुन्दर, भव्य वर्णन किये गये हैं।

विशेषकर, तिरुक्कण्डय कडिनगर (देवप्रयाग) में विराजमान श्री नीलमेघ पुरुषोत्तम, तिरुप्पिरिति (जोशीमठ) में विराजमान् परमपुरुष, तिरुवतरि (बदरीनाथ) में विराजमान बदरी नारायण, श्री शालिग्राम में विराजमान श्रीमूर्त्ति की स्तुति-वन्दना करते हुए श्री पेरियालवार, श्री जिरुमंगै आलवार (वैष्णव सन्त कवि) ने ६० भक्ति गीत गाये हैं। ये तीर्थधाम हिमालय पर हैं। इनका वैभव वर्णन उन गीतों में पाया जाता है।

आधुनिक साहित्यकार राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम भारती, कल्कि कृष्णमूर्त्ति, ना. पार्थसारथी,, जयकान्तन, कविवर शुद्धानन्द भारती, प्रभृति ने अपनी रचनाओं में हिमालय की गरिमा, महानता, देवतास्वरूप आदि विशिष्ट वैभवों का रमणीय वर्णन किया है।

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने १२० साल पहले गाया है– **"उज्ज्वल, उन्नत, देवतात्मा हिमालय हमारा है। संसार भर में इसके समान कोई नहीं है। पावन सलिला, सदानीरा गंगा हमारी जीव नदी है। इसकी महिमा की तुलना करने योग्य कोई और नदी महानदी इस भूतल में नहीं है।** □

– २६३, ४१–मार्ग, सेक्टर– ८, के.के. नगर, चेन्नई–६०००७८

(पृष्ठ १० का शेष) जब घायल हुआ हिमालय

तेजपुर (असम) भेजा था। यह व्यक्ति युद्ध प्रारम्भ होने से तत्काल पूर्व १७ अक्टूबर, १९६२ को बीमारी का बहाना कर तेजपुर से दिल्ली आ गया और वहीं अपने शयनकक्ष से युद्ध के मोर्चो के लिए आदेश जारी करता रहा। **लड़ाई में भारतीय सेना की दुर्गति (उदाहरणार्थ– २० अक्टूबर को पहले ही हमले में भारत की एक पूरी ब्रिगेड नेफा के नमका-चू नामक स्थान पर साफ हो गयी थी और इसके तमाम अधिकारी युद्धबन्दी बना लिये गये थे) के बाद कौल को इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा; पर इस शख्स को नेहरू ने इसके बाद भी हिमाचल का राज्यपाल बनाने की असफल कोशिश की थी। खुद भारतीय रक्षामन्त्री वी.के. कृष्ण मेनन द्वारा राष्ट्रीय हितों पर कैसा कुठाराघात किया गया, वह एक अलग ही घृणास्पद अध्याय है; पर नेहरू उन्हें भी सीने से चिपकाये रहे थे, जब तक कि कांग्रेस संसदीय दल ने उन्हें मेनन के इस्तीफे के लिए विवश न कर दिया।**

बोमदी–ला

भीष्म पितामह ने कहा था कि देश की सीमाएँ माता के वस्त्र के समान पवित्र और रक्षणीय होती हैं; पर नेहरू कहते थे कि जहाँ घास का तिनका नहीं उगता, उस भूमि की रक्षा क्या करनी ! भारत का दुर्भाग्य कि उसे राष्ट्रीय संगठन की उस घड़ी में नेहरू जैसा प्रधानमन्त्री मिला।

देशद्रोहियों से साँठगाँठ : नेहरू ने देशद्रोही मानसिकता वालों को सदा गले लगाया। आजाद कश्मीर चाहनेवाला शेख अब्दुल्ला उनका गहरा दोस्त था। ऐसे ही वी.के. कृष्ण मेनन को उन्होंने हमेशा साथ रखा। सरदार पटेल के सहयोगी रहे राष्ट्रवादी बी.पी. मेनन से बिल्कुल उल्टा व्यक्तित्व और सोच था बी.के. कृष्ण मेनन का। **१९४७ से १९५२ के बीच लन्दन में भारत के उच्चायुक्त रहते हुए कृष्ण मेनन ने आजाद भारत के पहले घोटाले को भी अञ्जाम दिया था। कश्मीर पर हुए पाक आक्रमण के समय सेना के लिए तत्काल २००० जीपें चाहिए थीं। मेनन ने इंग्लैण्ड में पुरानी जीपों पर पेंट कराकर नये के दाम में खरीदा। करोड़ों का यह घोटाला भारतीय नेताओं की नजर में आ भी गया; पर नेहरू ने मेनन को बचाया। यहीं नहीं, उन्हें तरक्की देकर संयुक्त राष्ट्र में भारतीय दल का नेता (१९५२–५७) और फिर भारत का रक्षामन्त्री (१९५७–६२) बना दिया। भारतीय रक्षा प्रतिष्ठान के ऊपर एक ऐसा शख्स थोप दिया गया, जिसे भारत की रक्षा की जरा भी फिक्र न थी।**

नामका-चू

परेड मैदानों में खेती : नेहरू-कृष्ण मेनन के काल में सेना की परेड के लिए बने मैदानों में खेती की जाने लगी थी यानी हमारे सैनिक अपने प्रशिक्षण की शुरुआती चीज-परेड से भी दूर रखे जाते थे। चाँदमारी (फायरिंग प्रशिक्षण) भी बहुत कम होती थी। आयुध निर्माणी कारखाने (आर्डनेंस फैक्टारियाँ) सौन्दर्य प्रसाधन आदि के उत्पादन के काम कर रहे थे। नये हथियारों की खरीद लगभग बन्द थी। दूसरे विश्व युद्ध (१९३९–४५) के जमाने के हथियारों में जंग लगने लगा था और ये ही तोप-टैंक-बन्दूक भारतीय फौज को उपलब्ध थे। भारत की रक्षा जरूरतों के प्रति नेहरू सरकार ने जो आपराधिक लापरवाही दिखायी, वह बेमिसाल है।

चीनी कब्जा : अक्साई चिन में ३७,५५५ वर्ग किलोमीटर, शकसम घाटी में ५,१८० वर्ग किलोमीटर (ये दोनों क्षेत्र जम्मू-कश्मीर के भाग थे), अरुणाचल प्रदेश में लगभग २००० वर्ग किलोमीटर, जिसके अन्तर्गत तबाङ् में एक चीनी हैलीपैड, सामद्रोंग चू घाटी का इलाका, अस्पिल व लंगर कैम्पस और लाँगजू शामिल है– चीन के अवैध कब्जे में हैं। इनमें अक्साई चिन का अधिकांश हिस्सा उसने बगैर लड़ाई के १९५१ के बाद आठ-दस साल में कब्जाया था। है कोई दुनिया में ऐसा देश, जो अपनी जमीन बिना लड़े ही दूसरों को कब्जाने दे ? शकसम की ५,१८० वर्ग किमी जमीन उसे पाकिस्तान ने अपने अवैध रूप से अधिकृत जम्मू-कश्मीर क्षेत्र में से १९६३ में भेंट दे दी। अरुणाचल प्रदेश (पूर्व नाम नेफा) की जमीनें उसने १९६२ से १९८६ के बीच कब्जा कीं। भारतीय भूमि पर काबिज चीन कैसे भारत की बाँह उमेठता है, यह १९९९ में सामने आया। भारत तब कारगिल में पाकिस्तानियों को खदेड़ने में लगा था; इस समय चीन ने लद्दाख में दमचोक और अरुणाचल के पश्चिमी कामेंग जिले में भारी सैनिक जमावड़ा कर तथा भारतीय सीमा में चहलकदमी करके भारत को चेता दिया कि वह कारगिल कार्रवाई अपनी सीमा के भीतर तक सीमित रखे, सीधे पाकिस्तान या पाक-अधिकृत कश्मीर पर प्रत्याक्रमण न करे।

तमाम राष्ट्रवादी लोग नेहरू की तिब्बत नीति से नाराज थे। श्री गोलवलकर (गुरुजी) ने कहा कि आज तिब्बत हड़पा गया है, कल भारत पर हमला होगा। डॉ. लोहिया के शब्दों में 'तिब्बत पूरा स्वतन्त्र होना चाहिए; तब कैलास-मानसरोवर को हम अपने भाई तिब्बत की रखवाली में कर सकते हैं या फिर कैलास मनासरोवर हिन्दुस्तान में आना चाहिए... दुनिया में कोई भी ऐसी कौम नहीं है, जो अपने आराध्य-केन्द्र को विदेशियों के यहाँ रखे; लेकिन हिन्दुस्तान की गद्दी पर हमेशा नपुंसक ही नहीं बैठेंगे।' आचार्य कृपलानी ने लोकसभा में कहा था कि पञ्चशील समझौते का जन्म पाप से हुआ है। डॉ. अम्बेडकर की टिप्पणी ज्यादा सटीक थी, "भारत ने तिब्बत को मान्यता दी होती, तो आज भारत-चीन सीमा विवाद न होकर तिब्बत-चीन सीमा विवाद होता।" □

– ९०, खन्दक, मेरठ (उ.प्र.)

हर हर गंगे ! जय जय गंगें !!

– एयर वाइस मार्शल विश्व मोहन तिवारी (से.नि.)

कहने को कोई कह सकता है कि एक बार आप गढ़वाल के एक पहाड़ पर घूमे और नदियों, झरनों, चीड़, देवदारु, वन पीपल, भोजपत्र आदि वृक्षों और सुन्दर चिड़ियों को देख लिया : फिर आप मध्य-हिमालय के किसी और पहाड़ पर चले जाइये, आपको कमोवेश यही मिलेगा, तब बार-बार और अलग पहाड़ों पर क्यों जायें ? इसके कई जवाब हैं; किन्तु सबसे सरल तो यह कि आज के घुटन तथा प्रदूषित नगरीय वातावरण से पहाड़ी हरियाली की शीतल मन्द सुगन्ध हवा, कुर्सी पर धँसे रहनेवाले शरीर को पहाड़ी चढ़ाई और उतराई, हिमाली हरित कुलिगों से आँख-मिचौली तथा प्रकृति के जितना ही सान्निध्य में रह सकें, उतना ही उत्तम। यद्यपि पहाड़ों में समानताएँ हैं जैसे हर मानव में, परन्तु हर पहाड़ अलग है; उसकी हरी टोपी या हरित परिधान अलग है; उसके पक्षी अलग-अलग हैं।

आदि शंकराचार्य

बदरीनाथ के पास की घाटियों और वहाँ से कुछ ही किलोमीटर दूर पुष्पघाटी में बहुत अन्तर है। बात नजर की होती है, कैमरे तो सबके पास वही हैं। पर्यावरण के प्रति जागरूकता चाहिए; प्रकृति के प्रति प्रेम चाहिए, आदमियों से लगाव चाहिए, फिर देखिए कितना निश्छल आनन्द मिलता है और उस आनन्द को लूटने के लिए शरीर में ताकत और मन में उत्साह भी। हिमालय संसार में सर्वोच्च पहाड़ ही नहीं हैं, वे भारतीय संस्कृति और इतिहास से एक सुन्दर माला के सुगन्धित फूलों की तरह गुँथे हुए भी हैं।

पता नहीं, गंगा में और हिमालय में क्या आकर्षण-शक्ति है कि कितना भी दर्शन क्यों न कर लें 'थोड़ा-सा और' की तीव्र अभिलाषा बनी ही रहती है, कुछ ऐसी ही जैसी शिशु की माँ के प्रति। तभी तो गंगा, सबकी माँ है (हिमालय नाना कहलायेंगे)। पिछले ही वर्ष बदरीनाथ और पुष्पघाटी अलग-अलग यात्राओं में घूमकर आया था। शिवालक पहाड़ियों (शिव की अलकों) में उलझी गंगा की धाराओं के मुक्त होने का आनन्द देख आया था। अहम् के मोह-भंग में दुःख नहीं, आनन्द ही होना चाहिए। इसलिए .शिवालकों में उलझने पर गंगा को अपने अहम् के प्रति मोह-भंग का आनन्द ही मिला होगा, क्या इसमें सन्देह हो सकता हैं। जब पिछले वर्ष बदरीनाथ में एक पण्डे ने बतलाया था कि आदि शंकराचार्य बदरीनाथ से केदारनाथ सीधे पश्चिम दिशा से होकर अर्थात् नारायण पर्वत पार कर पहुँचे थे, तब आश्चर्य तो हुआ था; किन्तु हमारे साधु-सन्त तो निर्विकार-भाव से दुःसाध्य कार्य यों ही कर लेते हैं, इसलिए मान लेने का मन हुआ; किन्तु जब उसने कहा कि कुछ वर्षों पूर्व तक पुजारी भी सुबह की आरती केदारनाथ में कर सन्ध्या की आरती बदरीनाथ मे करते थे, तब उस पर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि यदि वे पुजारी निम्नतम दूरी वाले रास्ते में जाते, तो उन्हें गंगोत्री हिमनद पार करना पड़ता और वह तो अतिकुशल पर्वतारोही, विशेष उपकरणों के साथ ही कर सकते हैं और वह भी लगभग ५–६ दिनों में। यदि वे अपेक्षाकृत सुगम मार्ग से जाते और दूरी भी कम रखने का प्रयास करते, तब उन्हें लगभग ८००० फुट के पहाड़ों को चढ़ते-उतरते लगभग ७०–८० किलोमीटर की दूरी तय करना पड़ती, क्योंकि बदरीनाथ और केदारनाथ के बीच २०–२२ हजार फुट ऊँची चार चोटियाँ भी हैं, जिन्हें चौखम्बा कहते हैं। इस एक पहाड़ी चढ़ाइयों पर अभ्यस्त जानकार तथा स्वस्थ पुरुष, कम से कम तीन दिन में तय कर पायेगा।

फूलों की घाटी

मैंने किसी पुराण में पढ़ा है कि सुमेरु पर्वत से चार नदियाँ चार दिशाओं में निकलती हैं। जब यह सब देखने के लिए नक्शे का अध्ययन कर रहा था, तो बात कुछ स्पष्ट हुई। बदरीनाथ और केदारनाथ के बीच में, देवताओं को वसन्तोत्सव मनाने के लए, ब्रह्मा ने मानो एक अति विशाल वितान खींच दिया हो। लगभग ७००० मीटर ऊँचे चार खम्बों पर रजत-धवल चाँदनी तानकर ऋतुराज स्वयं उस भूमि को सजायें, तब जो वसन्तोत्सव होगा, वह दिव्य ही होगा। इन चार खम्भों ने इस स्थान को बदरीनाथ चौखम्बा नाम दिया है। चौखम्बा के क्रोड से गंगोत्री हिमनद निकलता है, जो लगभग उत्तर-पश्चिम दिशा में २५ कि.मी. यात्रा कर गोमुख में भागीरथी को जन्म देता है। चौखम्बा के उत्तर–पूर्व में सतोपन्थ बाँक और भागीरथी हिमनद हैं, जो अलकनन्दा को जन्म देते हैं। चौखम्बा के १५ किमी. पश्चिम में सुमेरु पर्वत है, जिसके क्रोड में से निकले हिमनद से मन्दाकिनी का जन्म होता है, जो केदारनाथ के चरण स्पर्श करती हुई अलकनन्दा से मिलने हेतु चल पड़ती है। सुमेरु पर्वत के लगभग उत्तर-पश्चिम में यमुनोत्री है। अब पता नहीं, पुराणों में जो चार नदियों के चार दिशाओं में निकलने की बात है, वह इसी सुमेरु से इन चार नदियों की बात है अथवा सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, गंगा और सतलज से है; किन्तु यह दिव्य वितान भारत के लिए वरदान ही है
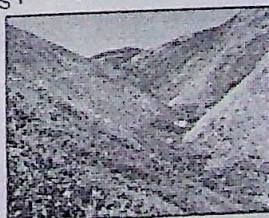
कि जिसके क्रोड से चार महान्, बारहमासी, जलपूरित नदियों का जन्म हुआ है।

जब आप गंगा के क्षेत्र में घूमने जाते हैं, तब आपको पता चलता है कि जिसे हम गंगा कहते हैं, जो हमारी संस्कृति का प्रतीक है, प्रारम्भ में तो वह गंगा कहीं नहीं मिलती, अनगिनत गँगाएँ मिलती हैं। वास्तव में वह अनगिनत गंगाओं से मिलकर बनी है, वैसे ही जैसे हमारी संस्कृति आर्य, द्रविड, निषाद, किरात आदि संस्कृतियों के जैव-मिलन से बनी है। बदरीनाथ और गंगोत्री में यदि आप तीर्थ यात्रियों का अनुप्रस्थ काट (क्रास सेक्शन) लें, तो आप देखेंगे कि उसमें एक तरफ असमी, बंगाली, मणिपुरी, उड़िया तो दूसरी तरफ तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड़, तीसरी तरफ मराठी, गुजराती और चौथी तरफ पंजाबी, कश्मीरी आदि हिन्दी भाषियों के साथ एक से ही कार्य करते दिखेंगे, उनका एक ही ध्येय दिखेगा– गंगा।
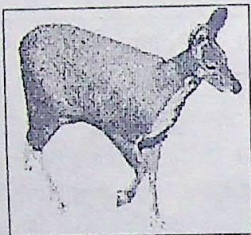
कस्तूरी मृग

छह मुख्य गंगाएँ गिनी जा सकती हैं, जिनसे मिलकर गंगा बनी है– धौली गंगा, अलकनन्दा, मन्दाकिनी, पिन्दार (पिण्डर) गंगा, मन्दाकिनी और भागीरथी। जोशीमठ से लगभग १० किमी. प्रतिधारा की ओर या बदरीनाथ की ओर, विष्णु प्रयाग में धौली गंगा अलकनन्दा में मिलती है। (वैसे कई लोग कहते हैं कि विष्णु प्रयाग तक अलकनन्दा नहीं, वरन् विष्णु गंगा है और धौली गंगा तथा विष्णु गंगा विष्णु प्रयाग संगम में मिलकर अलकनन्दा को जन्म देती हैं।) धौली गंगा भारत-तिब्बत की सीमा पर स्थित 'नीति' दर्रे के पश्चिम से निकलती है और जब विष्णु प्रयाग में अलकनन्दा (विष्णु गंगा) से मिलती है, तब लम्बाई में अधिक ज्येष्ठा होती हुई भी अलकनन्दा को सम्मान देती हुई उसमें अपना पूर्ण समर्पण कर देती हैं। नन्दापर्वत से प्रसूत मन्दाकिनी नन्द प्रयाग में तथा पिंदार गंगा कर्ण प्रयाग में अलकनन्दा से मिलती हैं। देव प्रयाग में भागीरथी और अलकनन्दा के मधुर मिलन से पावन गंगा बनती है।

मुनाल

गंगा का नाम त्रिपथगा भी है, इसलिए कि गंगा-आकाशपथ, पृथ्वीपथ तथा पातालपथ तीनों पथों में प्रवाहित हुई है या कहें कि देवलोक, पृथ्वीलोक और पाताललोक तीनों लोकों को गंगा ने पवित्र किया है। **कुछ आधुनिक पुराणविद् यह मानते हैं कि सुमेरु पर्वत के आसपास की भूमि ही देवलोक है। सम्भवतः पामीर पठार, (जिसमें सुमेरु भी सम्मिलित हो गया) का आदरसूचक नाम देवलोक है; किन्तु वैज्ञानिक रूप से देखें, गंगोत्री हिमनद और भागीरथी आदि हिमनद आकाश-पथ से आये हुए हिमकणों से बनते हैं, इसलिए गंगा के प्रारम्भिक पथ को आकाशपथ कह सकते हैं। आधुनिक भूगोलविदों का कहना है कि गंगा बहुत से स्थानों पर पृथ्वीतल के नीचे (अर्थात् पाताल) भी बहती हैं। इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि से भी गंगा 'त्रिपथगा' कहलायी।**

गंगा का वाहन मकर है। गंगा के घड़ियाल अपनी किस्म के विशिष्ट जल-जीव हैं और अब उनका अस्तित्व ही खतरे में है। यह स्वाभाविक लगता है कि एक नदी का वाहन मकर हो; किन्तु इससे एक अर्थ यह भी निकलता है कि बिना मगर या घड़ियाल से गंगा भी नहीं चल सकती। बिना मछलियों के मगर नहीं रह सकते। प्रदूषित पानी में मछली नहीं रह सकती, इसलिए मगर भी नहीं रह सकता और तब गंगा भी नहीं चल सकती। गंगा मकरवाहिनी और इसी तरह यमुना कूर्मवाहिनी। तब हमें यदि गंगा को जीवन्त रखना है, तब उसे प्रदूषण से बचाना अत्यावश्यक है। उत्तराखण्ड में घूमने पर यह स्पष्ट दिखता है कि अधिकांश नदियों के नाम में गंगा जुड़ा है, यथा– बिरही गंगा, मार्कण्डेय गंगा, पागल गंगा, गोमती गंगा आदि-आदि। **हम देखते हैं कि शिवालक हिमालय की श्रृंखला में गंगा ही गंगा हैं इसलिए शिव की अलकों में गंगा का नाम पारिवारिक नाम-सा लगने का एक कारण यह भी सम्भव है कि उस नाम से अन्य छोटी (प्रतिष्ठा में) नदियों की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। मध्यप्रदेश में भी कई नदियों के नाम में गंगा जुड़ा हुआ है।**

भारतीय संस्कृति ने गंगा के प्रति आभार प्रकट किया, उसे सम्मान दिया, पूज्य बना दिया। ऐसा अन्य देशों में नहीं होता। यह भारतीय संस्कृति की प्रकृति के महत्त्व को मान्यता देते हुए प्रकृति को (गंगा को) माँ का रूप देने की समझ का ही परिणाम है। प्रकृति के साथ एक प्रतियोगी का-सा व्यवहार करने की तथा उस पर अपना अंकुश हमेशा लगाने की प्रवृत्ति भारतीय नहीं, वरन् प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने की उसका यथोचित सम्मान करने की परम्परा भारतीय रही है।

पहले गंगा शब्द का अर्थ ही नदी था। **जब कोई संज्ञा शब्द, जैसे गंगा (नदी), एक विशेष सर्वनाम जैसे भगीरथ वाली गंगा का रूप ले ले, तब ऐसा उस वस्तु या व्यक्ति के अत्यन्त अप्रतिम गुणों के कारण ही हो सकता है; क्योंकि जिस गंगा शब्द का अर्थ ही नदी होगा, तब मात्र नदी कहने से जिस विशिष्ट नदी मात्र का बोध होता होगा, वह नदी वास्तव में सभी के हृदय में स्थापित होगी और जब गंगा के स्मरण से ही कश्मीर से कन्याकुमारी तक के सभी लोगों के मानस पवित्र हो जाते हैं, तब जो सशक्त और जीवन्त संस्कृति की झलक 'गंगा' में मिलती है, इसे एक भारतीय ही समझ सकता है, एक सच्चा भारतीय, नकली पाश्चात्य सभ्यता से दबा हुआ भारतीय नहीं।**

संस्कृत में गम् (गच्छति) से भी चलने वाली बनती है। गं ध्वनि हिन्दचीन में 'खंग' (दोनों 'क' वर्ग की ध्वनियाँ) हो जाती है, जहाँ की प्रसिद्ध नदी है मीखंग। दक्षिण चीन में यही ध्वनि 'कंग' या 'किआंग' बन जाती है, जैसे याङ् त्सी क्याङ्। खासी भाषा में यह ध्वनि 'कंका' बन जाती है और जयन्तिया खासियों में बड़ी पुत्री का नाम कंका रखने की लोकप्रिय परम्परा रही है (और बेटों का नाम राम तथा लखन)। □

– ई–१४३, सेक्टर– २१, नोएडा– २०१३०१ (उ.प्र.)

ग्यारोङ् के दोरजी की दुःख-कथा बनाम चीनी-उत्पीड़न

– गुंजेश्वरी प्रसाद

सन् १६४८ के पूर्व लद्दाख के पश्चिम और तिब्बत के दक्षिण में ग्यारोङ् नाम का एक राज्य था। इसका क्षेत्रफल था ५ हजार वर्गमील और जनसंख्या थी ६ लाख; मगर आज ग्यारोङ् कोई राज्य नहीं है। इस राज्य के निवासियों का भी कहीं कोई पता नहीं है। कम्युनिस्ट चीन के उत्पीड़न से इस राज्य के निवासी आज शरणार्थियों के रूप में, खानाबदोश बने इधर-उधर भटक रहे हैं; दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। अब न तो इनका कोई देश रहा और न तो कोई राजा। इनके जो राजा-रानी थे, वे भी भिखारी-भिखारिन के रूप में सम्प्रति अपनी जिन्दगी के दिन काट रहे हैं। इस दम्पति की दर्दभरी कहानी है। स्वदेश छूटने का, राज्य छिन जाने का जो कष्ट है, वह तो है ही, उसके अतिरिक्त इन्हें जो पीड़ा है, वह है पुत्र-वियोग की।

कुशक बकुला

सन् १६५६ में कम्युनिस्ट चीन ने जब तिब्बत पर आक्रमण किया, तो ग्यारोङ् भी चीन के पञ्जे में चला गया– यद्यपि ग्यारोङ् पर चीन को कब्जा करने में पसीना-पसीना हो जाना पड़ा। ६ लाख ग्यारोङ् निवासियों में २ लाख नागरिक चीनी दानव से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गये; एक लाख से ऊपर बन्दी बनाये गये। राजा श्री दोरजी पासंग और रानी श्रीमती तन्दोप्दोमा की गोद से उनके दो अबोध बच्चों को चीनी दानवों ने छीन लिया। उस समय राजा और रानी को चीनियों ने बहकाया, "पेकिंग ले जाकर इन्हें सरकारी संरक्षण में शिक्षित किया जायेगा।" आक्रान्त ग्यारोङ् राज्य के नागरिकों और राजा-रानी को चीनी कम्युनिस्ट जब अधिक उत्पीड़ित करने लगे, तो श्री दोरजी पासंग और श्रीमती तन्दोप्दोमा अपनी कन्या को गोद में ले ग्यारोङ् छोड़ चले। दुःखी हृदय से स्वदेश से निकलने के पश्चात् श्री दोरजी पासंग भी उसी ओर बढ़े, जिस देश के साथ ग्यारोङ् का सांस्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक और व्यापारिक सम्बन्ध हजारों वर्षों से था। वे अतिथि होकर नहीं, शरणार्थी रूप में सन् १६६१ में भारत की राजधानी दिल्ली आये।
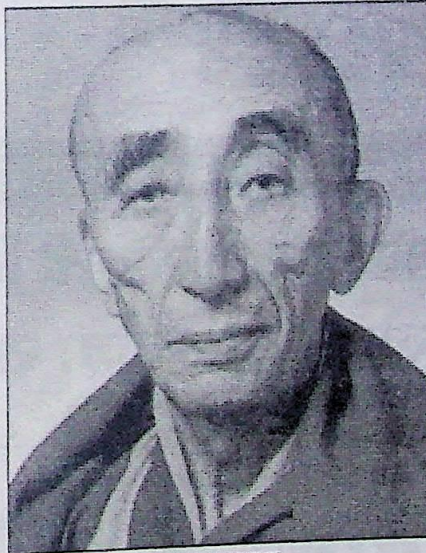
दिल्ली में यमुनातट पर बेला रोड के पास एक छोटे से मकान में इन निर्वासितों ने डेरा डाल दिया। बेला रोड पर जहाँ यह शरणार्थी परिवार रह रहा है, आज भी कम्युनिस्टों की क्रूरता, भारत की नपुंसकता और देशहीन नागरिकों की दुर्दशा बोल रही है।

भारत ने चीन के हाथों तिब्बत की आजादी सौंपने का पाप कमाया है। तिब्बत पर चीनी सम्प्रभुता स्वीकार करते समय भारत सरकार की आँखें शायद इस बात से बेखबर थीं कि लाखों तिब्बती गुलाम हो जायेंगे और लाखों बेघर-बार हो जायेंगे। उनकी समस्याओं का बोझ किस पर पड़ेगा– क्या इस पर भी भारत सरकार ने उस समय विचार किया था ? यदि उस समय भारत सरकार के दिमाग में तिब्बतियों की कोई समस्या नहीं थी और तिब्बत पर चीनी सम्प्रभुता स्वीकार कर लेने की योजना थी, तो आज जितने तिब्बती भारत में बेघर-बार होकर घूम रहे हैं, उन्हें या तो भारत सरकार बसाये अथवा उन्हें बसाने के लिए तिब्बत को चीनी शासन के चंगुल से मुक्त कराये। भारत सरकार इन दोनों विकल्पों से कतरा रही है।

ग्यारोङ् के राजा और रानी पुत्र-शोक से विह्वल हैं। ग्यारोङ् छोड़ते समय उनके साथ सिर्फ राजकुमारी ही थी। इस दम्पति के दो पुत्रों को चीनी दानव पहले ही उठा ले गये थे; शेष दो पुत्र उस समय फारमोसा में पढ़ रहे थे। राजा-रानी को अब पूर्ण विश्वास है कि जिन दो पुत्रों को चीनी कम्युनिस्ट प्रशिक्षित करने के बहाने पेकिंग ले गये थे, वे अब जीवित नहीं हैं और यदि जीवित भी हों, तो उनसे भेंट सम्भव नहीं है। जो लड़के फारमोसा में पढ़ने गये थे और वहीं रह गये थे। उनसे मुलाकात सम्भव है। अपने फारमोसा स्थित बच्चों से मिलने के लिए राजा-रानी ने भारत सरकार से निवेदन किया कि उन दो कथित पुत्रों से उन्हें मिला दिया जाये। उनका निवेदन पत्र भारत सरकार के दफ्तर में सड़ता रहा, किसी ने उस पर ध्यान न दिया। लद्दाख के संसत्सदस्य श्री कुशक बकुल के

प्रयास से किसी प्रकार भारत सरकार फारमोसा स्थित बच्चों को भारत बुलाने के लिए राजी हुई; लेकिन इस कार्य में भारत सरकार ने राजा और रानी के समक्ष निम्नलिखित चार शर्तें लगा दीं–

(१) जो लड़के फारमोसा से भारत आयेंगे, उनकी भारत में रुकने की अवधि एक मास होगी।

(२) वापस लौटने का हवाई टिकट अपने पास से खरीदना होगा।

(३) यह सूचना दी जाये कि ये लड़के भारत प्रवास की अवधि में किन-किन स्थलों को देखेंगे ?

(४) इन लड़कों पर विदेशी नागरिकों के सभी अनुबन्धन लागू होंगे।

इन शर्तों के साथ वर्षों बाद फारमोसा से ये दो लड़के अपने माँ-बाप और बहन से मिलने दिल्ली आये। अपने इन दो पुत्रों को पाकर राजा-रानी निहाल हो उठे। स्नेह-दुलार के पारावार में एक माह बीतते देर न लगी और इन बच्चों के वापस लौटने का समय बीत गया। प्रवास की अवधि बीत जाने पर लद्दाख के संसद् सदस्य श्री कुशक बकुल के माध्यम से राजा-रानी ने भारत सरकार से प्रार्थना की कि वह उनके दोनों लड़कों को भारत में रहने, भारतीय नागरिकता प्रदान करने की कृपा करे। भारत सरकार ने राजा-रानी की प्रार्थना पर स्वीकारात्मक उत्तर देने के बजाय २८ अगस्त, १९६७ को इन दोनों लड़कों को गिरफ्तार कर दिल्ली के बन्दीगृह में डाल दिया। राजा-रानी का राज्य चला गया। पुत्रवत् प्रजा का कहीं कोई पता नहीं। दो पुत्रों को आततायी कम्युनिस्ट छीन ले गये और दो पुत्रों को भारत सरकार ने बन्दीगृह में डाल दिया है। जीवन की सन्ध्या में राजा-रानी को जो असह्य पीड़ा हो रही है, उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता।

भारत सरकार के न्यायालय में ३ वर्षों से इन बच्चों पर मुकदमा चल रहा है। भारत सरकार इन बच्चों को भारतीय नागरिक बनाने के लिए तैयार नहीं है। ये बच्चे फारमोसा वापस जाना नहीं चाहते हैं। इन बच्चों का कहना है कि कम्युनिस्ट चीन और फारमोसा दोनों की तिब्बत के प्रश्न पर एक ही नीति है। भारत सरकार इन बच्चों की बातों को समझ नहीं रही है। रानी प्रधानमन्त्री इन्दिरा गान्धी का मातृत्व जगा रही हैं; लेकिन प्रधानमन्त्री का मातृत्व शायद सीमित हो चुका है। अनेक संसत्सदस्यों द्वारा भी इन बच्चों का प्रश्न कई बार उठाया गया; मगर भारत सरकार के कानों में अभी तक जूँ नहीं रेंगी। क्या भारत सरकार चीनी-उत्पीड़न के शिकार इस दुःखी दम्पति के दर्द को समझेगी ? क्या भारत चीनी आततायियों का स्थायी इलाज करने की ओर पहल करेगा ? □

मुख्यमंत्री तीर्थदर्शन योजना

आगामी यात्राएं
वैष्णोदेवी, जगन्नाथपुरी, काशी, द्वारकापुरी, रामेश्वरम्, तिरुपति व शिरडी के लिये

लक्ष्मीकांत शर्मा

- मध्यप्रदेश के 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्तियों को प्रदेश के बाहर स्थित विभिन्न तीर्थ-स्थान की यात्रा कराने के लिये मुख्यमंत्री तीर्थ-दर्शन योजना आरंभ की गयी है।
- योजना के अंतर्गत अगले चार माह में 19 यात्राएं आयोजित की जायेंगी जिनमें प्रदेश के 38 जिलों के व्यक्ति भाग ले सकते हैं। यात्रा का विस्तृत विवरण तालिका (चार्ट) में दिया गया है।
- 65 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति अपने साथ एक सहायक को भी ले जा सकते हैं।
- पति अथवा पत्नी का यात्रा में चयन होने पर दूसरा व्यक्ति (जीवन साथी) स्वमेव ही यात्रा करने हेतु चयनित हो जायेगा।
- यात्रा के दौरान यात्रियों के रुकने, भोजन, स्थानीय आवागमन तथा गाइड की व्यवस्था होगी।

"अनादि श्रद्धा का केन्द्र होते हैं तीर्थ। इनके दर्शन करना हर व्यक्ति की गहरी आत्मिक जरूरत को पूरा करती है। बुजुर्गों का तीर्थयात्रा पर जाना हमारी संस्कृति है। बुजुर्गों का आशीर्वाद हमारे जीवन को दिशा देगा।"

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश शासन
धार्मिक न्यास एवं धर्मस्व विभाग
मुख्यमंत्री तीर्थ दर्शन योजना हेतु आवेदन-पत्र

आवेदक का फोटो

- आवेदन पत्र एवं यात्रा के नियम वेबसाइट www.govtpressmp.nic.in से भी डाउनलोड किये जा सकते हैं। आवेदक अपने निकटतम कलेक्टर/तहसील कार्यालय से भी आवेदन पत्र प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त प्रारूप या इसकी छायाप्रति पर भी आवेदन किया जा सकता है। आवेदन-पत्र, तालिका में दी गई अंतिम तिथि तक अपने निकटतम तहसील कार्यालय में आवश्यक प्रमाण-पत्रों के साथ जमा करायें।
- मध्यप्रदेश के ऐसे मूल निवासी जो साठ वर्ष या अधिक आयु के हैं, और आयकरदाता नहीं हैं, वे ही इस योजना के लिये पात्र होंगे।
- शारीरिक रूप से स्वस्थ और मानसिक रूप से सक्षम व्यक्ति ही यात्रा में सम्मिलित हो सकेंगे।
- निर्धारित संख्या से अधिक आवेदन प्राप्त होने पर कलेक्टर यात्रियों का चयन लाटरी पद्धति से करेंगे और चयनित व्यक्ति को इसकी सूचना दी जायेगी।
- कोई भी पात्र व्यक्ति अपने जीवनकाल में एक बार इस योजना के तहत नियमों में उल्लेखित तीर्थ-स्थानों में से किसी एक स्थान की तीर्थ यात्रा कर सकता है।
- भविष्य में श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, हरिद्वार, अमरनाथ, गया, अमृतसर, सम्मेद शिखर, श्रवण बेलगोला, वेलांकणी चर्च, नागपट्टनम् (तमिलनाडु) आदि के लिये भी यात्राएं आयोजित की जायेंगी।

क्र.	तीर्थ	जिन जिलों के व्यक्ति यात्रा में भाग ले सकते हैं उनके नाम	यात्रा प्रस्थान की तिथि	यात्रा वापसी की तिथि	आवेदन की अंतिम तिथि	जिन स्टेशनों पर ट्रेन रुकेगी उनके नाम
1.	वैष्णोदेवी	[illegible]	20.09.12	24.09.12	11.09.12	[illegible]
		[illegible]	20.09.12	24.09.12	11.09.12	[illegible]
		[illegible]	29.09.12	03.10.12	17.09.12	[illegible]
		[illegible]	05.10.12	09.10.12	24.09.12	[illegible]
		[illegible]	08.10.12	12.10.12	24.09.12	[illegible]
2.	जगन्नाथपुरी	[illegible]	27.09.12	02.10.12	17.09.12	[illegible]
		[illegible]	16.10.12	21.10.12	01.10.12	[illegible]
3.	काशी	[illegible]	11.10.12	13.10.12	24.09.12	[illegible]
		[illegible]	18.10.12	22.10.12	01.10.12	हबीबगंज (भोपाल), [illegible]
4.	द्वारकापुरी	[illegible]	09.11.12	13.11.12	01.10.12	[illegible]
		[illegible]	23.10.12	28.10.12	01.10.12	[illegible]
5.	रामेश्वरम्	[illegible]	21.12.12	26.12.12	01.10.12	[illegible]
		[illegible]	27.10.12	01.11.12	01.10.12	[illegible]
6.	[illegible]	[illegible]	31.10.12	05.11.12	01.10.12	[illegible]
7.	तिरुपति	[illegible]	24.11.12	29.11.12	01.10.12	[illegible]
		[illegible]	03.12.12	08.12.12	01.10.12	[illegible]
8.	शिरडी	[illegible]	04.11.12	07.11.12	01.10.12	[illegible]
		[illegible]	13.12.12	16.12.12	01.10.12	[illegible]
		[illegible]	31.12.12	03.01.13	01.10.12	हबीबगंज (भोपाल), होशंगाबाद, [illegible]

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आर.एन.आई. पंजी क्रमांक-६७०१/६४

नवम्बर-२०१२

लखनऊ आर.एम.एस. नान टी.डी. : २४, २५, २६, २७
पंजी. क्र. एस.एस.पी./एल.डब्ल्यू./एन.पी.-२११/२०१२-१४

स्वत्वाधिकारी राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ के लिए मुद्रक, प्रकाशक सत्येन्द्र पाल बेदी द्वारा नूतन ऑफसेट मुद्रण केन्द्र, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से मुद्रित व संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से प्रकाशित। सम्पादक : आनन्द मिश्र 'अभय'